TEXT CUT WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182161
UNIVERSAL LIBRARY

आँधी-पानी

लेखक
श्रीसर्वदानन्द वर्मा

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी बुकडिपो,
लखनऊ.
मूल्य २॥)

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी बुकडिपो
लखनऊ

मुद्रक
पं० विष्णुनारायण भार्गव
हिन्दुस्तानी आर्ट काटेज,
लखनऊ

भेंट

उनको,

जिन पर मेरा साहित्य ही नहीं,

स्वयं मैं भी समर्पित हूँ।

—लेखक

बात

'आँधी-पानी' का आरम्भ जब हुआ था तब स्थिति दूसरी थी। आज, जब समाप्त कर रहा हूँ, स्थिति दूसरी है।

सन्तोष इससे मुझे नहीं है। अभी बादल घिरे हैं। बरस चुकने पर जो कुछ आपको दूँगा, आप सन्तुष्ट होंगे।

तब तक के लिए क्षमा!

कानपुर
१५ अगस्त ४५

सर्वदानन्द वर्मा

सूचना

आँधी-पानी का कथा भाग विशेष कुछ नहीं है। यह मैं जानता हूँ और इसके लिए मुझे पहले ही क्षमा माँग लेनी है।

तरुलता का चरित्र आपको विचित्र लगे तो लग सकता है। नहीं भी लग सकता है, यदि स्वस्थ, स्वाभाविकता की दृष्टि से देखा जाय। पर, यहाँ इतना साहस और धैर्य्य किसमें है, जो ऐसे चरित्रों पर साहस के साथ रुक कर सोचे? एक निश्चित परिधि में रहनेवाले बाप-माँ, तरुलता ऐसी लड़की को जन्म देकर अपनी गोद धन्य नहीं कहेंगे। वह चरित्र को मोम नहीं समझती, न तो हमारे परिवारों की लड़कियों की तरह विवाह का नाम सुन कर छुई-मुई बनने का नाट्य करती है। वह विवाह पर, समाज पर, सेक्स पर और राजनीति पर अपने विचार रखने की स्पर्द्धा करती है और उन्हें असंकोच प्रकट भी कर सकती है। रामप्रसाद के साथ के उसके व्यवहार में स्वस्थ, सचेतन तन और मन की माँग का उत्तर है। हमारे घरों की मानसिक रोगिणी, अचेत और निषेध-ग्रस्ता लड़कियों की तरह वह पैदा होने, बढ़ने, जवान होने, घरवालों ने बहुत ज़ोर मारा तो पढ़-पढ़कर आँखों पर चरमा लगा लेने, माँ-बाप द्वारा पति बनाए गए पुरुष के घर चुपचाप चली जाकर बच्चे जनने और एक दिन यों ही मर जाने के लिए नहीं बनी है। उसका व्यक्तित्व है। परिवार के बाहर भी खुली आँखें रखकर चलने वाली तरुलता जैसी लड़कियों से जीवन में मेरा जब कभी सम्पर्क हुआ है—और एकाधिक बार हुआ है—मैंने उन्हें आदर्श माना है।

अपने राजनीतिक विचारों के झुकाव की दिशा के लिए—यदि वह

कुछ हो—मैं दोषी नहीं। उन्हें राजनीति की विशेष तुला पर मैं तोलूँ ही क्यों ? या, आप ही क्यों तोलें ? वह तो मेरे मन की प्रवृत्ति है, जिसके लिए मेरा वर्त्तमान वातावरण उत्तरदायी है। राजनीति मेरे लिए केवल राजनीति कभी नहीं रही। मेरे लिए साहित्य सर्वोपरि है। साहित्य को जीवन से पृथक् मैं कोई चीज़ नहीं मान सका, कला का आधार यही ठोस धरती है। और, आज का जीवन राजनीति से अलग नहीं है। तभी, साहित्य में राजनीति की झलक अवश्यम्भावी है। राजनीति क्यों कहें, आज के जीवन की असंतुष्टि और झुँझलाहट की झलक ! वह तो आएगी ही।

एक शब्द भाषा के विषय में भी। इधर के मेरे उपन्यासों की भाषा—'अनिकेतन, प्रस्तुत' उपन्यास और आगामी 'महापर्व' की भाषा—अपेक्षाकृत सहज है। किन्तु राष्ट्रभाषा के नाम पर हिन्दी की हत्या मुझसे कभी नहीं होगी।

आँधी-पानी साहित्योद्यान के लिए शुभ है या अशुभ, यह निर्णय आप करें। मैं पहले ही क्षमा माँग चुका हूँ कि कथा-भाग कुछ विशेष नहीं है।

कानपुर।
अक्तूबर ४५

सर्वदानंद वर्मा

एक

आठ मई सन् उन्नीस सौ पैंतालिस.....

पश्चिम में यूरोपीय युद्ध समाप्त हो गया.....नाज़ी जर्मनी ने हथियार डाल दिये।

ग़ुलाम देश ने अपने महाप्रभुओं के विजय की खुशियाँ मनाईं।

विजय ! हाँ, यह विजय थी साम्राज्यवाद की, पूँजीवाद की। डंका पीट-पीट कर मित्र राष्ट्रों की ओर से कहा गया था कि यह महायुद्ध जनवाद के लिए हो रहा है। विजय भी, यह समझा गया कि, जनवाद की ही हुई है किन्तु एक युग से पराजित, दलित और शोषित भारत ने इस विजय में अपनी समस्या का समाधान नहीं पाया। कोटि कोटि नंगों और भिखमंगों की ज्वाला पर इस विजय ने एक बूँद जल डाल पाने का साधन नहीं जुड़ाया। अन्न बिना लोग मरते रहे, वस्त्र बिना नंगे फिरते रहे..... फिर भी विजय हुई और अधिकारियों के अन्ध-शासन से प्रताड़ित, युद्ध-कालीन मुनाफ़े से लखपती करोड़पती बने हुए मुट्ठीभर लोगों ने अपने घरों पर रोशनी की, मिठाइयाँ बाँटीं और मित्रराष्ट्रों का झंडा फहराया।

मिल की छुट्टी थी। गाली-लात खाकर, पेट के लिए अपना आत्म-सम्मान बेच काम करनेवालों को तीन दिन सवेतन, मौज उड़ाने का अवसर और अधिकार मिल गया था। रामचरन आज सात साढ़े-सात बजे ही दूकान पर पहुँच गया। धक्के खाकर भी वहाँ से उठा नहीं। "चोट मारेलू घुँघुटवा की ओट गोरिया" गाता और सुनता रहा। आधीरात जब हो गई और साथी सब धीरे-धीरे उठ कर चले

गए, कुत्ते जूठे कुल्हड़ सूँघने लगे, बलई दूकान की मिट्टी के तेल की कुप्पी हाथ के झटके से बुझाकर किवाड़ बन्द करने लगा तब रामचरन का नशा उतरा और घर जाने की याद आई।

राजे की कृपा से भरपेट पीने का प्रबन्ध आज हो गया था। वह रामचरन का कितना ख्याल रखती थी। कोई किसी का इतना ख्याल न रखे तो उसके लिए चोरी क्यों करे? राजे ने उसके लिए चोरी की थी। उसे मनमानी ताड़ी पीने का साधन जुटाने के लिए मालकिन का एक इयररिंग चुरा लाकर दिया था। माना कि यह लत बुरी है और उसे छोड़ देनी चाहिए लेकिन जब आदत पड़ ही गई तो वह क्या करे? और यह आदत भी क्या ऐसे ही पड़ी है! दिन भर की हाड़तोड़ मेहनत के बाद शाम को घर लौटने पर मोरी के किनारे बने उस सड़े, गन्दे और बदबूदार क्वार्टर में उसका मन नहीं लगता। कहाँ जाय, क्या करे? अगर बाहर निकल, पास-पड़ोस के साथियों में मिल बैठता है तो वही मिल की बातचीत, वही 'डिसचारज', 'ससपिन' और 'जुर्माने' की कथा और उससे छुट्टी मिले तो कहाँ किसकी घरवाली किसके साथ भाग गई, की छानबीन। तभी, बलई की दूकान उसे बुलाने लगती है, वहाँ का आकर्षण उसे खींचने लगता है। वह कब चाहता है कि उसकी राजे चोरी करे! यह कोई अच्छी बात नहीं है।

पिछली पन्द्रहिया की तलब जबतक चली, चली। बाद में थोड़े दिनों दूकान पर पहुँच, खीसें निकाल, बलई की उदारता और महानता की विरुदावली गा गाकर उसने काम चलाया। किन्तु, उदारता और महानता भी, बिना पैसों के, अधिक दिनों नहीं टिकतीं। स्वार्थ पूरा होता रहे, अटी में पैसे जाते रहें, आदमी जीवनभर उदार बना रह सकता है। दूकान कोई धर्मशाला नहीं है! बलई पर अब इस सूखी प्रशंसा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दिनभर का हारा-थका एक दिन जब रामचरन प्यासे ओठों से दूकान पर पहुँचा, बलई ने स्वागत की

कोई मुद्रा नहीं दिखाई, जैसा वह तब किया करता था जब रामचरन की अंटी में पैसे होते थे। इतना ही नहीं, रामचरन को उस दिन प्यासा ही रह जाना पड़ा। रात को घर लौटकर उसने प्रतिज्ञा की थी—बलई का वह खून कर डालेगा। बलई को ही क्यों, वह उन सारे लोगों को मौत के घाट उतार देगा जो असमर्थ जान उसे कुछ उधार देने से इन्कार करते हैं।

लेकिन लत बुरी होती है! दूसरे दिन शाम होते-न-होते उसे अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण भी नहीं रहा और बलई के सामने याचना के लिए बत्तीसों दाँत झलकने लगे। ऐसा भी कितने दिनों चलता? हार कर उसने एक दिन राजे से मालकिन के यहाँ से कुछ चुग्गा लाने को कहा। राजे काँप कर रह गई, हाय राम, यह उससे कैसे हो सकता है! जिस मालिक का दिया इतने दिनों से खा रही है उन्हीं के घर चोरी! इसीको कहते हैं जिस पत्तल में खाना, उसी में छेद करना! उसने प्रतिवाद किया—तुम्हें सरम न हो, तो क्या मुझे भी नहीं है। चोरी करने को कहते हो? मुझसे यह नहीं होगा। और फिर क्यों? लौटकर मेरा हाड़ ही तो तोड़ोगे!

रामचरन—न होगा तो मैं यहीं सिर दे मरूँगा। हाँ—समझ लेना। बड़ा आई पुरखिन बन के! लत पड़ गई है तो क्या करूँ?

राजे—आग लगे तुम्हारी लत में। अपनी दसा नहीं देखते, शरीर खंखड़ तो हो गया है! आदमी घी खाय, दूध पिए तो कुछ देह में भी लगे! नसा पी पीकर तो तुम्हारी यह हालत हुई है।

रामचरन—बड़ी घी-दूध की नदी ही तो तूने यहाँ बहा रक्खी है न! दिन भर जांगर लड़ाकर काम करता हूँ, गाली-लात सब सहता हूँ, रात को नसा-पानी न करूँ तो क्या करूँ! जिऊँ कैसे रे? जब सामरथ न रहेगी तब तो तू भी साथ न देगी। अभी तो जिच्चर झाड़ रही है, जब मर जाऊँगा तब कपार पर हाथ धर कर बैठेगी। रही हाड़ तोड़ने

की बात, तो वह नसा में होता ही है रे! मैं क्या सचमुच मारता हूँ?

राजे सब कुछ सुन सकती है, रामचरन की मृत्यु की बात केवल नहीं सुन सकती। वह अघट घटना उसके लिए कल्पनातीत है। जब वही नहीं रहेगा तो और कुछ रहकर क्या करेगा। मायके में उसने देखा था, जिन औरतों के 'मरद' नहीं, वह न घर की हैं, न घाट की। कोई उनसे सीधे मुँह बात नहीं करता, अपने ही घर में वह बिगानी हो जाती हैं। हँसी-खुशी के दिन भी वह बिचारी चुपचाप टुकुर-टुकुर लोगों के मुँह ताका करती हैं। जैसे वह नहीं हों, उनका सब कुछ उस मरनेवाले के साथ ही चिता पर भस्म हो गया हो। उस समय तो वह मन-ही-मन काँप कर रह गई पर यह एक ही बात उस सारी रात उसे काटती रही। यह पहला मौक़ा नहीं था जब रामचरन ने उसे यह बात सुनाई थी। राजे का यही मर्मस्थल था और यह वह जानता-समझता था। पहले भी जब उसे दारू के लिए रुपयों की ज़रूरत पड़ी है और हज़ार मनावन करने पर भी राजे अपनी बचाई रक़म में से सहज ही देने को तयार नहीं हुई है तब उसके इसी मर्मस्थल पर आघात कर रामचरन रुपये पाने में समर्थ हो सका है। पति के गुणों में सहधर्मिणी होने के साथ ही उसके अवगुणों में भी हाथ बटाना या किसी रूप में सहायक होना पातिव्रत का अंग है या नहीं, यह वह नहीं जानती थी। इसे जान पाने भर का तर्कबल भी उसके पास नहीं था। रामचरन धर्म को, आग, पानी, हवा और धरती को साक्षी रखकर उसका पति बनाया गया है, उसने उसकी माँग में सिन्दूर भरा है, उसकी हर बात चुपचाप मान लेना उसका कर्त्तव्य है।

सबेरे सात बजे जब वह कटोरे में रामचरन के लिए रोटी और साग रख रही थी और वह गले में उजलत से कुर्ता डाल रहा था तभी उसने धीरे से कहा—आज मौक़ा देखकर कुछ उठा लाना। बेचकर दो-चार दिन तो पी ही लूँगा।

राजे ने अनमने मन से उत्तर दिया—देखो, कोसिस करूँगी।

रामचरन—फिर वही बात! कोसिस क्या, कह न कि जरूर से ले आऊँगी।

राजे थोड़ी देर चुप रही। उसका अंतःकरण उसे धिक्कार रहा था। जीवन की इस पहली चोरी के लिये उसके हाथ उठते नहीं थे। धीरे से उसने कहा—एक दिन तुम्हारे यह लच्छन ले डूबेंगे। मैं तो कहीं की न रह जाऊँगी।

काम निकालने के लिए मनावन के स्वर में रामचरन बोला—तू बात तो समझती नहीं बस लगती है उपदेस देने। मैं क्या हमेसा ऐसा करने को कहता हूँ? तू ही बता, मैंने कभी तुझे चोरी करने को कहा है? अरे, रामचरन ऐसा नहीं है। लक्खों रुपये की चीज आगे धरी रहे तब भी नीयत न डोले, हाँ—रामचरन ऐसा है।

गर्व से थोड़ी-सी छाती भी उसने फुला डाली। राजे ने समझा, अब तक वह शायद हँसी कर रहा था। प्रसन्नता से बोली—तब आज क्यों ऐसा कहते हो?

रामचरन—तुम जानो, लत बुरी होती है न! क्या करूँ? सोमारू, कल्लन, सलारू, सब साले रोज मेरे साथ पीते रहे। हराम का मिलता रहा न! कल एक-एक से गिड़गिड़ाया पर खुद पीते रहे, मुझे कह दिया कि पूरा नहीं पड़ता। ऐसे हैं सब!

एक विवश दयनीयता मुखपर लाकर थोड़ी देर बाद वह बोला—बस, आजभर तू परबन्ध करदे तो मेरे जी की कलक मिट जाय! देखना, कैसा सब इसी रामचरन के तलुओं पर नाक रगड़ते हैं! बहुत धन्नासेठ कल बने थे। चाट-चाट कर कुल्हड़ साफ़ कर जाऊँगा, सूँघने को भी किसी को न दूँगा। हाँ!

रामचरन के तलुओं पर कब, किसने और कैसे नाक रगड़ी, कैसे उसने कुल्हड़ चाट चाट कर साफ़ कर दी, किसी को सूँघने तक को न

मिली, यह देखने राजे नहीं गई पर दूसरे दिन शाम को उसने मालकिन का एक इयररिंग ज़रूर लाकर उसे दे दिया। ग़ुसलख़ाने के हौज़ में गिरा मिल गया। उसे उठाकर कमर के फेटे में धरते समय एक बार उसकी अन्तरात्मा काँप उठी किन्तु रामचरन के विवश अनुरोध ने उसे बल दिया। शाम को मिल से लौटकर जब रामचरन क्वार्टर में उसकी उत्सुक प्रतीक्षा कर रहा था, वह जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाती रास्ता तय कर रही थी। जब वहाँ पहुँच उसने वह इयररिंग निकाल कर रामचरन के हाथों पर रख दी, उसके जीवन का वह पहला 'पाप' आँसू बनकर आँखों से झर चला।

बड़ों ने कहा है, कर्म किए जाओ और फल भगवान के हाथों में छोड़ दो। राजे ने भी फल भगवान के हाथों में छोड़कर यह कुकर्म कर डाला। और जब कर ही डाला तब सारी रात कोने-अँतरे में रामचरन की आँख बचाकर धरती पर मत्था टेकते-टेकते उसका माथा फूल गया। हे गंगा मैया, महादेव सामी, बजरंगबली, ऐसा करो कि मालकिन का सुबहा मेरे ऊपर न हो। अगर सब राजी खुसी रह गया तो उनसे कहकर पाँच पैसे का परसाद चढ़ाऊँगी। मैया, तुम साच्छी रहना, मेरे मनमें 'पाप' नहीं था! किसी की धेले पैसे की चीज़ भी उठा लेना मेरे लिए हराम है पर 'उनके' मारे क्या करूँ। न जाने कैसे यह निगोड़ी लत छूटेगी! अपनी दसा नहीं देखते। वही चार पैसा घरमें रहे तो विपत में काम दे। अभी, भगवान न करे आज कुछ बीमारी अरामी हो जाय तो वैद तक नहीं बुला सकते पर दारू के लिए पैसा जरूर चाहिए। अगर यही दसा रही तो मेरा क्या हाल होगा? अभी पहाड़ ऐसी जिन्दगी पड़ी है, आदमी को कुछ तो सोचना चाहिए! अरे, उनके मारे जो न करना पड़े, सब थोड़ा है। यही लच्छन रहे तो एक दिन जेहल की हवा खायँगे। उनको क्या—बनी-बनाई रोटियाँ तो वहाँ खाने को मिल ही जायँगी। मरेंगी तो राजे!

रामचरन के लिए वह इयररिंग कुबेर की निधि बन गया। भागकर बलई के हाथ पर रख देने के लिए वह उतावला हो उठा। उसे छूटकर चुकड़ पर चुक्कड़ चढ़ाते देखकर सोमारू, कल्लन और सलारू और उन जैसे बलई के अनेकानेक ग्राहकों के मुख पर कैसे भाव आएँगे, उसकी विभूति पर और उसके भाग्य पर कैसे सब ईर्ष्या करेंगे, कैसी-कैसी बातें कही सुनी जायँगी, सोच-सोचकर क्वार्टर में ही उसे रोमांच होने लगा। और जब यह आन्तरिक आह्लाद अधिक न दब सका, वह जल्दी-जल्दी आधी गिलास चाय गले के नीचे उतार वहाँ से नौ दो ग्यारह हुआ। यह भी भय उसे हुआ कि राजे फिर न कुछ खुरपेंच निकाले। औरत की जात ठहरी—कौन ठिकाना!

रामचरन के क्वार्टर से लखनलाल का घर थोड़ी ही दूर पर है। घर में बाबू लखनलाल हैं, पत्नी है और है एक लगभग डेढ़ दो साल का लड़का, जिसे अभी चलना भी नहीं आता। न जाने कौन-सी भाषा बोलता रहता है। पत्नी के सात वर्ष की तपस्या के बाद यह दीपक घर में जल पाया है, सो उसे चारो ओर से दबा ढांक, ओट में रखने की चेष्टा रहती है, कहीं फिर न अँधेरा हो जाय! राजे को लखनलाल ने अपने और घरके काम के लिए कम, इसी कुलदीपक के लिए रखा था। पत्नी के पास माँ का हृदय तो था किन्तु बच्चे को सम्हालने की दक्ष नहीं थी। अपने ढंग से सम्हाल वह करती थीं, किन्तु लखनलाल को लगता था, बच्चे के लिए माता के अतिरिक्त एक और साथी चाहिए ही। और पत्नी की दृष्टि में राजे घर में एक अनावश्यक वस्तु थी—पैसों के अपव्यय का ज़रिया। इस प्रश्न पर पति पत्नी में समझौता न कभी हुआ—न कभी होगा।

राजे जब फिर वहाँ पहुँची, मालिक के कमरे में कुछ बातचीत की भनक सुन ठहर गई। दरवाज़े पर पड़े काले मोटे पर्दे की संधि से उसने देखा, मालिक बड़े पलँग पर लिहाफ़ ओढ़े बैठे कोई मोटी सी किताब

देख रहे हैं और मालकिन, शृंगार-दान पर एक हाथ की कुहनी टेके खड़ी हैं। जान पड़ता है, बाबू ने अभी कोई बात कही थी, मालकिन ने सहसा ही अस्वीकार में अपना भारी-भरकम सिर हिलाया। सदा की भाँति इस बार दायीं ओर के फूले गाल से उनका इयररिंग जाकर टकराया नहीं—झट् से उनका हाथ दाएँ कान पर गया। आश्चर्य भरे स्वर में, आँख के कोने से कान की ओर देखने की चेष्टा करते हुए बोलीं—हैं, मेरा ऐरन कहाँ गया ?

लखनलाल किताब में लगे थे, कुछ बोले नहीं।

पत्नी का पारा चढ़ा—मैं पूछती हूँ, मेरा ऐरन कहाँ गया ?

लखनलाल ने 'हिस्टोरिकल राइटिंग्स' एक ओर रख दी, कहा—ऐरन ! मैं क्या जानूँ ? कहीं रखा होगा।

पत्नी—रखा नहीं होगा, मैं पहने थी। अभी तो थोड़ी देर हुई, नहा कर निकली हूँ।

पति—तो खोजो जाकर, मैंने तो देखा नहीं।

मालकिन उधर भागी हुई गुसलखाने में गईं, इधर राजे को काटो तो खून नहीं। पाँव तले की धरती खिसक गई। हो न हो, मालकिन जरूर मुझ पर सुबहा करेंगी। न-जाने मत कहाँ फिर गई जो ऐरन उठाया। वह पर्दे के पास से हट आई। क्या करे, क्या न करे, यही सोचने लगी। यह भी नहीं कि बाहर बच्चा लेकर खिलाने निकल जाय, वह पलँग पर सो रहा था। कुछ न सूझा तो झाड़ू लेकर एक बार की बुहारी गैलरी फिर बुहारने लगी। इसी समय मालकिन का स्वर सुन पड़ा—ठहर री ठहर, बुहार मत। एक चीज़ गिर गई है।

राजे को उस मौसम में भी पसीना आने लगा। अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए उसे कहना पड़ा—क्या मालकिन, क्या गिर गया है ?

ऐरन—कह कर मालकिन उस लम्बी गैलरी में इस सिरे से उस सिरे तक फिरने लगीं। पीछे-पीछे राजे भी दम साधे चलती रही।

बक्स, बिछौने, शृंगार-दान के दराज़, चेस्ट ऑव ड्रॉअर्स, आलमारी, किताबें, हैट स्टैंड, कुर्सियाँ, सत्तेप में वह सभी जगहें देख डाली गईं जहाँ इयररिंग के हो सकने की संभावना थी। राजे का दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। अब मालकिन ने पूछा, अब पूछा। वह पेशेवर चोर नहीं थी, अन्यथा इतनी विचलित कभी न होती। सब जगह खोज-ढूँढ़कर, हार-थककर मालकिन ने फिर मालिक के कमरे पर धावा बोला और पलँग की पाटी पर बैठते हुए बोलीं—न-जाने किस की नीयत में आग लग गई जो उठा ले गया। अब सचाई की दुनिया थोड़ी ही रह गई! सब चोर-चाई भरे हैं।

फिर लखनलाल की ओर देखकर बोलीं—तुम को जब किताबों से फ़ुरसत मिले तब न! चाहे घर में आग लग जाय पर किताब न छूटे।

लखनलाल घबरा कर बोले—कहाँ आग लगी है?

अब धर्मपत्नी के लिए अपने को सम्हालना कठिन हो गया। अपना मत्था ठोंकती हुई बोलीं—मेरे कर्म में आग लगी है, और कहाँ बताऊँ। वही मसल है सगरी रमायन होय गई, सीता किस की जोय, यही नहीं मालूम।

लखनलाल ने बड़े इतमीनान से कह दिया—सीता राम की स्त्री थीं। यह कौन बड़ी भारी बात है? यह तो एक बच्चा भी जानता है।

पत्नी के मुख पर झुँझलाहट का रंग और भी गाढ़ा हो गया। लखनलाल के हाथ से झनक कर किताब उन्होंने खींच ली और उसे बन्द करके बिछावन पर रखते हुए बोलीं—यह तुम से कौन पूछ रहा है कि सीता किस की स्त्री थीं? मैं इतनी नासमझ नहीं कि यह भी न जानूँ! तुम्हें तो किताब के आगे और कुछ सूझता ही नहीं! कैसे अचरज की बात है! घड़ी भर भी नहीं हुआ और कान का इयररिंग ग़ायब हो गया। ढूँढ़ती हूँ तो मिलता नहीं। यह तो नहीं कि उठकर

खोजें, उल्टे सीता किसकी स्त्री थीं, यह बता रहे हैं। करम की बात है और क्या।

पत्नी का 'कान का इयररिंग' कहना लखनलाल को खटका। वह कह सकती थीं कि 'इयररिंग' ग़ायब हो गया। इयररिंग तो कान की चीज़ ही है! किन्तु, साथ ही अब इयररिंग ग़ायब होने की उन्हें चिन्ता भी हुई। जल्दी से बोले—कहाँ रखा था?

पत्नी—कहा तो कि पहने थी। न-जाने किसने निकाल ली!

लखनलाल—क्या मज़ाक करती हो? पहने-पहने कोई निकालता और तुम्हें पता न चलता। यह कहीं हो सकता है?

पत्नी—होने को सब हो सकता है, तुम क्या जानो। मैं गई ही कहाँ थी? अभी गुसलखाने से निकल कर यहाँ आई थी।

लखनलाल—कहीं गुसलखाने में तो नहीं गिर गया?

पत्नी—वहाँ तो ढूँढ़ आई। फिर भी, तुम चल कर देखो न! एक से दो भले होते हैं।

राजे साँस रोके सब सुन रही थी। अब, जब उसने मालिक को भी चप्पल पहन कर मालकिन के साथ गुसलखाने की ओर जाते देखा, एक बार नए सिरे से काँप उठी। अब ज़रूर भेद खुल जायगा। हाय राम, क्या करूँ?

इयररिंग का न मिलना था, न मिला। लखनलाल भी निराश होकर लौट आए। साबुन का डब्बा और मैकलीयन्स का पैकेट देखना भी वह नहीं भूले। कमरे में आकर बोले—गुसलखाने से तुम्हारे निकलने के बाद और कोई गया था?

पत्नी—और कौन जाता? राजे धोती छाँटने गई थी।

उधर, राजे का शरीर जैसे बर्फ़ हो गया।

लखनलाल—तो उससे भी पूछूँ! राजे, अरी राजे!

राजे जवान थी, थोड़ी बहुत सुन्दरी भी थी। जिस दिन उसे

लखनलाल ने नियुक्त किया उसी दिन से मालकिन का यह स्वेच्छा से ग्रहण किया हुआ पुनीत कर्त्तव्य हो गया था कि उसे मालिक की दृष्टि की, जहाँ तक हो सके, ओट ही रखा जाय। ऐसा हो कि लखनलाल और राजे सामने न पड़ें। इतनी अतिरिक्त सावधानी रखने पर भी कभी-कदाचित् यदि लखनलाल सामने आ जाते और राजे तुरन्त वहाँ से घूँघट काढ़, हट न जातीं तो मालकिन बोलतीं तो कुछ नहीं, ग़ुस्से से लाल टमाटर बन जातीं। परिणाम यह होता कि थोड़ी देर तक लखनलाल के हर प्रश्न का उत्तर मौन से दिया जाता। राजे मसाला पीसने, या तरकारी काटने या बच्चे को कपड़े पहनाने के विषय में कुछ पूछतीं तो एक-दो बार के प्रश्न के बाद गम्भीर 'हूँ' से उत्तर मिलता। लखनलाल भी इसका कारण समझ जाते, राजे भी। दोनों स्वयं चुप लगा जाते। कुछ कह कर व्यर्थ ही उस क्रोधाग्नि में घी डालने की आवश्यकता ही क्या थी!

उसी राजे को इस समय लखनलाल द्वारा बुलाए जाते देखकर भी मालकिन कुछ अन्यथा न सोच सकीं। इयररिंग का प्रश्न इस समय सर्वोपरि था, फिर यह भी था कि वह स्वयं उस कमरे में उपस्थित थीं। कोई डर की बात नहीं थी।

लखनलाल—राजे!

एक दो बार के पुकारे जाने के बाद राजे धीरे-से पर्दा हटाकर कमरे में आकर खड़ी हो गई। दृष्टि नत थी, कहीं आँखें हृदय का भेद खोल न दें। मन ही मन वह उस कुबड़ी को कोस रही थी जब उसने रामचरन की बात पर कान दिया। उस समय वह यदि इयररिंग देखकर भी अपना हाथ रोक लेती तो आज यह फ़जीहत तो न होती! वह तो वहाँ मज़े में चुक्कड़ पर चुक्कड़ ताड़ी चढ़ाते होंगे, यहाँ मैं विपत में फँसी हूँ। अब आकर देखें न अपनी करतूत! कि खाली चोरी ही सिखाने भर को थे!

लखनलाल ने राजे को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा जैसे कुछ कूत रहे हों। आँखें धरती पर गड़ी होने पर भी राजे ने इसे लक्ष्य किया। रक्त और भी ठण्डा हो गया। न जाने कैसे, लखनलाल की प्रश्न करने की सारी तेज़ी हर गई। बोले—तुमने तो गुसलखाने में इनका इयररिंग नहीं देखा?

राजे चुप।

लखनलाल—बोलो।

कोई उत्तर नहीं।

राजे के मौन ने लखनलाल और मालकिन, दोनों को सन्देह में डाल दिया। राजे की बुरी दशा थी। न वह हाँ कर सकती थी, न ना। जीवन में पहली बार उसने चोरी की थी, चोर में जो अनिवार्य दुःसाहसिकता होनी चाहिए, वह उसमें नहीं थी। इसके विपरीत, यदि सही सच कुछ बतला देती है तो रामचरन के और स्वयं उसके अस्तित्व के लिए खतरा था। यह तय है कि चोरी की बात खुल जाने पर मालिक फिर उसे रखेंगे नहीं, वह अगर रखना भी चाहें, मालकिन कब इसे गवारा करेंगी? मान लो, यदि उसकी लगी लगाई रोजी छूट गई तो अकेले रामचरन की कमाई से तो पूरा पड़ने से रहा। वह तो सब उसके ही पेट में दारू बन कर समा जायगी। फिर, बखत-बेबखत जरूरत पड़ी तो कहाँ से पैसे आयेंगे? और यह भी तो हो सकता है कि यह लोग रामचरन को जेहल भेजवा दें! तब वह क्या करेगी?

इसी समय बच्चा उठ कर रो पड़ा। राजे को मुक्ति मिली, एकदम कमरे के बाहर, जैसे उसे चुप कराने, निकल गई।

मालकिन ने मालिक की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, बोलीं—हो न हो, इसीका काम है। अगर लिया न होता तो ऐसी गब्बर बनी खड़ी रहती? चोर का हियाव ही कितना?

लखनलाल को भी सन्देह हो रहा था, कहा—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। बिचारी खड़ी काँप रही थी। तुमने देखा नहीं?

मालकिन ने मुँह बना कर कहा—बड़े आए बिचारी वाले ! मैं कहती हूँ, पुलिस में रिपोर्ट क्यों नहीं करते ? बैठे क्यों हो ?

लखनलाल चौंके—क्या कहा ? पुलिस में रिपोर्ट ? नहीं, नहीं। यह नहीं, पहले उससे पूछ तो लो !

मालकिन—अब क्या पूछने को रह गया है ?

लखनलाल—उससे पूछ कर देखो, हो सकता है कि न भी लिया हो ! डर के मारे चुप रह गयी हो !

मालकिन—मसल है, कर तो डर। लिया न होता तो डरती क्यों ? फिर भी, उससे कबुलवा लेती हूँ। यह कौन मुस्किल बात है ?

मालकिन उधर राजे से क़ुबूल कराने चलीं, इधर लखनलाल फिर किताब खोलकर बैठे। उन्हें अब यह निश्चय-सा हो गया था कि यह काम राजे का ही है, यद्यपि मालकिन का कुबूल कराने का प्रकार उन्हें नहीं समझ में आया। जब पता चल ही गया, तो कोई हंगामा खड़ा करना उन्हें अच्छा नहीं लगा। औरत की ज़ात ठहरी, उसे पुलिस में देना या मार-पीट करना कुछ शोभन न होता। साथ ही, यह उसका पहला अपराध था, न जाने किस गहन आवश्यकता की मारी उसने यह काम किया। वह राजे को इतने दिनों से देख रहे हैं। चोर होने का कोई लक्षण उसमें नहीं है। आज से पहले भी बड़ी-बड़ी चीज़ें उसके सामने खुली पड़ी रही हैं, कभी एक तिनका भी उसने नहीं उठाया। जब कोई चीज़ ली तब माँग कर। आज अकस्मात् वह 'चोरी' नहीं कर सकती। ज़रूर कोई बात रही होगी।

तभी भीतर बरामदे से मालकिन की आवाज़ आई—सुनते हो अपनी लाड़ली महरी की करतूत। बड़ी सती लच्छमी हैं न ! अपने निगोड़े मरद के लिए ऐरन ले गई हैं—उसे ताड़ी का प्रबन्ध करने। तभी मैं कहूँ, और कौन ले जा सकता है। ठहर जा, मैं तुझे सीधा करती हूँ।

बच्चे को गोद में लिए झनकती-पटकती मालकिन मालिक के कमरे में आईं, बच्चे को एक हाथ में टाँग कर दूसरे से बेंत उठाया और फिर निकल गईं। लखनलाल भी पीछे पहुँचे। बरामदे में जो दृश्य देखा वह उन्हें विस्मित कर देने को पर्याप्त था। मालकिन एक बेंत राजे को लगा चुकी थीं और वह सिमटी बैठी थी। दूसरा बेंत पड़ने ही वाला था कि लखनलाल ने मालकिन का हाथ पकड़ लिया। नारी होकर भी मालकिन की आँखों से आग बरस रही थी, पुरुष होकर भी लखनलाल की आँखों में पानी आ गया। बेंत छीन कर बोले—छिः, तुम औरत हो न!

राजे से बोले—उठो, घर जाओ। कल से मत आना। कहीं और काम ढूँढ़ लो।

मालकिन अचम्भे से ताकती रह गईं, राजे धीरे से उठकर घर से बाहर निकल गई। जाते-जाते एक नज़र बच्चे को देखती गई। बच्चा हाथ उठाकर उसकी ओर बढ़ा पर मालकिन ने रोक दिया।

लखनलाल फिर जो मुँह ढाँप कर पड़े तो उस दिन उठे नहीं।

दो

आधीरात गए लौटना, राजे से अनखा कर बोलना और उसके कुछ उत्तर देने पर लात-घूसों से उसकी थोड़ी सी मरम्मत कर देना, रामचरन का नित्य का नियम था। इतने पर भी उनके दाम्पत्य-जीवन में कोई कटुता, कोई छल छन्द नहीं थे। गृहस्थी की टूटी-फूटी गाड़ी इन दो साबुत पहियों के बल पर मज़े से चली जारही थी। रामचरन के हाथों से, नशे की हालत में मार खाने पर भी, राजे कोई मैल उसके प्रति अपने मन में नहीं आने देती। आज कई वर्षों से उसका यह स्वभाव ही हो गया था। फिर रामचरन भी, नशा उतरने पर, अपने किए पर पछताता, अपनी दुलारी राजे को कभी कटुवचन नहीं बोलता था। दोनों-दोनों पर जान देते थे। कभी कभी रामचरन छुट्टी के दिन, राजे के पास बैठ, कहता—क्यों री तुझे मैं नसे में मारता हूँ न!

राजे उत्तर देती—और नहीं तो क्या पूजा करने हो? फूल माला, रोरी-चन्दन चढ़ाते हो? मैं ही हूँ जो अपना हाड़ कुटवा कर भी तुम्हारी पूजा करती हूँ, सेवा करती हूँ। दूसरी कोई होती तो झाड़ू लगाती, झाड़ू! समझे!

रामचरन स्वयं ही हो-हो कर हँस पड़ता। कहता यह तो मैं जानता ही हूँ, नहीं तो मारता कैसे? तू बड़ी सती लच्छमी है न, जो मेरी सेवा करती है! अरे, वह तो मेरे जैसा आदमी है जो तेरे साथ निभा रहा है, नहीं तेरी पटरी और से थोड़ा ही बैठ सकती है!

बात यह सोलहों आने सही है। राजे भी मन-ही-मन यह समझती है। कितनी ही बार यों ही, खाली बैठी रहने के समय, राजे ने यही

प्रश्न अपने मन से किया है पर हर बार उसे यही उत्तर मिला है कि नहीं, रामचरन के सिवा उसकी और कहीं गत नहीं है। जैसे पूर्वजन्म की कमाई के परिणामस्वरूप रामचरन उसे मिला है। लाख डांट-फटकारे, मारे, गाली दे, है तो उसका 'मरद' ही। अपना आदमी अगर सासन करता है, दुतकारता है, तो दुलराता भी त है! खिलाएगा वह, पहनाएगा वह, रक्खेगा वह, तो मारने क्या कोई और आएगा? और मारता भी तो नसे में ही है! नसे में तो आदमी और जनावर एक हो जाते हैं। उस बखत वह अपने आपे में थोड़ा ही रहता है!

पर आज वह यह सब कुछ नहीं सोच सकी। उसका मन रामचरन के प्रति आज घृणा और वितृष्णा से भरा आरहा था। एक अजीब-सी उलझन उसे हो रही थी जिसका अनुभव जीवन में पहली बार उसे हुआ था। बाबू लखनलाल के यहाँ से अपने जीवन का जो कलंक-बिन्दु वह आज ले आई थी, वह उसे पृथिवी में धँस जाने को उकसा रहा था। यही नहीं, मालकिन के हाथ के बेंत की चोट, जो अब तक दबी हुई थी, इस समय उसे मर्मान्तक पीडा पहुँचाने लगी। उस चोट से यह चोट भिन्न थी जो उसे रामचरन के हाथों मिलती थी। उसमें कहीं कुछ अपनत्व होता था, भविष्य के प्यार और दुलार का संकेत होता था, वह सहनीय थी किन्तु यह! यह उसे दण्डस्वरूप मिली है, इसमें कटुता है, यह अपराध का फल है, उस अपराध का जिसमें उसका तिल भर भी सहयोग नहीं है। और जिसके मोह के कारण उसने यह अकरणीय कार्य किया वह कहीं अन्यत्र बैठा आनन्द कर रहा है। ताड़ीखाने में बैठकर चुक्कड़ पर चुक्कड़ ताड़ी चढ़ा रहा है।

कुछ तो दर्द के कारण, कुछ अपमान और लज्जा के कारण आज राज़े को कुछ बनाने की फ़िक्र नहीं हुई, उसी तरह क्वार्टर में नंगी धरती पर बैठी रही। इस तरह बैठे-बैठे कितना समय बीत गया, यह

भी उसे पता नहीं चला। नित्य के नियम के अनुसार, समय होने पर रामचरन लौटा। लाख नशे में हो, सामने से क्वार्टर में अँधेरा देखकर उसका माथा ठनका। रोज़ तो मिट्टी के तेल की ढिबरी धुआँ देती रहती थी; आज क्या हो गया। सोचा, राजे अभी बाबू साहब के यहाँ से आई ही न होगी। कोई दावत-आवत हो गई होगी! हाँ भाई, बड़े आदमी हैं, एक-न-एक दावत-तवाजो लगी ही रहती है। हमाँ सुमा की तरह थोड़े ही हैं कि खाने का भी डौल न हो! यह सब पैसे की बरक्कत है भैया, और क्या?

चाँदनी रात, ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। रात काफ़ी हो जाने से आसपास का कोलाहल सो गया था। रामचरन कुछ मौज में आ गया, कई दिनों पहले देखे हुए 'हमारी बात' फ़िल्म की एक सस्ती-सी ग़ज़ल गुनगुनाने लगा—'बिस्तर बिछा दिया है तेरे दर के सामने, घर ले लिया है मैंने तेरे घर के सामने।' यह कड़ी उसे बहुत पसन्द आई थी। लेकिन यह क्या? क्वार्टर का दरवाज़ा कैसे खुला पड़ा है? राजे अभी मालिक के यहाँ से आई नहीं तो यह दरवाज़ा किसने खोला?

किसी के घर के सामने घर ले लेने का समूचा उत्साह जैसे हिरन हो गया। रामचरन एकदम क्वार्टर में घुसा, पाँव में किसी नर्म चीज़ की ठोकर लगी। राजे का शरीर है, समझ गया। पूछा—अरे, आज दिया-बत्ती नहीं हुई? ऐसे कैसे पड़ी है? उठ न।

राजे चुप, उत्तर में और फफककर रो दी।

उस अंधकार और गम्भीर नीरवता में राजे का वह रुदन और भी तीव्र होकर रामचरन के कानों में पहुँचा। एकदम राजे के पास पहुँचकर, उसके मांसल शरीर पर हाथ फेरता हुआ बोला—क्या हुआ री, रोती क्यों है?

राजे फिर भी चुप रही।

रामचरन—क्या मालकिन ने कुछ कहा है?

नशा उतर गया था, वास्तविकता सामने थी। रामचरन जानता था कि मालिक कुछ नहीं कह सकते, अगर कुछ कहा होगा तो मालिकिन ने ही। तभी उसने ऐसा प्रश्न किया था। उत्तर में राजे ने रुदन का स्वर और भी तीव्र कर दिया। रामचरन झुँझला गया। इसने तो सारा मज़ा ही आज किरकिरा कर दिया। बोला—तो कुछ बताएगी भी या रोए ही जायगी!

अब राजे को अपने को रोक पाना कठिन हो गया—क्या बोलूँ, तुम तो दुनिया की बादसाहत लेकर आ रहे हो न! राजे मरे चाहे जिए, जाने तुम्हारी बला! हजार बार कह दिया कि यह निगोड़ी लत छोड़ दो पर क्यों मानने लगे? लो, अब पियो ताड़ी मेरा कलेजा जला कर!

यह पहेली रामचरन की समझ में नहीं आई। अभी शाम तक तो यह भली चंगी थी, अब एकाएक इसे क्या हो गया? अगर हमेशा की तरह केवल उपदेश ही होता तो बात दूसरी थी। आज तो यह रो रही है। रामचरन यह नहीं सोच सका कि इस रोदन और ताने का संबंध उस इयररिंग से भी हो सकता है। वह कुछ स्पष्ट कह नहीं रही, क्या किया जाय? हारकर रामचरन जाकर अपनी दरी पर पड़ रहा। और दिन होता तो इस तरह के कटुवाक्यों पर राजे को कुछ प्रसाद मिल ही रहता पर आज उसके रुदन ने रामचरन को उस पर हाथ नहीं उठाने दिया।

राजे ने देखा, रामचरन चुपचाप दरी पर जाकर पड़ रहा। उसका रुद्ध और निष्फल आत्मसम्मान तिलमिला उठा। उठकर टटोलकर ढेबरी जलाई और ले जाकर रामचरन की दरी के पास ईंटे पर रख दी। अनजाने ही एक-दो बूँद आँसू धरती पर गिर पड़े। रामचरन आँखें मिलमिला कर देख रहा था। पीठ की कुर्त्ती उठाकर रामचरन को दिखाती हुई बोली—देखो अपनी करतूत। अब तो कलेजा ठण्डा हुआ न!

नीला-नीला और धुँधला-धुँधला बेंत का निशान पीठ पर अब भी उभरा हुआ था। गोरा गात अभी तक उन चिह्नों को अपने में दबा नहीं सका था। रामचरन काँप गया—यह क्या री ? किसने मारा है ?

राजे—मालकिन ने।

रामचरन—क्यों ?

इस 'क्यों' का उत्तर देने में राजे का दर्द एक बार फिर कसक उठा। रुककर कहा—उनका सुबहा मेरे ऊपर हुआ। मुझसे पूछा तो मैंने साफ-साफ बता दिया।

रामचरन समझ गया, पूछा—तब भी मारा ?

राजे—क्यों न मारें ? तुम किसी का खून कर दो और मजिस्ट्रेट के सामने कह दो कि खून किया है, तो क्या बच जाओगे ?

रामचरन को इस तर्क के सामने परास्त होना पड़ा पर रह-रहकर उसे यही सोच होने लगा कि स्पष्ट चोरी स्वीकार कर लेने पर मारना नहीं चाहिए था। किन्तु अधिक देर तक यही सब सोचते रहने का समय नहीं था। झट से उठकर उसने हाँडी में से हल्दी निकाली और चूने के अभाव में वही घिसकर चोट के स्थान पर लगा दी। जब वह लगा रहा था तो राजे उसकी गोद में पट पड़ी हुई थी। इस समय उसका समूचा मान-अपमान गलकर बह गया था। पति के हाथों की सेवा पाकर धन्य हो उठना स्त्रियों का स्वभाव है। और फिर, रामचरन जैसा पति, भूले से भी जो उसे आँखों की ओट नहीं करना चाहता। नशे में चाहे जो हो, नहीं तो ऐसा 'मरद' और कौन है ? रामचरन की प्रशंसा के भावावेश में राजे यह भी भूल गई कि कल से वह बेकार हो जायगी—कहीं और चाकरी ढूँढ़नी पड़ेगी। जिन्हें रोज़ कुआँ खोदना और पानी पीना है, उनके लिए दो दिन भी खाली बैठे रहना मौत को न्योतना है। अधिकारों की लड़ाई हो तब भी बात दूसरी है। उस समय एक दबी शक्ति बल देती रहती है, पर यहाँ तो और ही बात थी।

तेल के अभाव में धुआँ देती ढेबरी भक से बुझ गई। आधीरात का अंधकार उस कोठरी में और भी घना हो उठा, बाहर की चाँदनी का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राजे का दर्द हल्दी के लेप से कम होने लगा, यद्यपि आग न होने से वह गर्म भी नहीं की जा सकी थी। वास्तव में दर्द कम हुआ भी नहीं था रामचरन के हाथों की सेवा ने राजे को दर्द भूल जाने पर बाध्य किया था। राजे दरी पर चित्त लेटती हुई बोली—मालकिन ने निकाल दिया है। कल से क्या होगा?

रामचरन चौंका—निकाल दिया? है तो क्या कल तू काम पर नहीं जायेगी?

राजे—कौन मुँह लेकर जाऊँगी? मालिक ने कहा—कल से मत आना, कहीं और काम खोज लो।

रामचरन—अभी तो तू कह रही थी, मालकिन ने निकाल दिया है!

राजे—वह एक ही बात है। मालिक ने मालकिन के ही मारे तो निकाला! वह बिचारे तो गऊ आदमी हैं। कभी एक जुबान नहीं बोलते।

रामचरन को जैसे मुक्ति मिली—तभी मैं कहूँ। अगर मालिक की बात है तो उनको मैं समझा लूँगा। गोड़धरिया करूँगा तो मान जाएँगे।

राजे को यह स्वीकार नहीं था। जहाँ एक बार अपना इतना अपमान हुआ, वहाँ किस मुँह से वह फिर जाएगी? मालकिन उसे देखते ही खाने दौड़ेंगी। बोली—नहीं, वहाँ तो फिर मैं न जाऊँगी, चाहे जो हो जाय। यही तो होगा कि दस-पाँच दिन बैठी रहूँगी, तो वह मुझे कबूल है। तुमको मालिक के पास जाने की जरूरत नहीं है। घर में मालिक का सासन नहीं चलता, मालकिन का चलता है।

रामचरन के सामने अब एक नई समस्या थी, जो सुलझना नहीं चाहती। उसने सोचा था, बाबू लखनलाल की खुशामद करेगा, उनसे

कहेगा सुनेगा तो वह मान जाएँगे, राजे नौकरी पर फिर बहाल हो जायेगी। मालकिन के पास जाने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता उनकी जो कुछ और जैसी प्रशंसा उसने एकाधिक अवसरों पर राजे से सुनी है, उसके आधार पर वह निश्चित रूप से यह जानता है कि उनसे क्षमा या उदारता पाने की अपेक्षा बालू में से तेल निकालना अधिक सुगम है। तब वह क्या करे? ले-देकर कहीं पैंतीस चालीस रुपये तो उसे मिल पाते हैं। वह तो कहो, मँहगाई मिलाकर इतना भी मिल जाता है, नहीं तो उसके जैसे गारा चूना ढोने वाले टके पैसों पर मिलते हैं। आज आठ वर्षों से वह इसी मिल में खून-पानी एक कर रहा है, न जाने कितनी ईंटे उसने इधर से उठाकर उधर धर दीं, मिल के इमारत की कितनी दीवालें उसके परिश्रम से बनी हैं, अपने आवेग-मय, पुलक-स्फूर्तिमय यौवन के कितने सुनहले क्षण उसने जेठ की तपती दोपहरी में नंगे पाँव जलती धरती पर तप्त बालू बटोर-बटोर कर रखने में व्यतीत कर दिए, फिर भी वह रहा मज़दूर का मज़दूर। उसका उस इमारत की एक ईंट पर भी हक़ नहीं है जबकि मिल के मालिक के छोटे भाई का लड़का भी मिल को अपनी चीज़ समझता होगा। उसे जो पैसे अपने शारीरिक श्रम के सौदे के परिणामस्वरूप मिल चुके हैं वही बस हैं। पैसे देनेवालों से इससे कोई मतलब नहीं कि पैसा पाने वाले के आवश्यकता-निवारण के लिए वह यथेष्ट है या नहीं, उन्होंने तो बाज़ार-भाव देखते हुए तथा घंटों के स्वनिश्चित मूल्य के हिसाब से दे दिया। तो, यह पैंतीस-चालीस रुपए आज की महंगी के ज़माने में होते ही क्या हैं? ऊपर से उसे यह दारू की लत लग गई, महीने की आधी कमाई तो इसी में उड़ जाती है। और लत लगे भी क्यों न! दिन-दिन भर मन-मन भर का बोझ ढोते फिरो, ऊपर से 'मेट' की गालियाँ सुनते रहो, कहीं साहब आगया तो और भी जुलुम, और शाम को घर लौटो तो वही खाँव-खाँव, हाय पैसा! ज़िन्दगी में

हँसने-बोलने को जैसे कुछ है ही नहीं। तो, यह लत तो उसकी अब छूटने से रही! राजे काम पर जाती थी तो हर महीने दस-पाँच कमा ही लाती थी, अब वह भी गया। मालिक आदमी पहचानते हैं, उनके दिल में दया-धरम है, पर मालकिन! ना बाबा, उनसे वह कुछ नहीं कह सकता।

राजे ने उसकी विचार-धारा भंग की—अब क्या सोच रहे हो? मैं जब तुम्हें ऐरन देकर जा रही थी तभी समझ गई थी कि आज कुछ गड़बड़ होगा। असगुन तो राह में ही हो गया था, बिल्ली रास्ता काट गई थी। और यह सब तुम्हारे कारन हुआ है। न तुमको यह लत लगी होती, न यह सब होता। अबसे भी कान धरो तो एक बात है। मान लो, आज ही चोरी के इलजाम में जेहल भेज दिया होता, तो?

रामचरन के पास यह समझने-भर की बुद्धि नहीं थी कि क़ानूनन इस अपराध पर उसे जेल कोई नहीं भेज सकता था। इसका क्या सुबूत कि उसने चोरी की? वह तो बाबू लखनलाल के यहाँ आया नहीं। राजे भी ऐन मौक़े पर मुकर जाय कि उसने इयररिंग देखा ही नहीं, तो? लेकिन नहीं, वह तो मालकिन से कह चुकी है कि वही ऐरन ले गई है। पर इससे क्या, सुबूत क्या है? अपढ़ और अचेतन व्यक्तियों के लिए थाना-पुलिस, जेल आदि बहुत बड़ा मतलब रखते हैं। लाल पगड़ी के सम्पर्क में आना बहुत से लोगों के लिए यमदूतों के हाथ में पड़ने से अधिक भयंकर है। चुपचाप कान पर हाथ धरते हुए रामचरन ने कहा—ले राजे, आज से कसम खाता हूँ जो कभी बलई के दूकान की ओर नजर भी फेरूँ। अगर बिस्वास न हो तो तेरे चरन छूकर परतिज्ञा करता हूँ।

रामचरन जैसे ही उसके पाँव छूने लगा, राजे उठकर बैठ गई। उसका हाथ हटाती हुई बोली—हैं-हैं, यह क्या करते हो? मुझे नरक में क्यों डालते हो? मरद की बात ही काफी है। मुझे बिस्वास है।

उस दिन दोनों सुबह तक जागते ही रहे। चिन्ता का विषय एक ही था, राजे के बेकार हो जाने से काम कैसे चलेगा! बाबू लखनलाल के यहाँ जाकर रोने-गिड़गिड़ाने का अब प्रश्न ही नहीं रह गया था। राजे किसी तरह वहाँ फिर जाने को प्रस्तुत नहीं हुई। उसके पाप के यहाँ चार-चार भैंसे लगती थीं, अपना घर का मकान था, मंहगू अहीर का आस-पास बड़ा नाम था, आत्म-सम्मान की भावना उसमें थी। उसके नस-नस में अभिमान भरा था। बाप के यहाँ वह सोच भी नहीं सकती थी कि सासुरे जाकर उसे चाकरी करनी होगी, पति के यहाँ भी उसे अपनी स्थिति से समझौता करने में काफ़ी दिन लगे थे। हारकर ही उसे बाबू लखनलाल के यहाँ काम करने को प्रस्तुत होना पड़ा था। आज तक के अपने अनस्तित्व जीवन में उसे कभी आत्म-सम्मान की इतनी बड़ी हानि नहीं सहन करनी पड़ी थी। फिर, एक बार अपने 'अहं' का गला मरोड़कर जब वह कहीं चाकरी करने पर भी प्रस्तुत हुई तो यह अपमान सहन करना पड़ा। उसको याद है, मंहगू महतो एकबार आकर बेटी को काम पर जाते देख गए थे। जाते-जाते कह गए कि राजे ने उनके कुल में कलंक लगा दिया। उनकी मूँछ नीची हो गई। जो बात उनके खान्दान में कभी नहीं हुई वह उन्हें बुढ़ौती में देखनी पड़ी। छिः छिः, औरत की ज़ात नौकरी करे, और फिर उनकी बेटी! इतना बड़ा अधरम कलिकाल में ही संभव हो सकता है। कुछ दिनों अपने बेटी-दामाद से बोले तक नहीं। उनके घर रहकर ऐसा करती तो शायद उसका गला काट डालते, पर क्या करें, अब तो कन्यादान कर चुके। अब जो न हो, सब थोड़ा है। हाँ, अगर पहले से जानते कि दामाद में बेटी का खरच उठाने की भी सामरथ नहीं है तो उसके हाथ कभी न देते, चाहे जलम-भर अनब्याही रह जाती। ऐसे नाकवाले खान्दान की बेटी होकर एक तो उसने नौकरी की, दूसरे वहाँ से निकाल दिए जाने पर फिर गिड़गिड़ाने जाय, यह उससे न होगा। रामचरन ने

बहुत समझाया-बुझाया, ऊँच-नीच बतलाया, मंहगी के ज़माने की दुहाई दी पर राजे टस से मस नहीं हुई। अन्त में, सबेरा हो गया पर कोई निश्चय नहीं हुआ। रामचरन मिल जाते-जाते कह गया—देख री, फिर सोच ले। उनके जैसा भले-मानुष मालिक फिर नहीं मिलेगा। अगर तू करने पर उतारू हो तो मैं जाऊँ, रो-गाकर उनको राजी करूँ!

राजे ने ऐसे देखा जैसे उसे जो कहना-सुनना था, वह कह-सुन चुकी।

दोपहर को घरवालों के मिल चले जाने पर आस-पास की स्त्रियाँ अपने-अपने क्वार्टरों के सामने गृहस्थी के छोटे-मोटे काम लेकर बैठीं। अभी कल ही अलीबख्श मिल की ग़ल्ले की दूकान से गेहूँ ले आया है, आधी धूल है। उस आधे में भी जौ और चना मिला हुआ। मिल-वाले जाते हैं और गोदामों से माल ठेलों पर लाद ले आते हैं। परखी लगाकर देखना चाहो तो सब बोरे देख नहीं सकते, क़ायदा भी नहीं और समय भी नहीं। टोटल रैशनिंग ने बाज़ार में ग़ल्ला मिलना बन्द कर दिया है। घरवाली सूप से पछोरती जाती थी और मिलवालों को गालियाँ दिए जाती थी। बिचारी की समझ में यह नहीं आता था कि मिलवाले गेहूँ पैदा नहीं करते, उन्हें तो सरकारी माल बेचना है। जो गालियाँ देनी हों, सरकार को दो। रामदीन की बहू अपने मोहना के लिए उसके बाप की उतारी फ़तुही फाड़कर मिर्ज़ई सिल रही थी। रामकली के सिर में जुएं पड़ गई थीं, उसकी माँ धनियाँ बैठी मार रही थी। पीर-मुहम्मद की पतोहू कुएँ की जगत के नीचे बैठी हुई दोपहर के जूठे बर्तन मल रही थी, रह-रहकर इस आशा से इधर-उधर देख लेती थी कि कोई आ जाय तो पानी माँगे। कुएँ पर चढ़ने की उसे इजाज़त नहीं थी। पिछली बार, जब वह नई-नई आई थी और कुछ जानती नहीं थी, डोरी और डोल लेकर कुएँ पर चढ़ गई थी।

उस समय जो थुक्का-फ़ज़ीहत हुई थी, उसे अभी भी याद है। और तो और, उसके मरद ने भी मारा था, अपनी हैसियत देखकर क्यों नहीं चलती। ज़्यादा घर हिन्दुओं के हैं, सिर फुड़वाएगी क्या! दूर, बरगद के पेड़ के नीचे, जहाँ घने पातों ने जेठ की तपन को शरण नहीं लेने दिया था, आस-पास के भिन्न आकृति और वर्ण के बच्चे, आपसी सामाजिक वर्ग-भेद की दूरी भूल, न जाने कौन-सा खेल खेल रहे थे। नंग-धड़ंग सब अपने में ही मस्त थे। सारल्य और सभ्यताभिमान का अभाव उनके मुखों पर झलक रहा था।

राजे भी हाथ का अपना काम निबटाकर क्वार्टर के बाहर आई। उसे करने को अब कुछ नहीं था। शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगी। सम्पूर्ण विश्राम का यह एक दिन उसे काट रहा था। काम का अभाव आज जितना उसे कभी नहीं अखरा। एक हाथ दरवाज़े की चौखट पर रखे, भारी और उदास मन से थोड़ी देर खड़ी रही। मन ही मन वह कल्पना करने लगी कि बाबू लखनलाल के यहाँ इस समय क्या हो रहा होगा। सबसे बढ़कर उसे मुनुआँ की याद आ रही थी। कैसा हाथ उठाकर वह उसकी ओर बढ़ा था। उसकी अपनी गोद भरते-भरते रह गई, एक नन्हे-नन्हे हाथ-पावोंवाले जीव को अपना कहकर, अपने अन्तस की छाया में रखकर, अपना रक्त पिलाकर, पालने की उसकी साध नहीं फली। पर इससे क्या, वह भी उसी वर्ग की है जो माँ बनता है। उसी जाति की है, जिसकी कोख से वात्सल्य और ममता के मधुनिर्झर सदा झरते रहते हैं। वह जी-जान से मुनुआँ को प्यार करने लगी थी। उसी मुनुआँ को मालकिन ने उसकी गोद तक में नहीं आने दिया। 'माँ' का यह 'अहं' उसे पीड़ा पहुँचाने लगा।

झिनकू की माँ ने देखा, राजे इस समय यहाँ कैसे! यह समय तो उसका काम पर रहने का है। दूर से ही पुकार कर कहा—क्यों री, आज जी अच्छा नहीं है क्या?

प्रश्न उसीसे किया गया है, राजे समझ गई। बोली—नहीं, जी तो अच्छा है। यों ही बैठ गई।

झिनकू की माँ—आज काम पर नहीं गई क्या ?

राजे—नहीं, वह काम छूट गया।

'काम छूट गया'—यह वाक्यांश, लगा कि, सभी ने सुना। एक साथ ही क्यों, कैसे और कब की प्रश्नावलियाँ फूटने लगीं। राजे ने निश्चल भाव से सारी कथा कह दी, छिपाने की कोई बात उसे न मिली। साँस रोके सब वह रोचक कथा सुनती रहीं। जब राजे कह चुकी तो एक अधेड़ स्त्री बोली—अरे, उसके लच्छन ही ऐसे हैं। देखा नहीं, नसे में इसको मारता कैसा है !

दूसरी ने कहा—इसी को कहते हैं 'आन के धन पर लछिमी-नरायन।' औरत की कमाई खाते सरम भी नहीं लगती !

तीसरी ने कहा—मेरा ऐसा मरद हो तो मैं बात भी न करूँ !

चौथी ने कहा—मुँह झुलस दूँ, मुँह ऐसे मरद का। और क्या ?

और किस-किसने क्या-क्या कहा, राजे नहीं सुन सकी। झपटकर उठकर अपनी कोठरी में चली आई। उसका रुद्ध और निष्फल आत्म-गौरव चोट खाकर तड़प उठा। आज उसका पति ऐसा हो गया कि लोग उसे यों खुले आम गालियाँ दें ! और वह कान खोले सुनती रहे। अरे, क्यों नहीं उसकी छाती फट जाती ! न जाने किसके-किसके मरद कौन-कौन सा नसा करते हैं, कोई तो ऐसी बदनामी नहीं उठाता। तब क्या बात है जो उसके मुँह पर ही सब उसके आदमी को बुरा भला कह रही हैं। इस बखत सब सती लच्छमी बनी हैं, अपने-अपने मरद को क्यों नहीं देखतीं। कोई गँजेड़ी है, कोई सराबी, कोई दूसरे की मेहरिया रखे है। उसका मरद तो किसी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। सराब ही तो पीता है, तो कौन नहीं पीता ? हाँ, चोरी की, यही बुरा किया।

लेकिन राजे यह नहीं सोच सकी कि उसके इसी कृत्य ने आज उसे अपमान और लांछना के अथाह सागर में डाल दिया है। अपनी कमाई पर आदमी चाहे जो करे, उतना बड़ा अपराध नहीं है। कम-से-कम समाज उससे इतनी हानि नहीं समझता जितनी पर द्रव्यापहरण से तथा दूसरों की स्थिति से नाजायज़ फ़ायदा उठाने में है। जो काम सह नहीं है वह किसी भी स्थिति में सही नहीं हो सकता किन्तु अपराध की गुरुता अवश्य कम हो सकती है। शराब पीने की नैतिक स्थिति चाहे जो हो, आर्थिक दृष्टि से वह हानिकारक है, यह स्वतःसिद्ध है। नैतिक पहलू हम भूल भी सकते हैं, इससे विशेष हानि न भी हो किन्तु आर्थिक पहलू के विस्मरण से काम नहीं चलेगा।

दिन-भर राजे कोठरी में पड़ी रही, उससे कुछ करते नहीं बना। रह-रहकर भीतर ही भीतर वह उन्मथित हो उठती थी। उस दिन शाम को रामचरन मिल से लौटा तो बहुत खुश। राजे को देखते ही बोला—तेरे लिए काम ठीक कर आया हूँ। क्या करूँ, तू तो जिद पकड़ गई कि बाबू साहब के यहाँ जायगी ही नहीं। कल से मेरे साथ ही काम पर चलियो।

मिल में क्या काम वह करेगी, नहीं सोच सकी। वहाँ तो मसीनें चलती हैं, वह कैसे चलाएगी! और फिर, इतने मर्दों के बीच में! कहीं यह पागल तो नहीं हो गए हैं। बोली—मुझसे मसीन कैसे चलेगी?

रामचरन—अरे, मसीन नहीं चलानी है। मसीन तो बिजली से चलती है। तुझे तो बिल्डिंग डिपार्ट में काम मिलेगा। जहाँ मैं करता हूँ, वहाँ।

राजे—सब मरद ही मरद भरे होंगे।

रामचरन—बहुत-सी औरतें हैं। उन्हीं के साथ रहना। बस, यहाँ से साथ चलेंगे और साम को साथ ही लौट आएँगे।

राजे कुछ आश्वस्त हुई। पूछा—क्या मिलेगा?

रामचरन—नौ आने रोज।

राजे—वहाँ तुम रहोगे, तभी अच्छा है। नहीं, मैं तो न जाती।

रामचरन—हाँ रे हाँ, मैं तो रहूँगा ही, नहीं तुझसे जाने को कहता ही क्यों?

नियत समय पर बलई की दूकान रामचरन को बुलाने लगी। एक बार तो उसके जी में आया कि उठकर चल दे पर रात का वचन उसके आड़े आया। साथ ही राजे की पीठ पर उभरा बेंत का निशान और उसका अपमान भी याद आया। उसी के कारण तो राजे को मार खानी पड़ी। इस समय यदि वह जाय तो ऐसा ही होगा जैसे राजे की छाती पर पाँव रखकर जा रहा हो। वह किसी तरह ज़ब्त किए रहा। ज्यों-ज्यों समय भागता गया, उसकी मुद्रा कठोर होती गई, पेट फूलने लगा। बेचैन हो-होकर बाहर-भीतर करने लगा। राजे समझ गई, बोली—दारू याद आ रही है न?

रामचरन के जी में आया, दौड़कर या तो राजे का गला घोंट दे या अपना। यहाँ तो फाँसी लग रही है और इसे हाँसी सूझ रही है। गुर्रा कर रह गया, कुछ बोला नहीं।

राजे—एक-दो दिन परेसानी होगी, फिर सब ठीक हो जायगा। सुरू-सुरू में लत छोड़ने में ऐसा ही होता है।

रामचरन को क्रोध आ गया, फिर भी रोक कर कहा—तू चुप क्यों नहीं रहती भाई!

किसी तरह रूखा-सूखा खा-पीकर दोनों सोए। धीरे-धीरे रामचरन की बेचैनी घटती गई। कुछ स्वस्थ हो चला और शाम को बलई के यहाँ न जा पाने का सोच कम हो गया। राजे बोली—आज दोपहर को सब तुम्हें बुरा-भला कहती रहीं। मुझसे सुनते नहीं बना, मैं उठकर भाग आई।

रामचरन—कौन क्या कहता था ?

सब ब्योरेवार बताकर राजे ने कहा—अपने को कोई नहीं देखता। दूसरे के बखत सब तीसमार खाँ बन जाते हैं। न तुम ऐसे होते, न मुझे यह सब सुनना पड़ता। अब से भी तुम सुधर जाओ, मैं परमेसुर से यही मनाती हूँ।

रामचरन—देख री, कभी-कभी तो पी लेने दिया कर। हाँ—हमेसा नहीं पियूँगा।

पता नहीं, रामचरन ने यह व्यंग्य किया था या सही कहा था, राजे ने आश्चर्य से कहा—फिर वही बात ! अभी जी नहीं भरा क्या ? अब राजे को मार डालोगे तभी दम लोगे ?

रामचरन ने कान पकड़े—अच्छा बाबा, अच्छा। अब नहीं पियूँगा। बस न ! तू तो गले पड़ गई भाई !

दूसरे दिन सुबह रामचरन और राजे साथ-ही-साथ मिल गए। रात को जितनी देर तक रामचरन जागता रहा, राजे के मांसल-शरीर पर हाथ फेरता रहा। कल के चोट की पीड़ा राजे बिल्कुल भूल गई। यदि इसी तरह पति की स्नेहाधिकारिणी वह रहे, उसके हाथों की सयत्न सेवा मिलने का आश्वासन उसे रहे तो वह रोज़ पिटने को प्रस्तुत है। एक दिन में ही इतना महान् परिवर्तन ! आज न तो उसे रामचरन के हाथों मार खानी पड़ी, न रामचरन सदा की भाँति बलई के यहाँ गया, न रामचरन से सात-आठ वर्ष की अभ्यस्त उदासीनता और उपेक्षा मिली। भगवान् करें, इनकी मत सदा ऐसी ही रहे।

रामचरन ने राजे को ले जाकर बिल्डिंग मेट से मिला दिया। हीरालाल मेट ने एक बार ऊपर से नीचे तक सफ़ेद धोती में और लाल कुर्ती में अपने उज्ज्वल, इन्द्रायण-फल-से आकर्षक, यौवन को दबाए राजे को अच्छी तरह देखकर, मूँछों में मुसकिरा दिया और ऊपर से आश्वासन दिया—हाँ, हाँ, सब हो जायगा। इसे भेज दे, जाकर काम करे। फ़ार्म वग़ैरा, मैं सब ठीक कर दूँगा।

ठीक तो सब हो जायगा पर राजे उसकी लोलुप दृष्टि देखकर घबरा गई। वह ऐसे क्यों देख रहा था? क्या करेगा? नर के आँखों की भाषा का अर्थ लगाना नारी को खूब आता है। यह कला उसे जन्म के साथ ही मिली है। हीरालाल की भूखी आँखों की क्षण भर की दृष्टि के आगे राजे अपना उभरा वक्ष लेकर खड़ी न रह सकी, धीरे से रामचरन की आड़ में सरक आई। हीरालाल ने टाइम आँफ़िस में जाकर बिल्डिंग के हाज़िरी बाबू से न जाने क्या फुस-फुस बातें की और एक फ़ार्म लेकर आया। राजे से अँगूठा-निशान लगाने को कहा। राजे की समझ में नहीं आया कि कहाँ लगाए और क्यों लगाए। बाबू लखनलाल के यहाँ नौकरी करने गई थी तब तो ऐसा कुछ नहीं हुआ था। वह यह सब सोच ही रही थी कि हीरालाल ने चट्-से उसका हाथ पकड़ लिया और हाथ का अँगूठा स्याही के दस्ते पर घिस-कर फ़ार्म पर लगा दिया। पहले दिन के ही इस अनुभव से राजे काँप उठी, आज तक कभी किसी परपुरुष ने उसके शरीर का स्पर्श नहीं किया था। अकस्मात् स्पर्श हो जाने से भी राजे काँप उठती थी, फिर यह तो जान-बूझकर, दिन के खुले प्रकाश में लोगों की नंगी दृष्टि के सामने ही स्पर्श किया गया था। और वह रामचरन को क्या कहे, उसकी उपस्थिति में ही किसी दूसरे ने इतनी स्वाधीनतापूर्वक राजे का हाथ पकड़ लिया और वह कुछ नहीं बोला। शायद क्वार्टर में या और कहीं ऐसा होता तो रामचरन मरने-मारने पर उतारू हो जाता पर यहाँ और ही बात थी। यहाँ अकड़ दिखाने का अर्थ था राजे की रोज़ी से हाथ धोना, जिसे इस समय को अपनी स्थिति में रामचरन कभी सहन नहीं कर सकता था। पेट आदमी को क्या-से-क्या बना देता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सामने था। राजे मन मसोस कर रह गई, क्यों रामचरन इस कृत्य का प्रतिवाद नहीं कर सका।

उस दिन दिन भर राजे कड़ी धूप में सिर पर गारा-चूना ढोती

रही। उसके साथ काम करनेवाली स्त्रियाँ भी अजनबी की तरह उसे देखती रहीं। अपेक्षाकृत कम वयस की एक लड़की ने कहा—मेट ने रखा है न ? हाँ, भाई, क्यों न रखेगा ? उसे तो जवान औरत चाहिए, चाहे कोई भी हो। तेरा आदमी क्या करता है ?

राजे—इसी जगह तो हैं। वह क्या गारा सान रहे हैं।

दूर पर रामचरन गारा गीला कर रहा था। एक नज़र उसकी राजे पर ही थी। युवती ने देखकर कहा—रामचरन की घरवाली है क्या ?

राजे ने उत्तर में माथा झुका लिया।

हीरालाल दिन भर में कितनी ही बार उधर से आया गया। धोती को घुटनों तक उठाकर कमर में बाँधे राजे को काम में लगी देख उसे एक अजीब सुख मिलता। उसकी भारी-भरकम देह एक अजीब आह्लाद से हलकी हो उठती। राजे के छोटे-छोटे गोरे पावों को हिलते-डुलते देख, वह कल्पना करता कि, जैसे वह उसके कलेजे में चल-फिर रही हो। यह सुख, यह आनन्द वैसा ही था जैसा पंछी को पिंजरे में फुदकते देखकर उसके पालनेवाले को होता है।

राम-राम करके साढ़े पाँच का घंटा बजा और दिन भर के जानवर आदमी बने। पावों में जैसे कोई असाधारण शक्ति आ गई हो। सब एक साथ मिल के फाटक की ओर भागे। स्त्रियों ने अपनी धोतियाँ ठीक कीं, पेशाबखाने के पास लगे बंबे से हाथ-पाँव धोए, सिर पर की गेड़री उतार कर हाथ में ली। मर्दों ने अपने कुर्त्ते और टोपियाँ झाड़ीं। फाटक पर सिपाही खड़े थे, सबके शरीरों और कपड़ों पर हाथ फेर कर निश्चय कर लिया कि चोरी की कोई चीज़ कहीं छिपी तो नहीं है, तब बाहर निकलने दिया। स्त्रियों की तलाशी के लिए एक स्त्री खड़ी थी। सड़क पर एक हुजूम जा रहा था। आस-पास की कई मिलों के लोग सड़क पर मिलकर एक हो गए थे और घरों की ओर लपके जा रहे थे, जैसे गड़ेरिये ने अपने किसी बाड़े की भेड़ें एक साथ

खोल दी हों। दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद रात्रि की निश्चिंतता उन्हें बुला रही थी।

रामचरन और राजे अलग-अलग फाटकों से निकल कर बाहर सड़क पर मिले। क्वार्टर की ओर चलते हुए राजे बोली—तुम तो दिन भर नगीच भी नहीं आए। मैं उधर ही देख रही थी।

रामचरन—और मैं भी तो एक आँख उधर ही लगाए था। तूने देखा नहीं। तू हरकलिया से क्या बातें कर रही थी?

राजे—कौन हरकलिया?

रामचरन—जो तुझसे फुसुर-फुसुर बातें कर रही थी।

राजे—वह! बातें तो कुछ नहीं, वह कहती थी कि तू जवान है, तभी मेट ने रखा है।

रामचरन—जवान तो तू है ही भाई, पर इससे उससे क्या मतलब?

राजे—अब मतलब तो तुम जानो। जो बात थी, मैंने बता दी।

रामचरन ने कुछ सोचा, जैसे उसे याद आया। कहा—अब समझा। सारी मिल में मसहूर है कि हरकलिया मेट के यहाँ रात-बिरात आती-जाती है। उसके मुँह लगी है तभी काम पर अभी बहाल है, नहीं तो साहब कभी का निकाल देता। अब तुझे देखकर उसे सौतिया-डाह हुई है।

राजे तुनुक कर बोली—हटो, तुम्हें हरवक्त हँसी सूझती है। सौतिया डाह उसे क्यों होगी भला मुझसे?

रामचरन—क्यों? अगर तुझे देखकर मेट का मन उसकी ओर से डोल जाय तो?

राजे को बुरा लगा, कहा—जाओ, मैं नहीं बोलती। गन्दी-गन्दी बातें करते हो। फूहर-पातर बकते तुम्हें सरम भी नहीं लगती, मुँह न फूँक दूँगी उसका, जो मेरी ओर देखेगा!

रामचरन—ऐसी ही तो बड़ी सतवन्ती है न तू!

घर पहुँचकर राजे ने चूल्हा जलाया और बटलोही में चाय के लिए पानी चढ़ा दिया। वह रामचरन को दारू की कमी अनुभव नहीं होने देना चाहती थी, उसे इधर-उधर की बातों में बहलाए रखकर वह वक़्त टाल देगी। चाय पीकर जब दोनों बैठे तो व्यर्थ की बातें करती रही। जब कोठरी में अँधेरा घना हो गया तो उठकर ढिबरी जलाकर, खाने का सरंजाम लेकर बैठी। रामचरन को आश्चर्य हो रहा था, राजे इतनी बातूनी कब से हो गई।

एक दलदल से निकलकर राजे दूसरे दलदल में फँसी थी। शोषण के एक चक्र से निकलकर दूसरे चक्र में पिसने को तैयार हुई थी। यह शोषण का ऐसा चक्र था जिसके विषय में वह अभी अनजान थी। रामचरन जैसे निश्चिंत हो गया था। उसने राजे की नौकरी लगा दी। धीरे-धीरे उसकी शराब पीने की लत छूट गई। राजे ने मन-ही-मन वह दिन सराहा जब मलकिन के हाथ की बेंत उसकी पीठ पर पड़ी। यह उसी की बरक़त थी।

बाबू लखनलाल ने यह पता लगा लिया था कि राजे अब रामचरन के साथ मिल में काम करने लगी है।

तीन

समूचे देश के सुधिज्ञ कांग्रेस जनों ने कम्यूनिस्टों को गालियाँ दीं, उन्हें अपने संगठन में न रहने देने का प्रस्ताव पास किया, अगस्त-आन्दोलन के समय की उनकी नीति की निन्दा की। उन्हें देश-द्रोही कहने में भी कुछ लोगों ने गौरव का अनुभव किया। उनका अपराध सिद्धान्त रूप से चाहे जो बताया जाय, मन-ही-मन उनसे इसीलिए लोग चिढ़ते थे कि उन्होंने रेल की पटरियाँ नहीं उखाड़ीं, तार नहीं काटे, स्टेशन नहीं जलाए। ऐसा कोई उपद्रव नहीं किया जो भारत को जापान और अन्य फ़ासिस्ट देशों के हाथ में चले जाने देने में सहायता दे। कोई भी कांग्रेसजन यह नहीं चाहता था कि अपना देश एक बोझ उतार कर दूसरा बोझ लाद ले। किसी सच्चे कांग्रेसी का यह मत नहीं था कि एक जाति की परतंत्रता का जुआ गले से उतार, दूसरी जाति की दुर्वह पराधीनता का जुआ गले में डाल ले। गांधी जी के आदर्शों पर चलने वाला कोई भी देश भक्त यह नहीं स्वीकार कर सकता था कि अपनी जन्म-भूमि एक विदेशी के हाथ से छीनकर दूसरे विदेशी के हाथों में सौंप दे। गांधीजी तथा अन्य राष्ट्र कर्मियों की गिरफ़्तारी के बाद देश में अपने से ही चल पड़ा तोड़-फोड़ का आन्दोलन भारत को दासता के अविच्छिन्न सूत्र में जकड़ ही सकता था, कुछ और नहीं। क्रिप्स के वापस जाने के बाद भारत जिन राजनीतिक परिस्थितियों से गुज़र रहा था और युद्ध के परिणाम स्वरूप जो विभिन्न प्रतिक्रियाएँ हो रही थीं, उनमें आम जनता का

यह उपद्रव, हताश, अभावग्रस्त और राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन से असन्तुष्ट जनता का अपने अधिकारों की प्राप्ति का यह अदम्य उत्साह अग्नि में घी की भाँति हुआ, भले ही यह रास्ता सही न रहा हो। गांधी ने एकाधिक बार गला फाड़-फाड़कर कहा—जेल जाने के पहले और जेल से लौटने के बाद भी—कि हमारी नीति पराधीनता से छुटकारा पाने की है, न कि अधीनता को एक से छीनकर दूसरे को सौंप देने की, पर उस बूढ़े की बात संभवतः जनता तक पहुँच नहीं पाई। अधिकारियों ने, भारत की सुरक्षा के लिए भारत में स्वेच्छा से बने हुए कल्याणार्थी "जन सेवकों" ने भी बूढ़े का संदेश लोगों के कानों तक न पहुँचने दिया। कुछ महीनों तक कांग्रेस के नाम पर लड़नेवाले और हमारी सर्वशक्तिमान सरकार बहादुर, ताल ठोंकते हुए आमने सामने मैदान में डटे रहे। सरकारी दमन ने अपने प्रति घृणा ही अधिक उपजाई, कांग्रेस के नाम पर लड़नेवाले स्वनिर्मित सिपाहियों ने जनता की हानि ही अधिक की।

कम्यूनिस्ट ही ऐसे थे जिनकी खिचड़ी अलग पक रही थी। भारत के शुभेच्छु, उसके लिए प्राण तक दे देनेवाले कांग्रेसी, कम्यूनिस्टों की बेहयाई पर आश्चर्य कर रहे थे। इसे बेहयाई नहीं तो और क्या कहा जाय? समूचे देश का तिरस्कार और लांछन सिर माथे लेकर अपने निश्चित और अनुभूत ध्येय पर अड़े रहना, उसके लिए सर्वोत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहना सबकी दृष्टि में एक अक्षम्य अपराध था, हठधर्मी थी। समूचा भारत उन्मादग्रस्त की भाँति भीषण उपद्रव में लगा हुआ था, चारों ओर गिरफ़्तारी, लाठी, गोली, जुर्माने हो रहे थे, कलेक्टिव फ़ाइन की वसूली के भयंकर उपायों के कारण जनता आहि आहि कर रही थी, उस समय हमारे कम्यूनिस्ट लोगों को तोड़-फोड़ न करने को समझा रहे थे, हड़तालें रोक रहे थे। अपने को इस संतुलनकारी नीति के कारण खतरे में डालने से भी वह नहीं हिच-

करते थे। देश का दर्द उनमें भी कम नहीं था, परतंत्रता और गुलामी की कदर्यता और हीनता उन्हें भी कम नहीं सताती थी, भारत की मिट्टी, पानी, हवा को वह भी किसी से कम 'अपना' नहीं समझते थे, उनके हृदयों में भी स्वतंत्रता की धूनी निरन्तर सुलगती रहती थी, वह भी जननी जन्म-भूमि की सेवा, पूजा और भक्ति के अर्घ्यदान में किसी से पीछे नहीं थे, वह भी अपनी सबसे बड़ी और पुरानी, महान राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस की ही सन्तान थे—उस कांग्रेस की, जिसे कोटि-कोटि दलित, पराजित, शोषित नर-नारियों के आशा-विश्वास का और शुभाकांक्षाओं का बल प्राप्त था, जो अधीन देश के मुक्तियज्ञ की सबसे बड़ी 'होता' थी। मार्क्स ने उन्हें जो भावना दी थी, गांधी ने भारत में उसे वाणी दी। वास्तव में, शोषितों और दलितों का अपने अधिकारों की प्राप्ति का युद्ध भी कांग्रेस के मुक्ति-संग्राम का एक अनिवार्य और अविभाज्य अंग था। वह इसी संग्राम के सैनिक थे। देश के राशि-राशि मजूर-किसानों में बिखर कर, प्रत्येक दलित-शोषित के साथ एक होकर, सभी त्रस्त, घुसे-पिसे वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित कर वह स्वतंत्रता, समता और मुक्ति का जयघोष कर रहे थे—करना चाहते थे। हाँ—उनकी नीति दूसरी थी, वह भावनाशील नहीं थे, आँधी के साथ बह नहीं सकते थे, उचितानुचित की सीमा लांघकर, भेड़ों के झुण्ड के साथ नहीं चल सकते थे, अपनी बुद्धि का वह पूरा उपयोग करना जानते थे। यही उनका दोष था।

आज पाँच बजे ही लखनलाल घर से निकल पड़े थे—उन्हें 'शेविंग स्टिक' लेनी थी। शिवाले के पास रिक्शा रोककर उन्होंने सोचा, चाय पी लें। भारत रेस्तरां में पहुँचते ही उन्होंने देखा—सामने ही टेबुल पर तरुलता बैठी है। सामने लस्सी का गिलास है और हाथ में एक पत्र। इन्हें देखते ही बोली—आइए आइए कॉमरेड, आज कई दिनों बाद दिखे।

लखनलाल ने कहा—हाँ, इधर मिल नहीं सका। कोई खास बात भी तो नहीं थी। क्या पढ़ रही थीं ?

तरुलता ने पत्र लखनलाल की ओर चुपचाप बढ़ा दिया। उसमें लिखा था—"मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूँ! जब तुमने मुझे जीवन-पथ पर इतनी दूर लाकर खड़ा कर दिया है, तो आगे ले चलने का भी उत्तरदायित्व तुम्हारा है।—रामप्रसाद।"

लखनलाल—इसमें तो अच्छे-खासे उपन्यास का मज़ा आ गया। कम-से-कम गुदगुदी ज़रूर होती है। यह रामप्रसाद को क्या सूझा ?

तरुलता—अब यह तो वही जानें। मुझे तो जब से यह मिला है, मैं बड़ी परेशान हूँ।

लखनलाल—क्यों, परेशानी कैसी ?

तरुलता—आइए, उधर चलकर बैठें। ब्यॉय, एक ट्रे चाय और आलू की पकौड़ियाँ लाना। और जो नमकीन हो, वह भी।

बीच की गोल टेबुल से हटकर बगल की टेबुल पर दोनों बैठे और तरुलता ने पर्दा खींच दिया। बोली—परेशानी नहीं तो और क्या है। बताइए। हज़रत ब्याह करने की सोच रहे हैं।

लखनलाल—कहाँ ? यह तो इसमें नहीं लिखा है।

तरुलता—उस दिन जब आपने मुझे उनके साथ बाँकीपुर भेजा था, लौटने में रात हो गई थी। धूल-धक्कड़ से भरी सड़क पर हमारी साइकलें चली जा रही थीं। मुझे वह अन्धकार बड़ा प्यारा लग रहा था। रास्ता कटे कैसे, यों ही जीवन में सेक्स के स्थान पर बातें होने लगीं। उसी सिलसिले में उन्होंने जो बातें कहीं उससे मुझे लगा कि वह मुझे ब्याह कर घर में रखना चाहते हैं।

लखनलाल—तो यह शुभ-कार्य जितनी जल्दी हो सके, अच्छा है।

तरुलता ने धीरे से पूछा—तुम भी ऐसा कह रहे हो कॉमरेड ?

लखनलाल—क्यों, क्या ब्याह न करोगी ?

तरुलता—ब्याह ही करना होता तो वह पी० सी० एस बिचारा क्या बुरा है ? मज़े से खिलावे-पहनावेगा तो !

रामप्रसाद जिस मकान में रहता है, उसके बग़ल के मकान में एक बंगाली-परिवार रहता है। मकान की छत थोड़ी नीची है तभी रामप्रसाद वहाँ का सब कुछ देख सकता है। गृहपति लगभग ५०-५५ की वय के होंगे, शहरी ढंग से रहते हैं, लड़ाई के ज़माने में पनपी किसी फ़ैक्टरी में अस्सी रुपए महीने पर काम कर रहे हैं। बड़ा लड़का बाहर के किसी स्कूल में मास्टरी करता है। यहाँ घर में केवल पिता, माता और एक लड़की पन्द्रह-सोलह साल की, और दो छोटे लड़के हैं। पिछले साल गर्मियों में एक दिन सुबह लड़की को छत पर सोकर उठने में देर हो गई। और लोग उठकर नीचे चले गए थे। रात को लड़की, जान पड़ता था, देर तक पढ़ती रह गई, किसी पुस्तक के पृष्ठ अभी खुले हुए ही तिपाई पर रखे थे और लालटेन जल रही थी। लड़की मज़े में सो रही थी, रामप्रसाद ने अपनी छत पर मुँह में सिगरेट दबाए घूमते हुए यह देखा। यहाँ तक तो ठीक, पर आस-पास के वृक्षों पर दुबके वानर-दल को भी पुस्तक खुली देख अध्ययन का लोभ हुआ और वह एक-दो करके धीरे-धीरे पलंग के चारो ओर एकत्र होने लगे। लड़की की नींद खुली तो वह घबरा गई—डर के मारे हिलने का साहस नहीं हुआ। अशोक-वाटिका में पवनसुत को सहसा ही देखकर सीता को प्रसन्नता हुई या आश्चर्य हुआ या दोनों की सम्मिलित छाया उनके मुख पर दीखी, कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। किन्तु यहाँ पवनसुत के वंशजों को देखकर हमारी सीता के मुख पर जो भाव आए उसे सही-सही चित्रित कर कोई भी कलाकार किसी कला-प्रदर्शनी में सम्मान पा सकता था। जाग जाने पर भी हमारी सीता आँखें मिचमिचाए पड़ी रहीं—शोर मचाकर किसी को बुलाने का साहस भी नहीं हुआ। रामप्रसाद ने यह संकट देख वानरदल को कठिनाई से वहाँ से हटाया।

लड़की के मुख पर कृतज्ञता की छाप स्पष्ट दिखी और वह नीचे उतर गई। लड़की का नाम तरुलता था, रामप्रसाद ने बाद में जाना। इसके बाद वर्ष-भर कैसे व्यतीत हो गए, एक दिन सहायता के मिस रोपा गया प्रणय-बीज काल के सुख-दुःखमय प्रवाह में पड़कर कब, कहाँ, कैसे जाकर इतना बड़ा हो गया, यह रामप्रसाद को स्वयं याद नहीं। गत-वर्ष भर से तरुलता अपने विवाह के प्रस्ताव ठुकराती आ रही थी। स्पष्ट कुछ न कहकर अपने माता-पिता को एक उलझन में डाले हुए थी।

लखनलाल को यह सब मालूम था। उन्होंने हँसकर कहा—देखो तरु, एक वानर-दल ने यदि प्रणय का सूत्रपात किया तो दूसरा वानर-दल उसकी पूर्णाहुति भी दे देगा। हम लोग आखिर किस दिन काम आएँगे? खैर, हटाओ इस चरखे को। यह बताओ, सेल्स ड्राइव का क्या हाल है?

तरुलता—ठीक चल रहा है। पिछले हफ़्ते पार्टी के दफ़्तर से खत आया था, हमारे शहर की संख्या सबसे ज़्यादा है।

लखनलाल—हरखू के घर फिर गई थीं? पुनिया की कैसी हालत है?

हरखू जूटमिल में साइज़िंग में काम करता है। पुनिया उसकी घरवाली है।

परसों उसे प्रसव-पीड़ा बड़े ज़ोर की हो रही थी। घर में और कोई है नहीं, पूरे दिन थे फिर भी हरखू हस्बमामूल मिल से लौटकर, ताड़ी चढ़ाकर पड़ रहा। बीच में एक बार पीड़ा असह्य हो उठने पर उसने पति को हिलाया-डुलाया। हरखू ने नशे में और क्रोध में उठकर उसे खूब डाँटा-फटकारा और फिर पड़ रहा। हताश पुनिया लोचन की बहू को बुलाने के इरादे से, सम्हल-सम्हलकर क्वार्टर के दरवाज़े तक पहुँची पर कमज़ोरी और पीड़ा के कारण चौखट से टकराकर गिर

पड़ी। भीतर कहीं गहरी चोट लगी, रक्त की धारा बह चली और थोड़ी देर बाद बड़े कष्ट से खून से लथपथ शिशु धरती पर गिरा। उसकी चीख पुकार सुनकर आस पास की एक-दो स्त्रियाँ दौड़ आईं और हरखू भी उठा। तब तक शिशु मर चुका था।

तरुलता—कॉमरेड, वह बचेगी नहीं। मिस्टर प्रमानिक सुबह शाम जाकर देख आते हैं। कहते हैं, हालत अच्छी नहीं। एक दो दिन की और मिहमान है। हरखू तो जैसे पागल हो गया है।

लखनलाल जब तरुलता से बिदा होकर चले तो उनकी छाती पर जैसे मन भर का बोझ रखा हुआ था। अशिक्षा, कुसंस्कार, मिथ्यादंभ और छल-कपट से भरे इन मज़दूरों द्वारा क्रान्ति का आवाहन करने का स्वप्न जैसे मिटता-सा लगा। क्या इन्हीं गिरे हुओं में शोषण की नींव हिला देने की शक्ति-निहित है? क्या यही भावी युग के अग्रदूत होंगे? शासन के आमूल परिवर्तन के लिए क्या इन्हीं का सहयोग वांछनीय है? निरन्न, निर्वस्त्र और जड़, अपनी स्थिति से अनवगत, अपने शोषण के प्रति उदासीन, अपनी ज़िम्मेदारियों से अनभिज्ञ, इन मानव-नामधारी कंकालों से ही क्या क्रान्तिकुमारी का आमंत्रण सम्पूर्ण होगा? समता और सौख्य का जयघोष क्या इन्हीं क्षीण कण्ठों से होगा? किन्तु·····हाँ, होगा। यही वर्ग स्वयं मिटकर दूसरों को जीवन का अमृत प्रदान करेगा। इनकी अशिक्षा, इनके कुसंस्कार, इनका कुछ भी ऐसा नहीं जो अवसर पाने पर यह झटकार कर दूर न फेंक दे सकें। इनके हाड़ों में दधीचि का बल है, संसार को उलट-पुलट कर देने की शक्ति है, सबके सुखप्राप्ति के महोत्सव में सर्वस्व होमकर मंगल मनाने का बल है, केवल इन्हें नींद से जगानेवाला चाहिए। नींद से जागकर यह क्षुद्र विषधर सब कुछ कर सकने की क्षमता रखते हैं।

मिल की दूकान से ग़ल्ला खरीदकर लौटने में राजे और रामचरन को देर हो गई थी। संध्या हुए काफ़ी देर हो जाने से तथा मिलों की

छुट्टी हो जाने से सड़क पर अपेक्षाकृत कम भीड़ थी। पटरियों पर बैठे खाम्चेवाले चले गए थे और मिलिटरी लारियों से उड़ती हुई धूल सड़क के अल्प प्रकाश में दीख नहीं पड़ती थी। आज राजे को घुटनों तक की धोती नीची करने की भी सुधि नहीं थी, माथे पर भी पूरी साड़ी नहीं थी, वैसी ही उछलती-कूदती सिर पर गठरी रखे चली जा रही थी।

जरीब की चौकी के पास, पीछे से धड़धड़ाती हुई एक मिलिटरी लॉरी आई। सामने एक आदमी बाइसिकिल पर जा रहा था। जब तक कि वह मुड़े-मुड़े, लॉरी ने पीछे से धक्का दिया और वह आदमी साइकिल सहित दस गज़ दूर जा गिरा। सर फट गया, रक्त की धारा बह निकली और वह बेहोश हो गया। चौराहे के कॉन्सटेबिल ने भी देखा पर कर कुछ नहीं सका, लॉरी तब तक चली गई थी। मिनटों में उस अचेत व्यक्ति के चारों ओर भीड़ जमा हो गई। रामचरन और राजे ने भी पास पहुँचकर देखा—कोई बाबू है। सिर पर की टोपी दूर पड़ी थी, कमीज़-कोट, पतलून, सब खून से सने थे, एक पाँव का जूता झटके से निकल गया है, दूसरा अभी पाँव में ही है, साइकिल तुड़ी मुड़ी अलग पड़ी है। बिचारा शायद दफ़्तर करके घर जा रहा होगा। घर पर उसके बाल-बच्चे शायद इन्तज़ार कर रहे होंगे, बाबू आते होंगे। शायद उसकी बीवी खाना पका रही होगी। यहाँ यह बिचारा उपेक्षित, निरुपाय, अनजान सड़क पर पड़ा हुआ है। राजे के मन में करुणा उमड़ आई, स्त्रीसुलभ वात्सल्य और स्नेह के आँसुओं से उसकी पलकें भीग गईं। घर से निकलने के समय वह बिचारा क्या जानता रहा होगा कि आज वह शाम को अपने बच्चों को, बीवी को नहीं देख सकेगा! और, इन लॉरियों को कोई कुछ क्यों नहीं कहता? आदमी के जान की इनके सामने कोई वक़्क़त ही नहीं! इतना भी उस राक्षस से नहीं हुआ कि मोटर रोककर उतरकर देख ही लेता, जिसको धक्का देकर नीचे गिरा दिया है वह

बचेगा भी या दम तोड़ देगा। उठाकर अस्पताल ही ले जाता। पर इन्हें क्या ? सरकार के दिए हर महीने रुपए मिलते हैं न ! हिन्दुस्तानी होकर, हिन्दुस्तान के रुपए लेकर हिन्दुस्तानी भाई की जान लो और मोटर उड़ाते चल दो। कोई अँगरेज़-बच्चा कुचला होता और तब इस तरह मोटर भगाए चल देते तो जानती।

लेकिन, हम कह सकते हैं कि राजे का यह सोचना अन्याय था। मिलिटरी ट्रकों के ड्राइवर रास्ता चलनेवालों को कुचलते हैं, यह स्पष्ट है। आज तक उनके विरुद्ध कोई खास कार्रवाई नहीं की गई, यह भी स्पष्ट है। किन्तु, इतना तय है कि कुचलने में जाति-भेद या धर्म-भेद उनके आड़े नहीं आता। वह मनुष्य न हों, यह भी नहीं। केवल लड़ाई के नाम पर जो कुछ पेशेवालों में स्वेच्छाचारिता और अहमन्यता घर कर गई है, वही उन्हें अन्धा बनाए रखती है। सरकार के वरद हाथ ने उन्हें अभयदान दे रखा है, अभय पाकर वह निर्द्वन्द हो गए हैं।

भीड़ में से एक ने कहा—हाय-हाय, बिचारा बिलकुल ही कुचल गया।

दूसरे ने कहा—बेहोश हो गया है।

तीसरे ने ग़ौर से देखकर, जैसे बहुत बड़ी बात कही—सिर एकदम भुरता हो गया है।

और फिर, एक साथ ही वहाँ वह कोलाहल शुरू हुआ जिसका अन्त नहीं। इस बीच एक-दो कॉन्सटेबिल भी वहाँ पहुँच गए। भीड़ चीरते हुए वह अचेत व्यक्ति के पास पहुँचे और हृदय पर हाथ रखकर देखा, मर गया है या अभी जीवित है। एक खाली इक्का रोका गया और उस आदमी को उठाकर उस पर लादा गया। पुलिसवालों ने उसकी सायकिल भी ले ली और अस्पताल ले चले। चलते-चलते एक कॉन्सटेबिल ने पूछा—किसी ने लॉरी का नम्बर नोट किया है ?

तब, जिस व्यक्ति ने आगे बढ़कर पुलिसवालों को नम्बर बताया

राजे ने पहचाना कि वह लखनलाल हैं। दुर्घटना के दो-तीन मिनट पहले ही वह इक्का-स्टैंड पर उतरे थे। यद्यपि नम्बर लेकर रिपोर्ट कर देने से कोई लाभ नहीं होगा, यह लखनलाल भी जानते थे और मन-ही-मन पुलिसवाले भी समझते थे, पर लखनलाल के प्रत्युत्पन्न-मतित्व ने उन्हें नम्बर नोट कर लेने को उकसाया था। उस दिन उस मिल के पास के चौरस्ते पर स्थानीय थाने के अधिकारियों ने थोड़ी-सी ईंटें रखवा दी थीं और एक सिपाही इसी उद्देश्य से खड़ा करवा दिया था कि मिलिटरी ट्रकों की गति नियंत्रित करे। नियंत्रण की बात तो दूर, दिशा की सूचना देनेवाले उसके उठे हुए हाथ में एक ट्रक ने इतनी ज़ोर का झटका दिया कि हाथ ही टूट गया। दूसरे दिन से वहाँ सिपाही का रखना ही रोक दिया गया।

जब इक्का चला गया तो लखनलाल सिर झुकाए चुपचाप घर की ओर चलने लगे। राजे और रामचरन पीछे-पीछे थे। राजे ने हाथ से रामचरन को ठोंका मारते हुए कहा—मालिक जा रहे हैं।

रामचरन—कहाँ री?

राजे—वह क्या जा रहे हैं।

रामचरन ने ग़ौर से देखकर कहा—हाँ, हैं तो वही।

सहसा लखनलाल रुके। वह इक्के से टपकते गए रक्त के चिन्ह सड़क पर देखते जा रहे थे। अपर्याप्त प्रकाश में भी, धूल भरी सड़क पर वह रक्त की बड़ी-बड़ी बूँदें अपनी कहानी कह रही थीं। एक जगह काफ़ी बड़ा दाग़ था, वहीं रुककर लखनलाल देख रहे थे। तभी राम-चरन ने पास आकर कहा—सलाम बाबूजी!

लखनलाल ने सिर उठाकर देखा—रामचरन और राजे। उत्तर दिया—सलाम, सलाम भाई रामचरन। तुम इधर कहाँ? और यह साथ में किसको देख रहा हूँ? राजे है न! क्यों राजे, पीठ पर का बेंत का दाग़ छूट गया न?

राजे ने शर्म से माथा झुका लिया। अब उसे ध्यान आया, उसके पाँव और माथा खुले हुए हैं। उसने नज़र बचाकर कमर से घेरा ढीला कर दिया और बाएँ हाथ की उँगलियों से धोती माथे पर ठीक से खींच ली।

लखनलाल चलते-चलते कहने लगे—मुझे माफ़ करना रामचरन। उस दिन मैं कुछ कर नहीं सका।

रामचरन समझा नहीं—किस चीज़ के लिए माफ़ी माँग रहे हैं मालिक ?

लखनलाल—यही, जो राजे को उस दिन मेरे घर से मार खाकर आना पड़ा !

रामचरन जैसे धरती में गड़ गया। राजे को तो जैसे चलने को रास्ता ही नहीं रह गया। इतना उदार हृदय ! रास्ता चलते यह उस दिन की एक तुच्छ सी बात के लिए क्षमा माँग रहे हैं। वह चोट राजे को भूल चुकी थी, पर इस समय लखनलाल की बात से नए सिरे से दुख उठी। रामचरन ने कहा—हंः हंः ! मालिक, आप भी क्या बात करते हैं। हम लोग गरीब आदमी हैं, पास में पैसा नहीं है पर मालिक, हमारे पास दिल है। हम आदमी पहचानते हैं। इतने नीच नहीं कि उस बात को याद रखे रहें। जो हो गया सो हो गया। इसको उसका मलाल नहीं है। फिर उस मार खाने का इसको एक फायदा भी हुआ है मालिक ! एक दिन की मार ने रोज़-रोज़ की मार से छुट्टी दिला दी।

लखनलाल ने समझा, मेरे यहाँ की नौकरी छूट जाने से यह दोनों प्रसन्न हैं। उन्हें दुःख हुआ, इन्होंने मुझे पहचाना नहीं। फिर भी पूछा—क्या मतलब ?

रामचरन—मैं नसे में घर लौटता था तो इसकी कुटम्मस करता था। जिस दिन मालकिन के हाथ से यह एक बेंत खाकर आई उसी

दिन कान धरा कर इसने परतिज्ञा ले ली। मैंने भी कह दिया कि आज से दारू छुऊँगा नहीं। तबसे आज तक नहीं पी मालिक !

लखनलाल प्रसन्न हो गए, हृदय पर से जैसे एक भारी बोझ उतर गया। उन्हें सबसे अधिक दुःख इस बात से होता था कि एक के कार्यों के परिणाम-स्वरूप उससे संबंधित कोई दूसरा क्यों ग़लत समझा जाय, यद्यपि संसार में होता ऐसा ही है। एक के अपराध की गुरुता दूसरे के कन्धों पर जाकर जब पड़ती है तब उस दूसरे को मन ही मन कितनी यातना होती है, यह वह जानते थे। ऐसी दशा में और भी, जबकि वह दूसरा कुछ बोल नहीं सकता, अपनी स्थिति स्पष्ट कर पाने का साधन उसके पास नहीं होता और इस असमर्थता के कारण वह भीतर ही भीतर एक सर्वग्रासी ज्वाला में अहोरात्रि जलता रहता है। बोले—चलो, अब मुझे फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं रह गई। राजे, तुम्हारी मालकिन चाहे जितनी बुरी क्यों न रही हों, इस बात का तो तुम्हें उनका आभार मानना चाहिए।

उत्तर दिया रामचरन ने—मानेगी क्यों नहीं मालिक ! ज़रूर मानेगी। यह तो आपकी बहुत बड़ाई करती है, कहती है—ऐसा देवता मालिक ही नहीं देखा। गऊ हैं गऊ !

बात करते-करते रामचरन का क्वार्टर आ गया। उसने कहा—ज़रा बैठेंगे नहीं मालिक !

यह बात रामचरन को नहीं मालूम थी कि लखनलाल केवल राजे के भूतपूर्व स्वामी होने के नाते ही उसके लिए श्रद्धेय नहीं हैं। नगर की श्रम करनेवाली जनता के, मजूरों के विशाल वर्ग के जीवन-मरण के, सुख दुःख के, हास-रुदन के, आशा-निराशा के साथी होने के नाते भी वह उसके लिए श्रद्धा के पात्र हैं। जिन मज़दूरों के सम्पर्क में वह आए थे वह उनपर देव दुर्लभ भक्ति करते भी थे। कभी कभी इस भक्ति और स्नेह-श्रद्धा के अतिरेक से उन्हें परेशानी भी उठानी

पड़ती थी किन्तु अपढ़ और जड़ कारीगर भले ही अपने निर्मम स्वामियों और प्रभुओं को न जानें, उनकी वास्तविकता चाँदी के कुछ गोल टुकड़ों में भूल जायँ किन्तु अपने इस सहायक को, सखा को, बन्धु को वह पहचानते थे। पत्नी के कानों तक बाहर की यह प्रशंसा नहीं पहुँची थी, पहुँचती भी तो शायद इसका कुछ विशेष मूल्य उनकी दृष्टि में न होता, तभी लखनलाल एक अनिवार्य बुराई के रूप में घर में समझे जाते थे। घर के कामों के लिए हर महीने यथासाध्य रुपए दे देना और कभी-कभी उनकी वय की माँग पूरी कर देने के अतिरिक्त मालकिन की दृष्टि में लखनलाल का और कोई प्रयोजन नहीं था। लखनलाल यह समझते थे और अपनी ओर से अपना मूल्य स्थिर करने का प्रयास कभी नहीं करते थे। यह भीरुता उनमें थी। रामचरन के निकट सम्पर्क में भी वह किसी आन्दोलन या सभा-सुसाइटी के सिलसिले में नहीं आये थे। उनके जीवन की इस दिशा से वह अनवगत था।

उन्होंने उत्तर दिया—नहीं रामचरन, देर हो गई है। रास्ते में अभी तरकारियाँ भी लेनी हैं।

राजे ने लक्ष्य किया, हाथ में झोला है। वह रहती थी तो वही लाती थी। रामचरन ने कहा—और कोई नौकर नहीं रखा मालिक! बड़ी तकलीफ़ होती होगी।

लखनलाल हँसकर बोले—एक लड़का मिला है पर वह अभी नयी है। बाज़ार आदि जानता नहीं।

रामचरन—मालिक, सरम लगती है। थोड़ी-सी चाय ही पी लेते!

इस स्नेह सने अनुरोध की उपेक्षा और कोई भले ही कर सके, लखनलाल में यह साहस नहीं था। धेले पैसे की चाय के आतिथ्य-सत्कार से लखनलाल का कोई बड़ा सम्मान होगा, यह बात नहीं थी। बात केवल उस आमंत्रण के पीछे झाँकते हुए अमूल्य स्नेह की थी। इस तरह का निमंत्रण लखनलाल को बहुत कम कारीगरों के यहाँ

मिला था। यहाँ यह स्पष्ट था कि केवल राजे के भूतपूर्व स्वामी होने के कारण ही रामचरन उनका सम्मान कर रहा था किन्तु उस अनुरोध में भी केवल उसीकी इच्छा काम कर रही हो, ऐसा नहीं था। राजे की अपरिज्ञत प्रार्थना भी इस आमंत्रण में बोल रही थी। लखनलाल को रुकना पड़ा, बोले—चलो भाई, तुम कहते हो तो पी ही लूँ। राजे जानती है, देर से घर पहुँचने पर दस बातें सुननी पड़ेंगी।

हाँ, राजे ज़रूर जानती है। उसने देखा है, ऐसे देवता पति से भी मालकिन दिन भर किसी-न-किसी बात पर झगड़ती रहती हैं। उसका ऐसा मरद होता तो वह गोड़ धो-धोकर पीती!

लखनलाल अन्दर जाकर दरी पर बैठ गए और राजे चूल्हा सुलगाने में लग गई। रामचरन लकड़ियाँ लगाने गया तो राजे धीरे से बोली—पूछो न, मेरा मुनुआ कैसा है?

रामचरन—मालिक, यह पूछती है, मुनुआ कैसे हैं?

लखनलाल इस स्नेह से विगलित हो गए, कहा—अरे, अभी मुनुआ की याद बनी हुई है? मज़े में है! इससे तो ऐसा हिलमिल गया था कि न पूछो। उस लड़के की गोद में तो अभी जाता ही नहीं।

राजे मन ही मन मातृ-गर्व से भर उठी। उसके बाल-बच्चा नहीं है। किन्तु मातृत्व की भावना तो है ही! मुनुआ को वह कितना प्यार करती थी! उस दिन जब वह आ रही थी तो वह उसकी ओर बढ़ा था पर मालकिन ने रोक दिया था। कितनी कठकरेज हैं वह!

थोड़ी देर शान्ति रही। सहसा लखनलाल ने पूछा—इस क्वार्टर का कितना किराया देते हो रामचरन?

रामचरन—डेढ़ रुपए माहवारी मालिक! क्यों?

लखनलाल—यों ही पूछा, कोई खास बात नहीं।

लखनलाल ने देखा—एक चार-साढ़े चार गज़ चौड़ी कोठरी है। जगह-जगह दीवालों का काला पड़ गया चूना झर गया है और रोगी

वृद्ध की ठठरियों जैसी भीतर की मिट्टी दीख रही है। कोने में जलनेवाले चूल्हे से निरन्तर उठनेवाले धुएँ ने ज़मीन, छत, कोने-अँतरे सब काले कर दिए हैं। बाहर-भीतर की सम्मिलित कालिमा ढिबरी के क्षीण प्रकाश से दूर नहीं हो पाती, कभी-कभी यह क्षीण आलोक भी हमारी सरकार बहादुर की कृपा से नहीं जुट पाता। धक्के खाकर राजे को ही कन्ट्रोल की दूकान से मिट्टी का तेल लाना पड़ता है, मिला, न मिला। दो ओर की आमने-सामने की दीवालों में कीलें ठोंककर एक रस्सी बाँध दी गई है जिस पर एक पुरानी, जगह-जगह फटी रज़ाई रखी है, दो-एक कपड़े हैं और राजे की एक धोती सूखने को डाली हुई है। चूल्हे के पास रखे हुए घड़े का पानी आधे कमरे में फैला है और सीलन भरी धरती से मिलकर एक विचित्र गन्ध पैदा कर रहा है। छोटे-छोटे टीन के बक्सों में तथा हाँडियों में गृहस्थी के अन्य सामान, आटा, दाल, चावल, नमक आदि रखे हैं। चूल्हे के पास ही एक आधी टूटी हुई बोतल में शायद कड़वा तेल है, बोतल के भीतर-बाहर चारों ओर चीकट जम गई है। बरतनों के नाम पर एक फूटी थाली, जिसके छेद से चूने के डर से किसी कंकड़ी या लकड़ी के टुकड़े की टेक लगाकर रामचरन दाल-रोटी खाता है। एक गिलास और एक बटलोही है। एक तरफ़ एक बाल्टी पड़ी है, जो नई खरीदी जान पड़ती है और जिसमें कुएँ से पानी लाया जाता है। मकड़ी के जाले और सब जगह जमी धूल की कितनी ही पर्तें इस अंधकार में देख पाना संभव नहीं, यद्यपि उनका अस्तित्व निःसंशय रूप से स्वीकार किया जा सकता है। बक्स-बिछौने की बला नहीं, आँधी पानी से विशेष सुरक्षा की आयोजना नहीं, स्वच्छ वायु का जैसे प्रयोजन नहीं, गर्मियों में खुले आकाश के नीचे विश्राम की व्यवस्था नहीं, कहीं कुछ भी नहीं। लखनलाल को लगा, अहोरात्रिव्यापी इस आत्मवंचना, आत्मप्रतारणा का जैसे कहीं अन्त नहीं। अभाव की यह सर्वग्रासी

ज्वाला जैसे इनके सारे जीवन-रस को सोखती चली जा रही है। इस आत्मदहन की कोई सीमा नहीं है। दिन-पर दिन, सप्ताह-पर-सप्ताह, मास पर मास और वर्ष पर वर्ष अपने आत्मदाह की ज्वाला में जलते हुए, शारीरिक श्रम का सौदा विवश भाव से करते हुए यह अपनी इहलीला संवरण कर देते हैं। जीवन में कोई रस नहीं, आनन्द नहीं, माधुर्य्य नहीं, कविता नहीं, आदि से अन्त तक सब कुछ जैसे एक नीरस गद्य की जी उबानेवाली यंत्रणा में छटपटा रहा है। हानि, लाभ, यश, अपयश ही नहीं, इन्होंने तो अपना सम्पूर्ण अस्तित्व ही किसी अज्ञात विधि-विधान के हाथों में छोड़ दिया है। चेतनाहीन, पंगु, अपनी सामर्थ्य से स्वयं ही अनवगत, प्रकाश के प्रति उदासीन यह अंधता के जीव युगों से इसी तरह परवशता की गाड़ी ढोते चले जा रहे हैं। मनुष्य होकर मनुष्यता का अपमान करने को इन्हें किसने उकसाया ?

रामचरन ने उनकी विचारतन्द्रा भंग की- क्या सोचने लगे मालिक ?

लखनलाल—कुछ नहीं, सोच रहा था, इस कोठरी में तुम्हारी गुज़र कैसे होती है ? एक ही कोठरी में खाना-पीना, सोना, बैठना, यह सब कैसे होता है ?

रामचरन ने हँसकर कहा—जीना और मरना भी होता है मालिक! यह तो आप भूल ही गए !

बात सच है। इसी अंधेरी कालकोठरी में, अन्ध-गह्वर में मज़दूर पिता और माता के रजवीर्य-संयोग से एक नए मज़दूर का सृजन होता है। इसी गुहा में नम और सीलन भरी धरती पर लोट लोटकर राम-कृष्ण, बुद्ध और गांधी होने की क्षमता रखनेवाला शिशु, अपने को परिस्थितियों के चक्र में ढालकर हरखू, परखू और जगरूप जैसा ही कोई मज़दूर, केवल मज़दूर बनाता है। जन्म और मरण के न जाने

कितने प्रश्नों की मीमांसा इसी चार गज़ लम्बी-चौड़ी कोठरी में हो गई है—होती रहती है। पिछले साल राजे का ही जो गर्भ कठिन परिश्रम और अल्पाहार के कारण इसी कोठरी में गिर गया था वह यदि जीवित रहता तो मज़दूर ही तो होता! अपने ज्ञान को विकसित करने का, अपनी बुद्धि परिष्कृत और उन्नत करने का, अपने को 'आदमी' बनाने का कौन-सा साधन सरकार और समाज ने इन्हें दे रखा है? संतोष का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते इन्हें अशेष, अकूल असमर्थता और अकर्मण्यता के गर्त में डालकर समर्थ समाज पिशाचों का-सा अट्टहास कर रहा है, इनके आर्तनाद से उसके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती!

चाय बनाकर राजे जब गिलास में लखनलाल को देने लगी तो उसे ख्याल आया, न जाने इसमें पीने में इन्हें अच्छा लगेगा या नहीं! उसने बनाकर रामचरन को संकेत कर दिया कि लखनलाल को दे दे। लखनलाल उसकी यह शर्म समझ गए और उतावली से बोले—लाओ-लाओ रामचरन, देर हो रही है।

एक-दो घूँट पीकर प्रशंसा के स्वर में बोले—बहुत बढ़िया बनी है। हमारे यहाँ कभी हमको बनाकर क्यों नहीं पिलाया राजे?

किन्तु, इन्हें स्वयं अपना प्रश्न बेतुका लगा। मालकिन उसे खाने पीने की कोई चीज़ छूने नहीं देती थीं। रसोई-घर में उसे जाना मना था। मसाला-पीसने, तरकारी काटने-लाने या उनके शरीर में उबटन, बच्चे को तेल लगाने में छूत नहीं थी। छूत थी तो केवल आग पर कोई चीज़ चढ़ाने-उतारने में। यह तो उन लोगों का भी कान काटना था जो समझते हैं, आग पर जाते ही सब चीज़ें शुद्ध हो जाती हैं। पवित्रता का यह मापदण्ड क्या और कैसा था, यह उनको समझाना व्यर्थ था और तभी, लखनलाल यह व्यर्थ प्रयास नहीं करते थे।

रामचरन—अच्छी तो क्या बनी होगी मालिक, हाँ, गरीबामऊ काम चलाने लायक़ है।

इस उक्ति का उत्तर देना आवश्यक न समझ, लखनलाल ने पूछा—क्यों रामचरन, तुम्हारी मिल में मँहगाई-भत्ते का क्या हाल है ? ठीक ठीक मिलता है न ?

रामचरन—कल एक नोटिस लगी है कि जल्दी ही तसफिया होगा।

लखनलाल—कारीगर भाई कुछ उपद्रव तो नहीं कर रहे हैं ?

रामचरन समझा नहीं, पूछा—कैसा उपद्रव मालिक ?

लखनलाल—यही, जो तसफ़िया होने में देर हो रही है ! ..

रामचरन—वह ! हाँ, पाँच सात दिन हुए, मुस्तफ़ा ने हाथ की लिखी एक नोटिस सब डिपार्ट में घुमाई थी, जिसमें लिखा था कि मालिक लोग भत्ता ज़म कर जाना चाहते हैं तभी बाँटने में देर कर रहे है। अगर एक हफ़्ते के अन्दर न बाँट दें तो सब लोग काम छोड़ दो। सबसे उस पर अँगूठा-निसान लगवा रहे थे।

लखनलाल—तो उस नोटिस का क्या हुआ ?

रामचरन—कहावत है न, घर का भेदी लंकादाही। वही हुआ और क्या हुआ ? नोटिस घुमाते-घुमाते थककर मुस्तफ़ा ने घूरे को दे दी कि थोड़ा वह भी घुमा दे। घूरे ने ले तो ली पर घुमाने के बजाय ले जाकर मालिक को दे दी। ऐसा हरामज़ादा है वह !

लखनलाल शंकित स्वर में बोले—तब ?

रामचरन—तब क्या ? मालिक ने सबको बुलाकर डाँटा फटकारा, गाली- गुफ़्ता की। निकाला किसी को नहीं। मुस्तफ़ा बिचारा दो तीन दिन ससपिन रहा, कल से काम पर आया है। घूरे को दस रुपए इनाम मिले।

लखनलाल की आशंका कम हुई। वह समझ रहे थे कि मज़दूर, जिन्होंने अपने उस अधिकार-पत्र पर दस्तखत किए थे या अँगूठों का निशान लगाया था, निकाल दिए गए होंगे, पर यह सब कुछ नहीं हुआ। किन्तु घूरे ! मालिकों से इनाम पाने के लोभ में यह विश्वासघात!

वह भी तो उसी वर्ग का है जो वर्ग आज महाप्रभुओं को निरन्तर अपने तन-मन का आहार करा रहा है। जिनकी श्रमशक्ति आज मालिकों को सुखी, परितृप्त और मोटा बनाए है! वर्षभर उनकी ही कमाई पर बैंकों और तिजोरियों में अथाह धनराशि एकत्र की जाती है, नए-नए सूट बनते हैं, डिनर होते हैं, नाच गान का आनन्द उपभोग किया जाता है, मोटरों की सैर होती है और उस अर्जन का शतांश भी नियत समय पर अर्जन करनेवालों को देते समय बहाने बनाए जाते हैं, बंधन लगते हैं, देर की जाती है। मालिकों के सदुद्देश्य पर शंका न करते हुए भी यह तय है कि कारीगरों को कठिनाइयाँ होती हैं। घूरे भी उसी वर्ग का है फिर वह कैसे यह सब भूल गया। क्षणिक पारितोषिक प्राप्ति के लोभ में उसने अपने समूचे वर्ग का हित बलिदान कर दिया। मुस्तफ़ा ने भी ग़लती की है, भारी ग़लती की है। भत्ते की माँग करना सही था, उचित था किन्तु उसने यह किसके कहने से लिखा कि सब लोग काम छोड़ दो। पार्टी ने तो इसके लिए कहा नहीं? काम छोड़ देंगे तो खायँगे क्या? पार्टी का कोई सदस्य, कोई भी मज़दूर-कार्यकर्त्ता युद्धोद्योग में अड़चन डालने की बात नहीं सोच सकता। अपनी एक इसी नीति के कारण समूचे देश का उपहास-लांछन सहकर भी वह अपने पथ से हटे नहीं। जिस कांग्रेस को उन्होंने अपनी समस्त आशा-आकांक्षाओं का केन्द्र माना, उसी कांग्रेस ने, उसी कांग्रेस के नेताओं ने उन्हें 'देशद्रोही' तक कहने में संकोच नहीं किया। तब, सस्ती वाह-वाही लूटने के अभिप्राय से किस विश्वासघातक ने यह चेष्टा की है, यह वह नहीं सोच सके। मुस्तफ़ा को स्वयं यह कुबुद्धि नहीं आ सकती, यह स्पष्ट है।

लखनलाल के घर लौटने पर यथारीति ही उनका स्वागत हुआ। बात-ही-बात में कहीं लखनलाल ने कह दिया—आज राजे दीक्ष पड़ी थी।

मालकिन चौंकीं—कहाँ ?

लखनलाल—मैं जब बाज़ार से लौट रहा था। मुनुआँ को पूछ रही थी। उसे अभी तक याद है।

मुनुआँ मालकिन का मर्मस्थल था। पिघलकर बोलीं—याद नहीं होगा ? वह लड़का ही ऐसा है। एक बार जो गोद में ले ले वह हमेशा लिए रहे। और, उस कलमुहीं में और कोई खराबी नहीं थी, बस, चोर थी। मैं निकालती थोड़ा ही, वह तो उसकी ढिठाई पर मुझे ऐसा करना पड़ा। भाई, आदमी माँगकर चाहे जो ले ले, चोरी देखकर तो मुझे आग लग जाती है। हाँ·····!

चार

रात को सोते समय गृहस्वामिनी लखनलाल के पलंग पर चढ़ आईं और उनके पाँव पकड़, दबाने के विचार से, ठीक-ठिकाने बैठती हुई बोलीं—आज कैसे पड़ रहे ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ?

पाँव सिकोड़ते हुए लखनलाल ने कहा—अब यह क्या करने लगीं ! हटो।

मालकिन—पाँव दबाने बैठी हूँ, और क्या कर रही हूँ।

लखनलाल—पर मुझे दबवाना ही नहीं है। तुमसे कह दिया है कि यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। जब मैं तुम्हारे पाँव दबाने को नहीं तैयार हूँ तो तुम्हीं क्यों मेरे पाँव दबाओ ! यह सेवा लेने का मुझे कोई अधिकार नहीं है— बीमारी की दशा में चाहे जो हो।

मालकिन—अधिकार-फधिकार मैं कुछ नहीं जानती। मेरा काम है, मैं करती हूँ।

लखनलाल ने कहा कुछ नहीं, इस तरह पाँव मोड़ लिए कि और कुछ भले ही हो, दबाना संभव नहीं था। हारकर मालकिन उसी पलंग पर लेट गईं। लखनलाल को यह नई मुसीबत लगी, मालकिन के शरीर का सान्निध्य उन्हें कुछ सुख नहीं पहुँचा सका। उन्हें पलंग पर अपने तईं दुबके रहना अधिक सुखद लग रहा था किन्तु इस अनिवार्य गलग्रह को किसी तरह टाल पाना भी सहज नहीं था। चुप रहे।

पाँच-सात मिनट बाद मालकिन फिर बोलीं—आज सुस्त कैसे हो ?

प्रश्न की पुनरावृत्ति सुनकर लखनलाल को उत्तर देना ही पड़ा—ऐसे ही।

मालकिन—ऐसे ही ! क्यों ?

लखनलाल—अब क्यों क्या बताऊँ ?

मालकिन—कुछ तो होगा।

लखनलाल—मुझे अब सोने दो, नींद लग रही है।

मालकिन समझ गईं कि यह प्रसंग लखनलाल को रुच नहीं रहा है। थोड़ी देर बाद बात बदलकर बोलीं—मैं तो उस दिन राजे की ढिठाई देखकर हैरत में आ गई। एक तो चोरी की दूसरे साफ़-साफ़ कहने लगी कि अपने मरद के लिए ले गई है। उसे ताड़ी की लत पड़ी है और पैसा है नहीं। इन छिछोरों से कोई पूछे कि पैसा नहीं है तो यह सब लत डालते ही क्यों हो ? पैसा हो तो जो चाहे करो, पैसा नहीं है तो दूसरों को कुछ करते देखकर ललचाते क्यों हो ?

लखनलाल के जी में आया कि कहें—तुम्हारे पास भी तो कारूं का ख़ज़ाना नहीं रखा है। ले-देकर मेरी कमाई के कुछ रूपए आते हैं ! तुम क्यों उस दिन लाला हरनामसिंह की बहू को तितलियोंवाली साड़ी पहने देखकर मचल पड़ी थीं ? वह तो नहीं पर हाँ, एक पचीस रूपए तेरह आने की साड़ी लेकर ही मानीं ! और बाबू बिशनचंद की बेटी जैसे इयररिंग क्यों बनवाने की ज़िद कर रही थीं ? लड़ाई के ज़माने में जब ऊनी कपड़े मिलने ही कठिन हैं और किसी तरह मिलें भी तो चौगुने-पचगुने दामों पर. तुम क्यों मुन्ने के लिए साढ़े आठ रुपए गज़ के कपड़े का कोट सिलवाने गईं ? यह क्या दूसरों की चीज़ देखकर ललचाना नहीं है ? तुम्हारी सामर्थ्य है कि दस-पाँच रुपए देकर एक दास ख़रीद सकती हो, वह सामर्थ्य भी तुम्हारी स्वतः की कमाई पर नहीं बल्कि किसी ऐसे की कमाई के बल पर है जिस पर तुम्हें समाज ने ग़लत या सही अधिकार देने का स्वाँग रचा है। तुम दूसरों के छिद्र देख सकती हो। तुम जो करो वह सही है, जो तुम्हारे अधीन है वह यदि वही काम करे तो गुनाह है। ठीक इसी तरह तुम्हारे विषय में भी तुमसे समर्थ-व्यक्ति सोचते होंगे।

पर बात बढ़ाने से ही बढ़ती है, वह चुप रहे।

मालकिन—कैसा बेंत पड़ते ही कबूल दिया ?

लखनलाल—बेंत पड़ने के पहले ही उसने कह दिया था कि उसने लिया है।

मालकिन—वह एक ही बात है। मार के डर से भूत भागता है। बेंत की बात सुनते ही उगल दिया।

इस दम्भपूर्ण गर्वोक्ति से लखनलाल जल उठे—तुम्हें शर्म तो नहीं लगती, उलटे बातें कर रही हो।

मालकिन घबरा गईं, यह क्या ? कहा—क्यों ? शर्म काहे की ?

लखनलाल—और नहीं तो क्या ? इतने दिनों से तुम्हारे यहाँ काम कर रही थी, कभी तुमने कोई ऐसी बात उसमें देखी जिससे वह चोर साबित हो ? कभी उसने धेले की भी चीज़ नहीं उठाई। उस दिन की बात याद करो, जिस दिन तुमने दस रुपए का वह नोट धोती में ही छोड़ दिया था। अगर वह देखकर न निकाल लेती तो धोती वैसी ही धोबी के यहाँ चली गई होती। तुम्हें तो याद था नहीं, अगर वह निकालकर अपने ही पास रख लेती तो ? वह न जाने किस घड़ी में उस दिन इयरिंग उठाने गई। तुम्हें उसने बता भी दिया। ज़रा अपने को उसकी स्थिति में रखकर देखो।

मालकिन यह लेक्चर चुपचाप पी गईं। थोड़ी देर बाद लखनलाल फिर बोले—स्वयं स्त्री होते हुए भी तुमसे बेंत कैसे उठी, मैं तो यही सोच रहा हूँ। कम-से-कम मुझसे तो यह कभी नहीं हो सकता। मैं तुम्हारी जगह होता तो उसे क्षमा कर दिए होता।

मालकिन 'क्षमा' शब्द सुनकर जल उठीं। चोर को किसी हालत में क्षमा भी किया जा सकता है, यह उनकी कल्पना में भी नहीं आ सकता था। बोलीं—तुम तो कभी-कभी जाने कैसी बातें करने लगते हो। चोरी करनेवाले को क्षमा कर दो, छिनारा करनेवाले को क्षमा क

दो, तब तो दुनिया चल चुकी। अगर ऐसा होता तो दुनिया में चोर-डाकू ही भरे होते।

बुद्धि से वैर रखनेवाले से अधिक बातें करना झख मारना है! लखनलाल यह जानते थे। स्त्रियों की समानता और स्वाधीनता की सतत दुहाई देनेवाले लखनलाल यह भी जानते थे कि जिस स्त्री में उस समानता और स्वाधीनता का उपयोग करने की बुद्धि नहीं है, उससे कैसे व्यवहार किया जाना चाहिए। अपनी रचनाओं में और वाणी में नारी शोषण के विरुद्ध सदैव आग उगलनेवाले लखनलाल घर में सदा अपने मन की ही करते, कभी पत्नी के मत से न चलते। देखकर और सुनकर आस-पास के लोग, मुहल्लेवाले चर्चा करते, हाथी के दाँत खाने के और और दिखाने के और होते हैं। लखनलाल सुनते, उड़ती खबर उनके कानों तक पहुँचती पर एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते। अशिक्षित और असंस्कृत स्त्रियों की बातों पर कान देकर चलनेवाले, आपसी व्यवहारों को उन्हीं के मतामत पर निर्भर करनेवाले पुरुषों द्वारा घरों की सुख-शान्ति और व्यवस्था का सर्वनाश होते लखनलाल ने कितनी ही बार देखा था। वास्तविक स्वतंत्रता के अनुभव के अभाव में थोड़ी-सी सुविधाओं को ही एकमात्र स्वतन्त्रता समझकर चलनेवाली मध्यवर्ग की स्त्रियाँ जिस तरह अर्थ का अनर्थ कर सकती हैं, अपने हर भले-बुरे काम में पतियों की सहमति पाकर स्त्रियाँ जिस तरह ईर्ष्या द्वेष और मत्सर का ताना बाना बुनती रहती हैं उससे लखनलाल अनजान नहीं थे। अर्थ की दिशा इनके लिए कभी उन्मुक्त नहीं रही। अपने खाने पीने के, पहिनने-ओढ़ने के, शृंगार के लिए यह सदैव अपने पति नामधारी जन्तुओं पर निर्भर रहीं। इनकी घूमने फिरने की और किंचित् मनोरंजन की साध भी पति की कमाई के बल पर ही पूरी होती रही। स्वउपार्जित धन मनुष्य में किन बलवती भावनाओं को भरता है उसका इन्हें कभी अनुभव नहीं रहा। और, यह हाँ में हाँ मिलानेवाले

पति कौन होते हैं ? स्पष्ट है कि यह पति महाशय वही होते हैं जो स्वयं या तो बाहर अधिक व्यस्त होने के कारण अथवा संघर्ष से मुँह चुराने के कारण, कुछ कर पाने में असमर्थ होते हैं। बाहर से लौटने पर उन्हें पका-पकाया भोजन मिल जाता है, उनके कपड़ों के बटन ठीक ठिकाने से लगे रहते हैं, महरी और नौकर से स्वयं हर काम के लिए झाँव-झाँव नहीं करना पड़ता, यह काम वह अवकाश से घिरी स्त्रियाँ स्वयं कर लेती हैं, समझते हैं कि गृहस्थी की गाड़ी ठीक-ठिकाने चल रही है। तभी वह, जिसके बल पर यह सब होता है, उसकी पीठ पर अपना वरद हाथ रक्खे रहते हैं। गृहस्थी की गाड़ी ठीक-ठिकाने चलती भी है किन्तु अपनी गति के साथ कितना कर्दम, कितना कलुष लपेटती चलती है, यह दीख नहीं पड़ता।

लखनलाल पत्नी के तर्क के आगे चुप ही रहे, मालकिन ने इसे अपनी विजय समझी। बोलीं—अब बोलते क्यों नहीं ? ऐसे ही शह पाकर तो चोर-डाकू चोरी करते हैं। अगर मैं उसे मारती न और तुम निकालते न तो वह मौक़ा पाकर फिर चोरी करती।

लखनलाल—और, मेरा ख़याल है, वह फिर कभी कोई चीज़ न छूती। रह गई निकालने की बात, तो वह तो मैंने तुम्हारे कारण निकाला। मेरा वश चलता तो मैं कभी न निकालता।

मालकिन ने इस न निकालनेवाली बात को दूसरे ही अर्थ में लिया। उन्होंने समझा राजे के सौंदर्य और यौवन के आकर्षण के कारण ही लखनलाल ऐसा कह रहे हैं। तभी उन्होंने जलकर कहा—हाँ, तुम क्यों निकालोगे ? तुम्हींने तो उसे सिर पर चढ़ा रखा है। नौकर-नौकरानियों को मुँह लगाने का यही नतीजा होता है। ज़्यादा दुलार करने से कुत्ता भी मुँह चाटने लगता है।

राजे के स्थान पर जो लड़का था, गृहस्थी की व्यवस्था का कार्य-भार नए सिरे से उस पर लादा जाने लगा। सुबह सबके उठने के

पहले उठकर रात के जूठे बर्तन माँज धो डालना, चौके की सफ़ाई कर डालना और चाय का पानी आग पर रख देना उसके ज़िम्मे था। उसके बाद मालकिन को उठाना, बच्चे को जो उनके उठते ही उठ जाता, लेकर टहलाना और उसके कपड़े बदलना, मालकिन और लखनलाल के चाय पी चुकने पर बच्चे को मालकिन की गोद में देकर बिछौने उठाना, कमरे बुहारना। यह सब काम आठ-साढ़े आठ तक निबटाकर फिर बच्चा लेना ताकि मालकिन भोजन बनाने में लगें। एक डेढ़ बजे सबका खाना समाप्त होने पर दो तीन मोटी-मोटी रोटी, दाल और तरकारी, कभी बिना तरकारी के भोजन करना और मालकिन जब आराम करने चली जायँ तो बच्चे को बहलाए रहना, चार बजे के क़रीब उनके उठने पर फिर बच्चा उन्हें देकर सुबह के कामों की पुनरावृत्ति, बाज़ार जाना, लखनलाल का कमरा फिर साफ़ करना, रात को सबके सो जाने पर ठण्डा खाना खाकर थोड़ी देर मालकिन के पाँव दबाना, आदि उसके कुछ 'कर्त्तव्य' थे। इतने पर भी बीच-बीच में मालकिन के उत्साहवर्द्धक और मधुर शब्द सुन पड़ते—कहाँ मर गया रे ? तेरा तो हाथ ही नहीं चलता। बिचारा लड़का एक काम करता तो दूसरा रह जाता, दूसरा करने दौड़ता तो पहला पड़ा रह जाता।

एक दिन लखनलाल शाम को चाय पीते पीते बोले—इस तरह तो यह चार दिन में भाग खड़ा होगा। आख़िर लड़का ही है, मशीन तो है नहीं।

मालकिन झुँझला रही थीं कि अभी कमरे क्यों नहीं साफ़ हुए। बाज़ार भी तो जाना है। उधर बिछौने अभी बिछाने को पड़े हैं। यह सब कौन करेगा ? मुन्ना अलग चीख़ रहा है। इस लड़के का तो हाथ ही नहीं उठता। लखनलाल की बात सुन बोलीं—फिर तुम बीच में बोलने लगे ? जो तुम नहीं समझते उसमें क्यों दख़ल देने लगते हो ?

लखनलाल—इसमें समझने न समझने की कौन-सी बात है ?

देख रहा हूँ कि सुबह से शाम तक बिचारा लट्टू की तरह नाचता रहता है। तुम्हारा काम ही खत्म होने को नहीं आता। कुछ तो उसे आराम करने को चाहिए। इतना बड़ा तुम्हारा लड़का होता तो तुम उससे इतना काम करातीं? आखिर यह भी तो किसी का लड़का ही है।

मालकिन जल उठीं। उन्हें सुनुआँ से इस लड़के की तुलना बुरी लगी। तुनुककर बोलीं—यह तुम क्या बकने लगते हो जी! सुन्ने की इसकी क्या बराबरी? उसे आराम करने को रखा है या काम करने को? वह आराम करेगा तो क्या काम मैं करूँगी? या तुम करोगे? न कुछ समझना न बूझना, बस लगे बोलने।

लखनलाल—मैं तो समझता हूँ, उसे थोड़ा आराम देने के लिए कुछ काम मैं अपने से कर ही सकता हूँ। कुछ काम तो तुमने भी बेकार ही बढ़ा रखे हैं। सुबह-शाम दोनों वक्त कमरों में झाड़ू लगाने की क्या ज़रूरत है? अगर कभी कहीं गन्दा हो जाय तो बात दूसरी है, यों दोनों वक्त साफ़ कराने की ज़रूरत मैं नहीं समझता। चाय भी तुम खुद ही बना ले सकती हो, उसमें इसको फँसाने की कोई ज़रूरत नहीं है।

बम्बे के नीचे बर्तन मलता हुआ वह लड़का पति-पत्नी की यह बातें सुन रहा था। मालकिन को लगा कि वह और ढीठ हो जायगा। बात बदलने के लिए कहा—अच्छा-अच्छा, मेरा क्या? अब मैं उससे कोई काम नहीं लूँगी। तुम्हारे जो जी में आए, करो। अब घर भिनकता रहेगा तब भी मैं उससे काम करने को नहीं कहूँगी।

कहना नहीं होगा कि मालकिन की उससे काम न लेने की धमकी केवल धमकी ही थी। थोड़ी देर बाद ही उनकी गाली गलौज फिर चलने लगी और बाहर के कमरे तक सुन पड़ने लगी।

उस दिन मालकिन सुबह से ही गंगाजी गई थीं। उनकी एक सहेली के लड़के का मुंडन था। घर में केवल लखनलाल और वह

लड़का था। दोपहर को लखनलाल ने लड़के को पास बुलाया, पूछा—रामबली, तेरे और कौन-कौन हैं ?

रामबली बनारस के पास के किसी गाँव का था। हिन्दी अच्छी बोल लेता था। बिना किसी संकोच के उत्तर दे दिया—कोई नहीं साहब !

लखनलाल—कोई नहीं ? माने ?

रामबली—कोई नहीं माने, कोई नहीं साहब।

इस तरह का उत्तर मालकिन को उद्दंडता ही लगता पर लखनलाल हँसने लगे। कहा—अच्छा, अब कोई नहीं है पर क्या कभी कोई नहीं था ?

रामबली—सब थे साहब !

लखनलाल—तो यही क्यों नहीं कहता ? अब, सब कहाँ चले गए ?

रामबली की आँखें भींग आईं, बोला—सब मर गए साहब !

लखमलाल—तो यहाँ किसके यहाँ रहता था ?

रामबली—बाबू धरमचन्द के यहाँ मामा काम करता है। उसी ने बुला लिया।

लखनलाख—कैसे सब मर गए ?

संक्षेप में, रामबली ने जो कहानी कही, वह यह है—बनारस से बारह मील दूर उसका गाँव है। गाँव में दस-बारह घर बाह्मन-ठाकुरों के हैं, एक-दो घर कायथों के और बाकी घर कुर्मियों के हैं। गाँव का नाम भी बह्मनपुरवा है। एक-दूसरे से लड़ते झगड़ते, हँसते-रोते सबके दिन मौज से कट रहे थे। उसका बाप ठाकुर था, माँ अहीरिन ! माँ को बाबू कहाँ से पकड़ लाए थे, यह उस गाँव में कोई नहीं जानता था। हाँ, यह प्रसिद्ध था कि उनके इसी 'पाप' के कारण उसके दादा कुढ़ कुढ़कर मरे। उनकी ज़िन्दगी में ही बाप-बेटे इसीलिए अलग हो

गए थे। वह जब पैदा हुआ था, उसने बाद में सुना, तब उसकी माँ उन्नीस साल कुछ महीनों की थीं। उसी साल गाँव में कुछ ऐसा हल्ला आया कि गाँव के सभी जवान कलकत्ता जाकर कमाने की बात सोचने लगे। यह सब हुआ था गाँव के एक युवक धनराज के कलकत्ता से वापस आने के बाद। वह वहाँ दूध का व्यापार करके छैलचिकनियाँ बनकर लौटा था। उसने न जाने ऐसा क्या मंत्र मारा कि सभी युवक कलकत्ता जाने को तैयार हो गए! उसके बाप भी उन युवकों में एक थे। जब धनराज जाने लगा तो अपने साथ सबको बटोरता गया। गाँव के बड़े बूढ़ों ने बहुत मना किया पर उनकी सुनता कौन है। उसके बाप भी घर पर नवजात शिशु रामबली और थोड़ा-सा खेत छोड़कर कलकत्ता कमाने चल दिए। किसी तरह पास पड़ोस के लोगों की सहायता से माँ ने खेत जोतने-बोने का प्रबंध किया और उसे पाला।

गाँव के पटवारी मुँशी विद्यानारायन की उसकी माँ के प्रति, पिता के रहने के समय से ही, बुरी नीयत थी। जब तक पति मौजूद थे तब तक तो उनकी यह प्रवृत्ति दबी थी, उनके जाते ही माँ के लिए पटवारी साहब की सहानुभूति धारा बाँध तोड़कर बहने लगी। अब समय-असमय वह हमारे घर पधारने लगे, माँ का हाल-चाल लेने लगे, स्वेच्छा से उसके कष्ट दूर करने का प्रयास करने लगे। यह सब मैंने सुना है साहब, अपने से समझ पाने की बुद्धि तब कहाँ थी। आसपास के घर वाले इसका बुरा भी मानते पर पटवारी साहब के खिलाफ़ जाने का किसी में साहस नहीं था। माँ ने भी कई बार उन्हें मना किया पर जब वह मानें तब न! वक्त बेवक्त माँ को समझाते, वह उनके साथ रहने को तैयार हो जाय, अपने खूसट पति का ख्याल छोड़ दे, क्यों अपनी जवानी मिट्टी कर रही है, वह उसका सारा खर्च उठाने को तैयार हैं पर मां ने एक नहीं सुनी। कई बार गाँव वालों ने अप्रत्यक्ष रूप से कहा-सुना भी, मां ने भी अपमान किया पर उसके कानों पर जूँ भी न

रेंगी। वह चोरी छिपे आते जाते रहे। खुल्लमखुल्ला कोई उनका विरोध नहीं करता था, क्योंकि वह बहुत ज़ालिम भी थे।

यहाँ लखनलाल ने टोंका—लेकिन तुम्हारी माँ ही क्यों उन्हें आने-जाने देती थीं ?

रामबली—गाँव में अकेली, जवान औरत की, और वह भी ग़रीब औरत की बिसात ही क्या साहब ? खैर, पटवारी साहब की इसी आदत ने उनका सर्वनाश किया। एक बार वह तीन-चार दिनों के लिए किसी दूसरे गाँव गए हुए थे। इसी बीच पिताजी कलकत्ते से आए। गाँववालों ने उनसे सही बातें कह दीं, माँ ने भी कहा। वह मरने-मारने पर उतारू हो गए। पटवारी मिला नहीं। एक रात करीब १०॥ ११ बजे पिताजी सोए हुए थे, माँ रसोई में काम कर रही थी। मुंशी बिन्दानारायन उसी दिन शाम होने के बाद लौटे थे, मालूम था नहीं कि पिताजी आ गए हैं। वह रसोई के बाहर पहुँच कर खिड़की से बात करने लगे। माँ को तो अब पिताजी का बल था, सारी लाज-शरम छोड़ कर चिल्लाने लगीं। पिताजी डण्डा लेकर दौड़े और पटवारी साहब को इतना मारा, इतना मारा कि वह बेदम हो गए। तमाम सिर फट गया था। शोर मच गया। पटवारी साहब शहर के अस्पताल ले जाए गए जहाँ दो दिन बाद वह मर गए। पिताजी रातोरात चलकर चौकी पर पहुँचे और खुद ही अपना अपराध स्वीकार कर लिया। वह आज जेल में सज़ा भुगत रहे हैं।

उनके चले जाने के बाद माँ के कष्ट और भी बढ़ गए। कोई बात पूछनेवाला नहीं था। अब लाख चिरौरी करने पर भी कोई खेत गोड़ने-जोतने को तयार न हो। थोड़े दिनों बाद खेत भी ज़मींदार ने बेदखल करा लिया। अब वह चारो ओर से असहाय होकर गाँव के सम्पन्न ब्राह्मन-ठाकुरों के यहाँ कूटने-पीसने लगीं। काम करते समय उनकी आँखों से आँसू बहने लगते, अपना पिछला समय याद करके

वह बेकल हो जातीं पर ग़रीबी की मार जो न कराए। एक तो आदत के ख़िलाफ़ इतना काम करतीं, दूसरे सबकी गाली सुनतीं। उनका कलेजा फट जाता। इसी तरह तेरह बरस उन्होंने काट दिए। कभी-कभी रो रोकर मुझे यह सब सुनातीं। मैं भी बड़ा होने के साथ साथ मां को उनके काम में मदद करने लगा। अन्त में, पिछले वर्ष इतने दिनों यम यातना भुगत कर वह भी स्वर्ग सिधारीं। रह गया मैं। तब मामा ने यहाँ बुला लिया।

लखनलाल चुपचाप रामबली की कथा सुनते रहे। उन्हें लगता था, अपने वर्ग का यह अकेला प्रतिनिधि नहीं है। इसके अनगिनत भाई बन्धु आज विश्व भर में, घर-घर में फैले हुए हैं। जो कोई चार पैसे खर्च करने की सामर्थ्य रखता है वह इनके चौबीसों घंटे खरीद सकता है। इनकी समूची आवश्यकताएँ चाँदी के उन गोल टुकड़ों से दूर हो जानी चाहिए जो मोल भाव करके, इनके अथक परिश्रम के परिणाम-स्वरूप इन्हें महीने के अन्त में दिए जाते हैं। इनका धर्म है कि उन्हें पाकर अपने को कृतार्थ समझें और बदले में लट्टू की तरह नाच नाचते रहें। घर-घर में अलग-अलग बंटे रहने के कारण यह विद्रोह भी नहीं कर सकते। और विद्रोह करके भी क्या पा लेंगे? इनके बिना काम थोड़ा ही रुका रहेगा। एक जायगा, दूसरा आएगा। हाँ, आजकल लड़ाई के कारण इनकी समस्या भी कठिन हो गई है। परिवार वाले इतना दे नहीं सकते जितना मिलवाले, सरकारी कारखानोंवाले और विभिन्न कार्यों के लिए सरकारी ठीकेदार दे सकते हैं। लड़ाई ने काम बढ़ाए हैं, काम करनेवालों की मांग बढ़ाई है और काम करनेवालों का मूल्य बढ़ा दिया है। अधिक आय ने अधिक व्यय को जन्म दिया है। दस रुपये घर में पानेवाला नौकर बाहर कारख़ाने में पचास-साठ, कभी-कभी और ज़्यादा ही कमा लेता है। बेकार रहने का फ़िलहाल डर नहीं रह गया। घरों के लिए नौकर मिलने तभी कठिन हो गए हैं।

लखनलाल—क्यों रामबली, अभी तो तुम कह रहे थे कि तुम्हारे घरवाले सब मर गए। अब कह रहे हो कि तुम्हारे पिता हैं जो जेल में हैं।

रामबली ने असंकोच उत्तर दिया—मरे ही समान हैं साहब। उनको जिन्दगी भर की क़ैद हुई है। क्या जानें, जीते जी बाहर निकलेंगे भी या नहीं। जब से गए तब से न तो उनका कुछ हाल ही मिला न भेंट ही हुई। यह भी नहीं मालूम कि कहाँ हैं, कहाँ नहीं। फिर मेरे लेखे तो मर ही गए न साहब!

लखनलाल को उस लड़के पर बड़ी दया आई। आज तेरह वर्षों से यह अपने पिता से बिछुड़ा हुआ है। भले ही मां पिछले साल मरी है, किन्तु पिता के स्नेह का अनुभव यह बिचारा नहीं कर सका। उन्होंने सहसा पूछा—कितने दिन हुए तुम्हारे पिता को जेल गए रामबली?

रामबली—लोग कहते हैं, तेरह साल कुछ महीने हो गए।

लखनलाल—क्या नाम था उनका?

रामबली—बलराम।

लखनलाल देखो रामबली, अगर वह ज़िन्दा हुए तो कुछ महीनों में ही तुम उनको देख पाओगे। ज़िन्दगी भर के क़ैदी की मियाद चौदह साल आजकल मानी जाती है। शायद उनको कुछ छूट भी मिली हो। तब तो अब तक छूट भी गए होंगे। अगर छूट गए होंगे तो तुमको खोजते होंगे।

तेरह वर्षों के पितृ-स्नेह बंचित रामबली के मुख पर लखनलाल के इन वाक्यों से एक अभिनव प्रसन्नता झलक उठी। उसके माता-पिता के वियोग में व्यथित हृदय में जैसे मधु की स्रोतस्विनी बह उठी। घायल दिल पर इस सन्देश ने मरहम का काम किया। वह पुलक-विह्वल स्वर में पूछ उठा—साहब, क्या मैं उन्हें देख पाऊँगा? कैसे

पहचानूँगा साहब उनको ? वह क्या मुझे चीह्न लेंगे ? वह छूट गए होंगे तो कहाँ होंगे ?

इन प्रश्नों का उत्तर दे पाना सहज नहीं था। रामबली का यह कुतूहल सही था कि वह अपने पिता को कैसे पहचानेगा ! जब वह चार-पाँच महीने का शिशु था तभी उसका पिता घर छुड़ाकर, परिवार छुड़ाकर, पुरजन-परिजन छुड़ाकर ले जाया गया था और चौदह वर्षों के लिए जेल की काली दीवारों के पीछे बन्द कर दिया गया था। उसका अपराध यही था कि उसने एक अन्याय का प्रतिकार स्वयं किया। नपुंसक बनकर बैठा नहीं रहा। अपनी स्त्री के नारीत्व से खिलवाड़ करनेवाले को दण्ड दिलाने के लिए उसने दूसरे की अपेक्षा नहीं की, स्वयं के बाहुबल पर भरोसा किया। यह अपराध था—कम से कम ऐसी व्यवस्था की दृष्टि में यह अपराध था जो आज एक युग से भारत की जनता को पंगु, जड़ और नपुंसक बनाए जा रही है। हमारी अकर्मण्यता और दूसरों के समक्ष दयनीयता के बल पर ही जिसका आधार सुरक्षित है। शारीरिक और मानसिक क्लैव्यजन्य पराजित और परमुखापेक्षी भावनाओंवाले व्यक्ति ही जिसे सहारा दिए हुए हैं। ऐसे गुरु अपराध का अपराधी व्यक्ति, चौदह वर्ष नर्क में व्यतीत कर बाहर आने पर अपने पुत्र को, जिसे नन्हें-नन्हें हाथ-पाँव वाला छोड़ गया था और जो अब बड़ा होकर स्वयं भी सामाजिक शोषण के यज्ञकुण्ड का हव्य बना हुआ है, न पहचान सके तो आश्चर्य ही क्या है ? पहचान पाने का उसके पास साधन ही क्या है ? फिर इसका ही क्या ठिकाना कि वह जीवित होगा ! चौदह वर्ष कुछ कम नहीं होते ! प्रान्त की किसी सेन्ट्रल जेल में यम-यातना भुगतते हुए कहीं वह चल बसा हो तो ? उसके मरने की ख़बर भी तो समाचार-पत्रों में नहीं आयगी ! कम्बल में लपेटकर कहीं फेंक दिया गया होगा।

किन्तु यह आशंका इस बालक से नहीं कही जा सकती। लखनलाल

बोले—देखो रामबली, अब यह मैं कैसे कहूँ कि तुम उन्हें कैसे पहचानोगे, या वही तुम्हें कैसे पहचान सकेंगे। एक ही उपाय है। उन्हें छूटने पर किसी तरह यह पता चल जाय कि तुम यहाँ, मेरे यहाँ काम कर रहे हो। वह पता लगाते-लगाते यहाँ आ जायँ तो मैं उन्हें विश्वास दिला दूँगा कि तुम उनके पुत्र हो।

रामबली ने बड़ी गम्भीरता-पूर्वक लखनलाल से पूछा—साहब, आप भी मेरे बाबू को बुरा समझते हैं ?

लखनलाल—क्यों ? बुरा क्यों समझूँगा ?

रामबली—गाँव भर कहता है, रामबली हत्यारे का लड़का है। इसके बाप ने खून किया है। मैंने समझा, आपने भी सब बातें सुनकर ऐसा ही सोचा हो !

लखनलाल ने दम भर चुप रहकर कहा—रामबली, तुमने कहा था कि पटवारी के ज़ालिम होने के कारण गाँववाले खुल्लमखुल्ला विरोध करने का साहस नहीं करते थे। जिन गाँववालों की ऐसी हीन दशा है उनसे तुम किसी और बात की आशा ही कैसे करते हो ? इन भेड़ों के झुण्ड में एक सिंह का होना उनसे सहन कैसे होता ? यह मैं नहीं कहता कि उस पटवारी को मार डालना कुछ बहुत अच्छा हुआ। कारण कि दण्ड देने के और तरीक़े भी हो सकते हैं किन्तु मैं तो उसको इस दृष्टि से देखता हूँ कि उसमें दण्ड देने का साहस तो था। मैं इसे बुरा नहीं समझता।

लगा कि लखनलाल की इस बात से रामबली आश्वस्त हुआ। एक संतोष उसके मुख पर झलक उठा। बाबू धरमचन्द्र और बाबू लखनलाल में कितना अन्तर है, वह यही सोचने लगा। उसने यह भी चाहा कि अभी दौड़कर, जो मिले उसे ही पकड़ कर, यह सुनायें कि मैं हत्यारे का लड़का नहीं हूँ। मेरे पिता ने कोई 'पाप' नहीं किया। वह बहादुर थे। वह भेड़ों के गिरोह में सिंह थे।

किन्तु यह उल्लास उसका अधिक देर तक टिक नहीं सका। मालकिन अँधेरा होते न-होते वापिस आगई। बिचारा दिनभर तो लखनलाल से बातें करता रहा, काम कहाँ से करता? मालकिन ने घर में एक नज़र चारो ओर फेरी और रामबली पर उबल पड़ीं—क्यों, आज दिनभर हरामखोरी होती रही न! देख रही हूँ कि सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है। तू करता क्या रहा दिनभर?

रामबली चुप ही रहा।

मालकिन—एक दिन न रहो घर में तो सब बादशाह हो जाते हैं। मैं तो आजिज़ आ गई। खा खाकर सब मुशंड हो रहे हैं, काम के नाम पर नानी मरती है। देखो तो, सारा घर भिनक रहा है। सोचा होगा—आज तो बहूजी हैं नहीं, कौन पूछता हैं। अरे, मैं गई थी तो कोई मर थोड़ी ही गई थी। तुम लोग तो चाहते ही हो कि मैं न रहूँ तो बला टले।

रामबली के पास इस अभियोग का भी कोई उत्तर नहीं था, सो वह चुप ही रहा। हाँ, जल्दी-जल्दी बर्तन माँजने में लग गया।

लखनलाल ने स्वयं बुलाकर उसे बात करने में लगाया था अतः उन्हें यह अन्याय जान पड़ा कि उनके कारण रामबली डाँटा जाय। अपने कमरे के बाहर निकलकर मुन्ने को गोद में लेते हुए बोले—क्या है, क्यों बिगड़ रही हो?

मालकिन—बिगड़ूँ न तो क्या करूँ? देख रही हूँ, सारा काम ज्यों-का-त्यों पड़ा है। न जाने दिन भर कहाँ मर रहा था।

लखनलाल—मर नहीं रहा था। मुझसे बातें कर रहा था।

मालकिन को आश्चर्य हुआ, ऐसी कौन सी बात हो सकती है जो दिन भर करने की हो। हो-न-हो, मौक़ा पाकर उनकी शिकायत करता रहा होगा। कहा—क्या कह रहा था? मेरे बारे में कुछ कहता था?

लखनलाल—नहीं, तुम्हारे बारे में तो बात ही नहीं हुई। मैंने उसे बुलाया था और उसका हाल-चाल पूछता रहा। बिचारा बड़ी मुसीबत में है।

मालकिन—कैसी मुसीबत ?

लखनलाल पास ही बैठ गए और धीरे-धीरे रामबली की सारी कथा कह सुनाई। कहते समय वह उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, जिनका पत्नी पर अधिक प्रभाव पड़ने की सम्भावना थी। सब कह चुकने पर उन्होंने देखा, पत्नी के मुख पर भी करुणा झलक आई है, यद्यपि उन्होंने यह भी लक्ष्य किया कि बीच में उन्हें कुछ घृणा भी हुई। यह रामबली के बाप ठाकुर और मां अहीरिन होने का प्रसंग था। उनके जीवन्त संस्कारों के लिये यह प्रणय बंधन असहनीय था। क्षण भर के लिए तो पति द्वारा आयोजित, रामबली के लिए उनकी सारी करुणा और उदारता उसके पिता के इस अकरणीय कृत्य के कारण, विषाक्त हो उठी पर कथा का सूत्र आगे बढ़ने पर धीरे-धीरे कटुता कम हो गई। कथा कह चुकने पर, लखनलाल ने जो आशा की थी, वही हुआ। मालकिन ने कहा—बिचारा बड़ा दुखित है ! बिना माँ-बाप का।

इतना कहकर उन्होंने अपने मुन्ने को गोद में और ज़ोर से चिपटा लिया।

लखनलाल—दुखिया तो है ही, और क्या ! और उसीसे तुम इतना काम लेती हो, डाँटती फटकारती रहती हो !

मालकिन—तो मैं क्या जानती थी कि वह इतना अभागा है। ऊपर से देखने में तो ऐसा कुछ नहीं लगता था। मैं क्या किसी के पेट में घुसकर बैठी हूँ ?

लखनलाल—ऊपर से देखना ही तो देखना नहीं है। न जाने किसके मनमें, कहाँ की कौन-सी वेदनाधारा बहती रहती है। ऊपर से तो सभी देखकर सबसे व्यवहार करते हैं, फिर तुममें और अन्य लोगों

में अन्तर ही क्या रह गया ? मेरी स्त्री होने के नाते तो तुम्हें अधिक उदार, अधिक क्षमाशीला होना चाहिए न !

मालकिन इस प्रशंसात्मक और खुशामद भरी बात पर फूल उठीं। और समय होता तो एक बार अपनी आदत से मजबूर होकर वह ज़रूर कहतीं—तुममें क्या कुछ सुर्खाब का पर लगा है ! पर इस समय लखनलाल ने उनमें करुणा उपजा दी थी और वह अपने को कुछ विशिष्ट अनुभव कर रही थीं। लखनलाल उन्हें अन्य स्त्रियों से कुछ भिन्न समझते हैं, यह बात उन्हें मनही मन बहुत अच्छी लगी। उनका मर्म छू गया था और वह आत्मवंचना में फूल रही थीं। हँसकर बोलीं—तो मैं क्या करती हूँ भाई, उसे फाँसी थोड़ा ही चढ़ाती हूँ। तुम्हारी तो मुझे बदनाम करने की आदत पड़ गई है।

लखनलाल—नहीं-नहीं, बदनाम नहीं करता ! वह तो खुद ही दोपहर को कह रहा था कि मालकिन बड़ी सीधी हैं, मुझको बहुत मानती हैं। तुम्हारी प्रशंसा करते थकता नहीं था।

मालकिन ने पुलकित भाव से कहा—सच, ऐसा कहता था ?

लखनलाल—और क्या, मैं झूठ कहता हूँ। न विश्वास हो तो उससे खुद ही पूछ लो।

मालकिन पानी-पानी हो गईं। कहा—भला, यह क्या उससे पूछने की बात है ? तुम तो कभी-कभी पागलों जैसी बातें करने लगते हो। मैं भला उसको क्या मानती हूँ ! हमेशा काटने तो दौड़ती हूँ। अभी देखो, कितना बिगड़ रही थी ! इसीको मानना कहते हैं ?

लखनलाल—पर वह तो कह रहा था कि वह इसका बुरा नहीं मानता। तुम्हारी गाली भी उसे मीठी लगती हैं।

मालकिन—अब इतना तो मुझे सिर पर मत चढ़ाओ। मैं सब जानती हूँ।

बात वास्तव में ज़्यादा बेतुकी हो गई, यह लखनलाल भी समझ

गए। उनकी गाली किसी को मीठी नहीं लग सकती, यह मालकिन भी बिना परिश्रम के समझ गईं। लखनलाल सिटपिटा कर चुप रह गए। उनका सफ़ेद झूठ अब तक काम कर रहा था, अब वह अधिक बोलेंगे, तो पहले का बना बनाया मायाभवन भी ढह जायगा। मिथ्या का यह महल बना रहे, ढहने न पाए, वह यही चाहने लगे।

मालकिन आवश्यकता से अधिक सदय हो उठीं। उसकी चरम परिणति थी रामबली को भी उस दिन घी के बने परावठे मिलना जो केवल लखनलाल और मालकिन के लिए अब तक सुरक्षित रहते थे।

पाँच

चोरी देखकर मालकिन को आग लग जाती थी। यह भी सच है कि राजे को चोरी के ही कारण उन्होंने मारा था, निकाला था। मन-ही-मन उसके रूप और यौवन से, ऐसा रूप और यौवन लेकर लखनलाल की खुली दृष्टि के आगे घर में उन्मुक्तभाव से घूमने से उन्हें कम कष्ट नहीं होता था किन्तु वह दिल की बुरी नहीं थी। उनके कुछ विशेष मर्मस्थल थे जिन्हें छू देने से ही वह सब कुछ कर डालने को प्रस्तुत हो सकती थीं। लखनलाल ने रामबली के विषय में यही नीति ग्रहण की। समय-असमय पत्नी की उसकी ओर से प्रशंसा कर देते, वह पानी हो जातीं। मन में सोचतीं, अजीब लड़का है। मेरे मुँह पर तो कुछ कहता ही नहीं, पीठ पीछे मेरी बड़ाई करता है। ठीक तो है, लड़का ही ठहरा न! मुँह पर कुछ कहते डरता होगा। बिचारा बिना माँ बाप का है। अरे हाँ, और क्या—उसके लेखे तो बाप न रहने के ही बराबर है! हत्यारा है, और क्या? न जाने कहाँ से एक औरत पकड़ लाया और उसी के पीछे आज जेल भुगत रहा है। इन लोगों को धरम-अधरम का तो जैसे विचार ही नहीं। तभी तो नीच जात होकर पैदा हुए हैं। लच्छन ही ऐसे हैं तो हो क्या!

रामबली की श्रम-शक्ति देखकर लखनलाल को अत्यधिक आश्चर्य होता। छोटा-सा लड़का, समूचा घर सिर पर उठाए रहता है। आराम करना तो जैसे वह जानता ही नहीं। आराम करने की उसे शायद इच्छा ही नहीं होती या फिर उस इच्छा को उसने बरबस ही दबाना सीख लिया है। मानव के लिए काम और आराम, दोनों ज़रूरी हैं।

जिस तरह बिना काम किए, निरुद्देश्य और अकर्मण्य जीवन वह अधिक दिनों नहीं बिता सकता उसी तरह बिना आराम किए, समय के भागते हुए क्षणों में से कुछ क्षण चुरा कर उनका आनन्द के साथ उपभोग किए बिना, मनुष्य का जीवित रहना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।

एक दिन अवसर पाकर लखनलाल ने कहा—रामबली, तुम इतना काम करते हो, क्या तुम्हें थकावट नहीं मालूम होती ?

रामबली ने सदा की भाँति निःसंकोच उत्तर दिया—आती है साहब, पर क्या करूँ ? काम तो करना ही है।

लखनलाल—बीच-बीच में थोड़ा आराम कर लिया करो।

रामबली ने दयनीय मुँह बनाकर कहा—आराम करना होता तो घर पर ही न रहता साहब ! नौकरी क्यों करता ? मेरा आराम तो बापू और माँ के साथ ही चला गया !

बात उसकी सही थी, लखनलाल को चुप रह जाना पड़ा। इस एक वाक्य में ही उसने अपने समूचे वर्ग का इतिहास खोलकर कह दिया। नौकर और मज़दूर आराम करने के लिए नौकरी या मज़दूरी नहीं पाते। यों तो आदमी इसीलिए नौकरी करना चाहता है कि उस, उसके बालबच्चों को, उसके परिवारवालों को सुख तथा आराम मिले। यह बात दूसरी है कि उसकी यह इच्छा पूरी होती है या नहीं पर, साधारणतया नौकरी के पीछे यही इच्छा काम करती रहती है। यह सुख और सन्तोष की भावना न रहे तो आदमी अपनी जान में अपनी गर्दन जुए में न डाले। इतनी हाय-हाय करके, एँड़ी-चोटी का पसीना बहाकर चाँदी के जो कुछ गिने-चुने गोल टुकड़े उसे मिल पाते हैं उन्हें अपने घर के भाड़ जैसे पेट में डालकर आदमी धन्य हो रहता है। इसी तरह सगे-संबंधियों के पेट में कुछ दाने अन्न डाल पाने का प्रबंध करते-करते व्यक्ति स्वयं निश्चिन्ह हो जाता है, त्याग और कष्ट-

सहिष्णुता और धैर्य का ज्वलंत प्रकाश 'स्व' की आहुति को दबा देता है। आत्माहुति देकर व्यक्ति सफल हो जाता है।

मालकिन हृदय की उदार होते हुए भी शासन में कठोर ही रहना चाहती थीं। उनका विचार था, अधिक अपनत्व दिखाने से नौकर मुँह लग जाते हैं। इसका कटु-अनुभव भी उन्हें हो चुका था। वह रामबली के प्रति सदय हो गई थीं, उनके व्यवहार उसके प्रति अपेक्षाकृति मधुर हो गए थे किन्तु लखनलाल की अत्यधिक घनिष्ठता उन्हें अच्छी नहीं लगती थी। उस दिन जब वह लखनलाल के साथ सिनेमा जाने को तैयार हो रही थीं, रामबली ने कहा—मैं भी चलूँ बहू जी!

मालकिन की देह में आग लग गई, यह ढिठाई! बिगड़कर बोलीं—तू क्या करेगा वहाँ जाकर रे? हर जगह टाँग अड़ाता है!

रामबली का मुँह उतर गया, चुपचाप काम में लग गया। उसका उल्लसित हृदय चोट खाकर तिलमिला उठा। इधर मालकिन को अपने प्रति उदार पाकर, आज वह साहस के साथ इतना कह पाया था पर अब उसे लगा कि यह उसका भ्रम था। वह जो है वही रहेगा। उसके प्रति दया दिखाई जा सकती है, उस पर कृपा की जा सकती है, उससे सहानुभूति दिखाई जा सकती है पर उसे 'अपना' नहीं समझा जा सकता। यह उसका अपराध था कि उसने इससे अधिक की आशा की। सिनेमा देखने जाने की ही बात नहीं है, बात है स्वामी और दास, मालिक और नौकर के भेद की। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े, जिन्हें उसने जीभ से ओठों पर से चाट लिया।

लखनलाल कपड़े बदलकर आँगन में आए तो रामबली को रोता पाया। पूछा—क्या बात है रामबली? रो क्यों रहे हो?

उत्तर में रामबली ने कुछ कहा नहीं। लगा कि उसे फूट पड़ने से

अपने को रोकने में बहुत कष्ट हो रहा है। कमरे में शीशे के सामने खड़ी बाल ठीक करती हुई मालकिन ने लखनलाल का प्रश्न सुना, बाहर आकर बोलीं—है क्या, और मुँह लगाओ! यह भी जायँगे सिनेमा देखने।

लखनलाल ने परिस्थिति समझी नहीं, कहा—ठीक तो है, लेती चलो न! देख आएगा।

मालकिन जैसे कुतुबमीनार से नीचे गिरीं, आश्चर्य से मुँह फाड़कर बोलीं—क्या?

लखनलाल—कह तो रहा हूँ कि लेती चलो, वह बिचारा भी देख आएगा।

इसके बाद सहसा ही मालकिन के सिर में बड़ा भयंकर दर्द पैदा हुआ। परिणाम स्पष्ट था—उस दिन कोई सिनेमा देखने न जा सका। लखनलाल को लगा कि आज भोजन बन पाने का भी कोई लक्षण नहीं है। वह चुपचाप जूते पाँव में डाल चल दिए।

मन उनका आज स्थिर नहीं था। पत्नी की हृदय-हीनता और मूढ़ता का परिचय आज उन्हें पहली बार मिला हो, यह बात नहीं। अपने आठ वर्षों के विवाहित जीवन में पदे-पदे उन्हें इसी अन्धता का सामना करना पड़ा था। आगे भी कितने दिनों करना पड़ेगा, नहीं कहा जा सकता। उन्हें आश्चर्य होता था, जानवर भी किसी के साथ रहते-रहते उसे समझ लेते हैं किन्तु उनकी पत्नी उन्हें नहीं समझ पाई। पशु से जिस व्यवहार की आशा वह रखते थे, अपनी पत्नी से वह भी उन्हें नहीं मिल सकता था। असत्य के साथ अब तक समझौता करके वह चलते आए थे पर अब वह असत्य उनका मुँह चिढ़ा रहा था। उनकी भी आशाएँ थी, अभिलाषाएँ थीं, उनके यौवन ने भी विवाह के पहले और विवाह के बाद आरम्भिक दिनों में, कुछ चाहा था किन्तु सब कुछ धुल-पुँछकर साफ़ हो गया। सत्य लोप हो गया, अनुष्ठान

का मिथ्याश्व आजीवन के लिए सत्य बन गया। 'जीवन तो बीत ही रहा है, बीतेगा ही किन्तु रोकर भी जीवन बिताया जा सकता है, हँसकर भी। हँसकर बिताए हुए जीवन का एक क्षण रोकर बिताए हुए समूचे जीवन से अधिक सत्य, अधिक शिव, अधिक सुन्दर है।

कस्तूरबा गांधी रोड पर टहलते हुए वह निकल गए। शिवाले की कपड़ों की दूकानों पर तथा अन्य दूकानों पर स्त्रियों को कपड़ा मिलने में बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं। बेचारी भले परिवारों की स्त्रियाँ उस भीड़ को चीर कर आगे बढ़ पाना सहज नहीं समझती थीं। कुछ तगड़ी और झगड़ालू स्त्रियाँ हर दूकान पर सबसे आगे दीख पड़ती थीं जिनसे झगड़ा हो जाने के डर से स्त्रियाँ अलग-अलग ही रहती थीं। स्त्रियों की इतनी भीड़ देखकर मनचले गुण्डे भी वहाँ आस-पास मँडराते रहते। लखनलाल के पास इन बातों की शिकायत बराबर आती रहती थी। उन्होंने कुछ लोगों से इन बातों को मौक़े पर देखकर बतलाने को कहा था। इस समय इस सड़क पर टहलने निकलने का उनका एक मतलब यह भी था कि मज़दूर सभा के दफ़्तर में जाकर पता लगाएँ, कोई कपड़ों की दूकानों पर गया भी था या नहीं। एक बात और थी। पार्टी का दफ़्तर या मज़दूर सभा का दफ़्तर या कोई ऐसी ही और जगह उन्हें शान्ति देती थी। सारी दुश्चिन्ताओं से उन्हें छुटकारा मिल जाता था। वहाँ हँसने बोलने में, सिद्धान्तों की तू तू मैं मैं में तथा नगर और देश की अनेकानेक समस्याओं में उलझकर वह अपनी पारिवारिक समस्या भूल जाते थे। अपने को भूल जाने का यह साधन उनके पास न होता तो अब तक वह किसी पागलखाने में होते। अपने दुखी अस्तित्व को भूल पाने के मनुष्य के पास दो ही उपाय हैं। या तो वह शराब पीकर पड़ रहे या अपनी चित्त-वृत्तियों को किसी उपयोगी और उत्पादक कार्य की ओर लगा दे। राजनीति भी एक नशा है जिसमें मनुष्य अपनी सुध-बुध भूल जाता है।

दफ़्तर में इस समय बड़ी गर्म बहस हो रही थी। लार्ड वैवेल भारत लौट आए थे और देश की हताश और अभाव-ग्रस्त जनता तरह-तरह के अटकल लगा रही थी। कोई कहता था, देसाई-लियाक़त अली बातचीत के आधार पर ही लार्ड वैवेल बृटिश सरकार की ओर से समझौते की शर्तें रखेंगे, कोई इसके बिलकुल विरुद्ध था। कोई मंत्रित्व-ग्रहण के पक्ष में था, कोई विपक्ष में। पत्रों में अटकलबाजी के आधार पर लार्ड वैवेल की ओर से आनेवाले 'ऑफ़र' की भी रूप-रेखा छपी थी। वह ऐसी नहीं थी जिससे कोई भी आत्माभिमानी भारत-वासी उसे स्वीकार कर सके। कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता अभी एक तरह से चुप थे, सरकारी तौर पर पूरा 'ऑफ़र' पत्रों में छपने के पहले इस पर कोई निश्चित राय प्रकट करना उचित नहीं था। कभी-कभी अत्यंत छोटी बातें भी स्थिति को पूर्णतया बदल देती हैं।

कॉमरेड शिवसेवक ने कहा—अरे, यह सब बेकार की बातें हैं। कुछ होना-जाना नहीं है।

रामप्रसाद—हम लोगों के टें टें करने से होता ही क्या है? सारी बातें लार्ड वैवेल के ऊपर निर्भर हैं। मैं पूछता हूँ, सरकार समझौता क्यों करे? उसे रुपए की ज़रूरत है, वह मिलता ही है, आदमियों की ज़रूरत है, नंगे-भूखे देश में आदमियों की कमी नहीं। क्यों कॉमरेड!

प्रश्न लखनलाल से किया गया था। बोले—घास खा गए हो क्या रामप्रसाद! यह बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हो? देश की आर्थिक स्थिति नहीं देखते हो! सरकार क्या अन्धी है जो उसे यह नहीं सूझता? जापान से लड़ने के लिए हिन्दुस्तानी सहायता की अत्यधिक आवश्यकता है। कोई भी सरकार बिना जनमत का बल प्राप्त किए, बिना जनता को साथ लिए नहीं चल सकती। हो सकता है कि ऊपर-ऊपर से देखने में यही लगता हो कि सरकार को धन-जन की पूरी सहायता इस विशाल देश से मिल रही है किन्तु भीतर ही

भीतर चालीस करोड़ व्यक्तियों की कुचली हुई आत्माओं पर पाँव रखकर शासन करना और बलपूर्वक सहायता प्राप्त करने का ढोंग अधिक दिनों नहीं चल सकता। निराशा में तो समूचा देश डूब-उतरा रहा है, यदि हम लोग भी इस समय कायरतापूर्ण और निराश बातें करेंगे तो हो चुका।

रामप्रसाद—कौन-सी कायरतापूर्ण बात कॉमरेड ?

लखनलाल - यही, जो तुमने अभी कहा। तुम कहते हो, अकेले हम लोगों के करने से क्या होगा ? होगा, ज़रूर होगा। हम जो कह रहे हैं, कर रहे हैं उसके पीछे देश की समस्त चुसी-पिसी और शोषित विशाल जनता की सहानुभूति है। यदि देश ने कभी स्वर्णयुग देखा, यदि हमारे पास कभी स्वतंत्रता की महादेवी आई, यदि हम मुक्त हुए तो जिन बलिदानों के द्वारा यह संभव होगा उनमें हमारा भी योग-दान होगा। आज हमारी बातें लोग न समझें, हम देशद्रोही कहे जायँ किन्तु कल के स्वतंत्रता के इतिहास में हमारा मसिबिन्दु भी कभी उपेक्षणीय न होगा, यह याद रखो।

रामप्रसाद से उत्तर देते नहीं बन। यद्यपि लखनलाल ने कोई असाधारण महत्व की बात नहीं कही थी किन्तु उनके आत्मविश्वासपूर्ण बात करने के ढंग ने सभी को प्रभावित किया। रामप्रसाद भी समझ गया, वास्तव में उसका कथन निराशा से भरा था, देश की वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थिति में इस तरह के निराशापूर्ण कथन कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकते। समूचे देश का उपहास सहकर भी जो पार्टी अपनी नीति पर स्थिर थी, उसी का एक सदस्य ऐसी बातें करे !

कल वैवेल का सुझाव पत्रों में प्रकाशित होनेवाला था। शिव-सेवक ने कहा—मैं तो समझता हूँ कॉमरेड, कांग्रेस को इस बार प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए।

रामप्रसाद—क्यों ?

शिवसेवक—क्यों क्या ? अपने ही प्रान्त में ले लो। ग़ल्ले और कपड़े की समस्या कितनी विकट होती जा रही है। पुलिस और सिविक-गार्डस की धाँधलियाँ छिपी नहीं। 'करप्शन' अपने पूरे उभार पर है। यदि अपना शासन हो तो यह खामियाँ काफ़ी हद तक दूर हो जायँ। सीमा प्रान्त में काँग्रेस के पदग्रहण की एक ख़ास वजह यह भी थी कि वह 'करप्शन' को जड़मूल से उखाड़ फेंकना चाहते थे। देखा नहीं था पत्रों में, डॉक्टर ख़ाँ साहब स्वयं ही ग़ल्ले की मंडियों में और दूकानों पर जाकर जनता की कठिनाइयाँ देखते, सुनते हैं !

रामप्रसाद फिर बहका— तुम तो निरे पोंगा हो कॉमरेड ! सीमाप्रांत और अन्य प्रान्तों की परिस्थितियों में पर्याप्त अन्तर है। जो बात वहाँ सही है वह क्या सब जगह सही ही होगी ?

शिवसेवक - मानता हूँ कि स्थिति में ज़मीन-आस्मान का अन्तर है। किन्तु साथ ही यह भी मानता हूँ कि सेवा की भावना सर्वत्र समान है। अपने देश की ग़रीबी से मारे हुए निरन्न, निर्वस्त्र और जड़ जनता की सेवा करना ही इस समय प्रमुख कर्त्तव्य है, वादों की तू तू मैं मैं से देश का कल्याण कभी नहीं हो सकता।

रामप्रसाद ने ताने से कहा—हाँ, बेहया हो और क्या ! सेवा की मानोपली जिनके हाथ में है, कम से कम जो ऐसा समझते हैं, वह तो बात न पूछें, हर जगह उनके संगठनों से निकाले जाओ, गालियाँ सुनो फिर भी सेवा-सेवा की रट लगाते रहो !

शिवसेवक—तुमको बात करनी नहीं आती तो क्यों बोलते हो जी ! देखो न कॉमरेड ! यह अपने को समझता क्या है ?

रामप्रसाद—बेहया का उलटा जो होता है, वही।

लखनलाल जानते थे, रामप्रसाद केवल बात करने के ही लिए बात कर रहा है। अन्यथा वह इतना मूर्ख नहीं है कि उसके वही विचार हों जो वह प्रकट कर रहा था। वह चुपचाप दोनों की बातों में

रस ले रहे थे। उनकी बातें ऐसी लग रही थीं जैसी उन दो भाइयों की होती हैं जो समय काटने के ही लिए केवल आपस में उलझ जाते हैं किन्तु मन ही मन समझते रहते हैं कि उनकी माँ एक है, पिता एक हैं। शिवसेवक मुँह भारी करके बैठ गया था। रामप्रसाद उचक कर पास पहुँचा, बोला—अच्छा बाबा, मान गया कि तुम बेहया नहीं हो। बस न ! लो, बीड़ी पियो !

शिवसेवक ने बिना कुछ बोले एक बीड़ी बन्डल में से निकाल ली और सुलगा कर धुआँ उड़ाने लगा। इस यज्ञ की समाप्ति के बाद थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके, कपड़ों की दूकानों का ब्योरे-वार वृत्तान्त सुनकर जब लखनलाल चलने को हुए तब रामप्रसाद भी साथ-साथ ही बाहर आया। बोला —कॉमरेड, मुझे तुम्हारी सलाह चाहिए।

लखनलाल चलते हुए बोले—सलाह ? कैसी सलाह ?

रामप्रसाद ने असंकोच कहा—तरुलता के विषय में।

लखनलाल को तरुलता की बात याद नहीं थी, पूछा—तरुलता कौन ?

रामप्रसाद ने झेंपते हुए कहा—अब बनो मत कॉमरेड, उसने तुम्हें मेरा पत्र दिया था। कह रही थी।

लखनलाल ने समझा, ज़ोर से हँस कर बोले—अच्छा ! वही तुम्हारी सपनों की रानी, मन का मोती, कान का झुमका, पाँव की·····

रामप्रसाद ने चिढ़कर कहा—हटो, तुम्हें मज़ाक सूझा है और यहाँ जान को पड़ी है।

लखनलाल ने गम्भीर होकर पूछा—आखिर बात क्या है ? कुछ कहो भी।

रामप्रसाद—परसों वह अपने भाई के साथ सिनेमा देखने गई थी। उसका भाई छुट्टी लेकर आया हुआ है न ! मैं भी उस दिन तबीयत

न लगने से सिनेमा चला गया था। खेल शुरू हो गया था। तब मैं पहुँचा और अँधेरे में ही एक सीट पर बैठ गया। इन्टरवल में देखा, जिसकी बगल में बैठा हूँ वह तरुलता है। उसके भाई ने मुझसे क्या कहा, यह तुम जानते हो?

लखनलाल—भला मैं कैसे जानूँगा?

रामप्रसाद—उसने ऐसी बात कही कॉमरेड, ऐसी बात कही कि मैं तब से सोच रहा हूँ, क्या करूँ? उसने कहा—तरु की शादी, उसकी मर्ज़ी के खिलाफ़, एक पी० सी० एस से होने जा रही है।

लखनलाल को याद आया, तरुलता ने उस दिन होटल में कहा था—शादी ही करनी होती तो वह पी० सी० एस० बिचारा क्या बुरा है! ऊपर से बोले—खुशी की बात है और आगे क्या कहा?

रामप्रसाद—तुम इसे खुशी की बात कहते हो? मेरा तो तन-बदन जला जा रहा है। वह पी० सी० एस बेटा जी उसकी जाति के हैं और कहीं से घूम फिर कर कोई टेढ़ा सीधा रिश्ता भी निकाल लिया है। तरुलता के सौन्दर्य पर रीझ गए हैं और उसके बाप तुले बैठे हैं कि इसीसे शादी करूँगा। कोई उपाय तुम निकालो कॉमरेड!

लखनलाल—अब कॉमरेड लौंडे-लौंडियों की शादियाँ कराते फिरें, क्यों? बस, यही एक काम मुझे रह गया है क्या?

फिर गम्भीर होकर कहा—मुझसे पूछते हो तो मैं यही कहूँगा रामप्रसाद, मारो गोली इस पचड़े को। इसमें रखा ही क्या है?

रामप्रसाद—नहीं कॉमरेड, गोली मारने से ही काम नहीं चलेगा। वह पार्टी की बड़ी अच्छी वर्कर साबित हो सकती है, उसे छोड़ना नहीं चाहिए। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है जो मैं उससे व्याह करना चाहता हूँ।

रामप्रसाद ने समझा था, पार्टी को वर्कर मिलने का प्रलोभन लखनलाल को दिखाने से उन पर कुछ अधिक प्रभाव पड़ेगा किन्तु

लगा कि लखनलाल इससे विचलित नहीं हुए। पार्टी को उत्साही, दृढ़ और स्वनिर्भरा स्त्री कार्यकर्त्रियों की आवश्यकता है, यह वह जानते थे। यह भी वह निःसंदिग्ध भाव से स्वीकार करते थे कि बिना नारी के सहयोग के कोई भी आन्दोलन वैसा ही रहेगा जैसा बिना गारे-चूने के सहयोग के केवल ईंटों का बना हुआ मकान। किन्तु इस सस्ते रूप से तथा इतनी सुगमता से पार्टी को कोई स्थायी कार्यकर्त्ता मिल जायगा, इस पर उन्हें विश्वास नहीं था। पार्टी के काम में जो स्त्रियाँ अपना तन मन-धन अर्पण कर रहीं थीं, उन पर लखनलाल को श्रद्धा थी। वह गम्भीर अध्ययन तथा स्वानुभूति के बल पर पार्टी के उद्देश्यों के प्रति अभिमुख हुई थीं। केवल ब्याह कर लेने से ही कोई स्त्री कम्यूनिष्ट कार्यकर्त्ता के संसर्ग से पार्टी को सदा के लिए अपना लेगी, यह कल्पना उन्हें उपहासास्पद लगी। यह सच है कि उन्होंने एकाधिक अवसरों पर तरुलता की परीक्षा ली थी, जब-जब जो काम उसे दिया गया, उसने सफलता और लगन से वह काम किया। परिश्रम और अध्यवसाय में उसने कई बार युवक कार्यकर्त्ताओं को भी पीछे छोड़ दिया किन्तु लखनलाल इतनी जल्दी यह मानने को प्रस्तुत नहीं हो सकते थे कि उसका मत इतना बद्धमूल हो गया है जो परिवर्तित नहीं हो सकता। वह जानते थे, नववय में स्फूर्तिजनक और उत्साह भरे कार्य युवक-युवतियों को अच्छे लगते हैं। ऐसा सब कुछ, जो युगों से निर्धारित रीति-नीतियों से अलग हो, लुभावना लगता है। तरुलता अग्निपरीक्षा में भी खरी निकलेगी, इसकी आशा अभी वह नहीं कर सके थे। तभी वह रामप्रसाद की बात सुन चुप ही रहे।

रामप्रसाद—कुछ बोले नहीं कॉमरेड।

लखनलाल—क्या बोलूँ? पार्टी इतनी आसानी से यदि किसी को बाँध कर रख सकती तो क्या बात थी? और अगर तुमसे विवाह कर लेते ही कोई लड़की पार्टी के लिए प्राण देने को उद्यत हो सकती हो

तो दुनिया में लड़कियों की कमी थोड़ा ही है। कहीं से भी ढूँढ़-ढाँढ़ कर ले आओ और व्याह कर डालो।

रामप्रसाद को लखनलाल की यह बात कुछ बहुत अच्छी नहीं लगी। वास्तव में, लखनलाल को ऐसा कहना भी नहीं चाहिए था। तरुलता के विषय में उनका जो ज्ञान था, केवल रामप्रसाद से सुना हुआ ही था। लखनलाल के साथ परिचय ही रामप्रसाद ने कराया था। तरुलता वास्तव में ही एक असाधारण युवती थी। असाधारण इस अर्थ में कि, उसके जैसी परिस्थितियों में उत्पन्न और पालिता-पोषिता युवतियाँ इतनी प्रतिभाशालिनी नहीं होतीं। साहस का उदाहरण उसने तभी दे दिया था जब पिछले आन्दोलन में, नवीं क्लास में पढ़ते समय, सबसे पहले और सबसे आगे बढ़कर उसने अपने स्कूल के गुम्बद पर राष्ट्रीय झंडा फहराया था और गिरफ़्तार कर ली गई थी। अन्य कई लड़कियों के साथ पुलिस की लारी में भर कर थाने ले जाई गई थी और रात के पिछली पहर किसी अँधेरी, सूनसान जगह में, शहर से कई मील दूर, ले जाकर छोड़ दी गई थी। सुबह, किसी तरह रात भर चल कर जब वह अपने घर पहुँची थी, तब, लड़ाई के ज़माने में भर-भर हाथ रुपए बटोरकर रख लेने वाले पिता ने आँखों में आँसू भरे, उसे गोद में चिपटा लिया था। माँ ने कहा कुछ नहीं था, केवल उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली थी। पिता ने थोड़ी देर बाद अपने को सम्हालकर कहा था—बेटी, तुम्हारी वय ऐसी नहीं है कि तुम यह बातें सह सको! फिर तुम स्त्री हो·····

तरुलता ने अपने को पिता की गोद से अलग करते हुए कहा—स्त्री होने से ही कोई काम अकरणीय नहीं हो जाता। क्या स्त्री को अपना अपमान अनुभव नहीं होता? स्त्री को क्या पराधीनता की आग नहीं जलाती? दासता की कठोर शृंखलाओं को तोड़ फेंकने की इच्छा क्या स्त्री को नहीं होती? वह क्या मनुष्य नहीं है पिताजी? रह गई वय की

बात, तो मातृभूमि की बलिवेदी पर जहाँ इतने पूर्णविकसित फूलों का निर्माल्य चढ़ेगा वहाँ दो-चार अधखिले फूलों से उसका मान बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं। आप चिन्ता न करें।

पिता—तेरे कह देने से ही क्या मेरी चिन्ता दूर हो जायगी बेटी! ज़रा माँ के हृदय से पूछ, पिता के दिल पर हाथ रखकर देख।

तरुलता—जानती हूँ बाबूजी, सब जानती हूँ किन्तु देश में एक तुम्हारी तरुलता ही तो नहीं है न। कोटि-कोटि तरुलताओं के अपमान की ज्वाला क्या तुम्हारे हृदय तक नहीं पहुँचती? बंगाल में भूखी मर जाने वाली अनगिनत माँओं, बहिनों और बेटियों के निरन्न और क्षीण, दुर्बल अस्तित्व का बोझ अधिक न ढो सकने पर मौत को सहर्ष अपनाने वाले हाहाकार क्या तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँच पाये? चारो ओर के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक बंधनों में जकड़ी, निरुपाय, नारी के शोषण से क्या तुम्हारी आँखें नहीं भीग जातीं? इस अभागे देश के इसी अन्ध-मोह ने सर्वनाश कर रखा है बाबूजी। एक तरुलता, तुम्हारी बेटी, के जीवन की ही बात नहीं, अपने चारों ओर बिखरे, नाली के कीड़ों जैसा जीवन व्यतीत करते हुए अनगिनत तरुलताओं और उनके भाई-बन्धुओं को 'अपना' समझिए। उनके प्रति भी आपका कर्त्तव्य है।

सुना पिता ने सब; किन्तु इस पन्द्रह-सोलह वर्षों की कोमल बालिका के मुख से निकली हुई यह बात उन्हें तब नहीं समझ में आई कि स्वाधीनता महँगी वस्तु है और जब कभी और जिस देश में स्वतंत्रता की महादेवी लम्बी यात्रा तय करके आई हैं तब-तब जात-पांत, धर्माधर्म वय आदि के बंधनों को दूर रखकर, प्राणोत्सर्ग करनेवालों के बलिदान के आवाहनों से ही आई हैं। नौ महीने पेट में रखकर, अगणित कष्ट सहकर बच्चे को जन्म देने वाली माँ और आजीवन उसके हिताहित का ध्यान रखनेवाले पिता अपने रक्तमांस के अंश सन्तान को पीछे रखकर

अन्य सन्तानों पर अपना स्नेह-प्रेम उड़ेल देंगे, यह कल्पना भी उनसे न हो सकी। परहित में स्वहित कैसे निमग्न कर दिया जा सकता है, यह समझ पाना उनके संस्कारी हृदय के लिए कठिन था। किन्तु एक बात है। उस दिन से तरुलता को मन ही-मन घर के लोग संभ्रम और श्रद्धा से देखने लगे। उनके घर में एक देवी ने अवतार ग्रहण किया है, उन्होंने यही समझा।

उसके स्कूल में वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ होती रहतीं। तरुलता सदा ही उनमें प्रमुख भाग लेती। एक साल वार्षिकोत्सव के अवसर पर भी वाद-विवाद का कार्य-क्रम रखा गया था। विषय यद्यपि पुराना और घिसा हुआ था फिर भी समय के साथ था। स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर है या उन्हें बाहर की दुनिया भी देखनी चाहिए। संभ्रान्त निमंत्रित व्यक्तियों में से तीन व्यक्ति निर्णायक थे। तरुलता ने कहा था, यद्यपि वह विवाहिता नहीं है फिर भी अधिकांश विवाहिता स्त्रियों के मनोदशा जानती है। वह मानती है कि स्त्रियों के लिए घर की सुव्यवस्था और पति-पुत्र की देख-रेख आवश्यक है किन्तु साथ ही वह यह भी मानती है कि इस महत्कार्य की अपेक्षा भी अन्य कार्य हो सकते हैं जिन्हें स्त्री महान् समझ सकती है और कर सकती है। घर में बनी रहकर शान्त और निरुपद्रव जीवन व्यतीत करने से बढ़कर और कोई काम स्त्रियों के लिए नहीं हो सकता, यह वह नहीं मानती। अपने भाषण के सिलसिले में वह नारी समस्या पर बहुत कुछ कह गई थी। सुनकर उपस्थित व्यक्तियों को अत्यधिक आश्चर्य हुआ था। यह सभी समझ गए थे, उसका ज्ञान किताबी है, इतनी कम वय की लड़की को स्वानुभव इतना नहीं सिखा सकता किन्तु उस किताबी-ज्ञान की गम्भीरता ने ही सबको अवाक् कर दिया। भाषण के बीच-बीच उसने कई बार रूस और रूसी व्यवस्था का भी उल्लेख किया। सबको यह विश्वास हो गया था कि इस अल्पवयी बालिका में एक अदम्य-शक्ति है,

तेज है, प्रेरणा है जो अभी से उथल-पुथलकारी परिवर्तन पर विश्वास करती है, जो एक नए समाज की कल्पना करती है, वर्त्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में जो, पिंजरे में बन्द पंछी की तरह, तड़फड़ा रही है।

रामप्रसाद ने कहा—कॉमरेड, तुम उसको जानते नहीं, नहीं तो ऐसा न कहते। मैं तुमसे उससे 'डिटेल' में बातें कराऊँगा। तुम स्वयं देखोगे कि वह असाधारण है। वास्तव में, पार्टी को एक स्थायी वर्कर मिलेगा।

लखनलाल को अब भी विश्वास न हुआ। यह सब प्रेम की मधुर गुदगुदी का परिणाम है, यही उन्होंने समझा। बोले—अच्छा भाई, कराना।

सौभाग्य से, मालकिन ने भोजन बना दिया था। लौटकर लखनलाल ने खाना खाया, पलंग पर पड़ रहे। रामप्रसाद और तरुलता की समस्या उनके मन में घूमने लगी। यह अकेले उन्हीं दोनों की समस्या नहीं है, वास्तव में यह बहुत दूर तक जाती है। यह समस्या है दूरत्व और घृणा के उस भाव की जो भिन्न वर्ग, भिन्न जाति, भिन्न धर्म और भिन्न रीति-नीतियों ने लोगों के मन में बद्धमूल कर दी हैं। खान-पान, रहन-सहन और आचार-विचार ने जन-जन के बीच जो एक अभेद्य दीवाल खड़ी कर दी है, यह समस्या उससे सबंध रखती है। भिन्न जाति के ही होने के कारण दो युवक युवतियाँ, परिवार और समाज के नाम पर आपस में नहीं मिलने दिए जा सकते। यह कितना बड़ा झूठ है, यह लोग नहीं देख पाते। असत्य के साथ समझौता भी एक निश्चित सीमा तक ही किया जा सकता है। यदि रामप्रसाद की बात ही सच हो, दो हृदयों के जीवन-व्यापी गहन-प्रणय का अधिक मूल्य है या समाज के बहुत दिनों से चले आए, घिसे अन्ध संस्कारों का? तन-मन से सन्तुष्ट विवाहित दम्पतियों द्वारा भारत का कल्याण अधिक सम्भव

है या पिता-माता द्वारा हाथ-पाँव बाँधकर कुएँ में डाल दिए गए पति-पत्नियों द्वारा ? किन्तु, तरुलता ने कहा था कि वह विवाह ही नहीं करना चाहती। आखिर यह क्या है ? एक युवती मधुर प्रेम की गुदगुदी अनुभव न करेगी, यह तो संभव नहीं है। या फिर उस गुदगुदी का मार्जन ही इस सीमा तक कर लेगी कि उसे उन व्यवहारों और अनुभवों की इच्छा और प्रत्याशा न होगी जो विवाह द्वारा ही हमारे समाज में जायज़ माने गए हैं, यह भी नहीं कहा जा सकता। फिर यह भी तो नहीं हो सकता कि तरुलता तितली बन डाल-डाल का रस संचय करेगी। तब फिर होगा क्या ?

दूसरे दिन सबेरे अभी लखनलाल अच्छी तरह सोकर उठे भी नहीं थे कि रामप्रसाद बाहर चीखने लगा। सुबह-सुबह की इस धींगा-मस्ती से गृहस्वामिनी का जी और भी कठोर हो आया। लखनलाल के मित्रों के कारण मालकिन को पर्याप्त कष्ट उठाने पड़ते थे, कम-से-कम वह ऐसा ही समझती थीं। बाज़-बाज़ तो उनमें ऐसे थे जो समय-असमय घर पहुँचकर कुछ खाने की फ़र्मायश निःसंकोच कर बैठते थे और मालकिन को कुछ तो सौजन्य के कारण, कुछ लखनलाल की ज़िद के कारण, पकौड़ी आदि बनानी ही पड़ती थीं। मालकिन यह जानती थीं कि इतने सबेरे घर आकर ऐसी निर्दयता से लोगों के किवाड़ और नींद तोड़ने का काम इनके मित्रों से ही सम्भव है। इनके लिए दिन और रात तो कोई महत्व ही नहीं रखते। जब जी चाहा, चप्पल चटकाते चल दिए और किसी भले आदमी के घर धरना देकर बैठ गए। अब सुन लो इनसे ज़माने भर की बातें ! रूस में यह हो रहा है, अमेरिका यह कर रहा है, इंग्लैंड की यह हालत है। पूछो भला, अरे भाई, रहते तो हो हिन्दुस्तान में, तुमसे दुनिया-भर की बातों से मतलब ? पर यह सीधी-सी बात इनकी समझ में नहीं आती। वही मसल है, अपने घर को जलता छोड़, दूसरों के घर का दिया बुझाने दौड़ना।

रामबली दौड़कर दरवाज़ा खोल आया। रामप्रसाद ने भीतर घुसते ही कहा—अरे कॉमरेड, अभी पड़े सो ही रहे हो! देखो, कितना दिन चढ़ आया। उठो तो, देखो साथ में किसको लाया हूँ।

'साथ में किसको लाया हूँ।'—यह वाक्यांश लखनलाल और मालकिन दोनों को व्यस्त करने को पर्याप्त था किन्तु व्यस्तता का कारण भिन्न था। लखनलाल तो इसलिए व्यस्त हुए कि क्या जाने यह कम्बख्त सबेरे-सबेरे किसे पकड़ लाया, मालकिन अपनी सहज-स्वाभाविक कुतूहली-वृत्ति के कारण व्यस्त हुईं। उन्होंने पर्दे की ओट से झाँका, रामप्रसाद के पीछे-पीछे एक युवती, सुन्दरी और उससे भी बढ़कर आकर्षक, चली आ रही है। रामप्रसाद को वह पहचानती थीं किन्तु यह लड़की कौन है और क्यों आई है? लखनलाल को उससे क्या काम हो सकता है? मालकिन को यह मालूम था कि रामप्रसाद का विवाह नहीं हुआ है, यह उसकी पत्नी तो हो ही नहीं सकती। बहन भी नहीं लगती। तब फिर यह कौन है और एक पराए मर्द के साथ इस समय यहाँ क्यों आई है?

कई वर्ष पहले लखनलाल ने जापानी सिल्क का एक बूटेदार नाइट गाउन ख़रीदा था। वह अभी तक चल रहा था। पहले एँड़ी तक लहराता था, अब कटवाकर कमर तक कर लिया गया था। उसे ही लपेटते हुए, पाँव में चप्पल डाल, लखनलाल बाहर निकल आए। देखा, रामप्रसाद के साथ तरुलता है। बोले—अरे भाई रामप्रसाद, इतनी सुबह कैसे चल दिए?

रामप्रसाद—कहा नहीं था तुमसे कि यह तुमसे बातें करना चाहती हैं!

तरुलता—मैं बातें करना चाहती हूँ?

रामप्रसाद—अरे, भूल गया। तुम इनसे बातें नहीं करना चाहते थे?

लखनलाल—यह भी ग़लत है।

रामप्रसाद—तब कौन किससे बातें करना चाहता था ? कॉमरेड, मज़ाक मत करो।

लखनलाल ने हँसकर कहा—खैर, हटाओ, मगर तुम इतनी सुबह कैसे इन्हें पकड़ लाए ?

रामप्रसाद—मैं पकड़ लाया ? कल रात इन्होंने साफ़-साफ़ अपने पिताजी से कह दिया है कि आजीवन यह कुमारी रहेंगी। पिता ने उसी समय से बोलना बंद कर दिया है, माँ अलग पड़ी बिलख रही है। यह स्वयं सुबह-सुबह मुझसे यही कहने आई थीं।

तरुलता अब तक चुप थी। अब निःसंकोच बोली—लखनलालजी, आपसे तो मैं उसी दिन कह चुकी थी कि विवाह करके पिंजरा लेकर बैठने की मेरी इच्छा नहीं है। मैंने निश्चय कर लिया है कि मेरा समूचा जीवन देश की, देश के अनगिन नर-नारियों की सेवा में लगेगा। मैंने इधर जमकर मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन किया है। बुद्धि के दोष से पूरा-पूरा तो उसे समझ सकती नहीं किन्तु जितना कुछ समझ सकी हूँ उतना ही मेरी आँखें खोल देने को पर्याप्त है। मैं अब उसी पथ पर चलना चाहती हूँ। अभी तक आप लोगों के बताए कार्य करती थी तो केवल अपनी 'ऐडवेन्चरस स्पिरिट' के कारण, अब मुझे स्वयं खाना-पीना भूलकर इन भेड़ों को सिंह बनाने की चेष्टा में मारी-मारी फिरने में रस मिलता है। मामा ने मुझे जो कुछ समझाया है उससे भी मुझे एक नई ही दिशा दीख पड़ी है।

लखनलाल—कौन मामा ?

तरुलता—वह बहुत लम्बी कथा है। इतना ही समझिए कि वह रिश्ते में मेरे मामा लगते हैं। सदा से ही ऐडवेन्चरस स्पिरिट रही है। कई बरस पहले देश-भक्ति के उफान में स्त्री-पुत्र, पिता माता छोड़कर चल दिए। उसके बाद कुछ वर्षों तक उनका पता ही नहीं चला। घर में रो रोकर सबने आसमान सिर पर उठा लिया। फिर कुछ दिनों

बाद जब सबका रोना-धोना भी समाप्त हो गया, एक दिन पत्रों में समाचार आया कि किसी षड्यंत्र केस में बन्दी बना लिए गए हैं। फाँसी से तो बच गए किन्तु सात वर्षों का सपरिश्रम कारावास भुगतना पड़ा। अभी थोड़े दिनों पहले बाहर आए हैं और कल ही, लगभग मास भर मेरे यहाँ रहकर गए हैं। इस महीने भर के अन्दर उन्होंने बार-बार यही सीख मुझे दी कि यदि कभी देश का उद्धार हुआ, यदि कभी देश ने मुक्ति का मुख देखा तो वह जन-जागृति से ही होगा। जन-जन को साथ लेकर चलनेवाला आन्दोलन ही जन-जन के कल्याण का पथ प्रशस्त करेगा। शोषित-दोहित जनता की चेतनात्मक क्रान्ति से ही हमारा यह अहोरात्रि-व्यापी शोषण-दोहन समाप्त होगा। पहले वह भी मारकाट, रक्तपात और हत्या में ही भारत का मंगल देखते थे, अब उनके विचार बदल गए हैं। अब उनका कार्य है वर्ग-वैषम्य मिटाकर वर्गहीन समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति।

स्पष्ट था कि वह कम्यूनिस्ट-पार्टी के सदस्य होंगे। और यदि सदस्य होंगे तथा कोई महत्वपूर्ण स्थान उनका होगा तो लखनलाल उन्हें जानते भी होंगे। उन्होंने पूछा—उनका नाम ?

तरुलता हँसी, बोली—मैं आपका आशय समझ गई। वह किसी पार्टी को 'बिलौंग' नहीं करते। काम करने के लिये उन्हें किसी विशेष दल या वाद की सदस्यता का सार्टिफ़िकेट स्वीकार नहीं। वह स्वतंत्र रहकर और गुप्त रहकर ही काम करना चाहते हैं। मुझे भी उनकी यह नीति पसन्द है।

लखनलाल—मिस गोस्वामी, आपके मामा कोई भी हों, लगता है कि उन्हें हमारी पार्टी से सहानुभूति है। वह स्वयं किसी दल या वाद में अपने को न बाँधना चाहें, बात दूसरी है पर हमारी पार्टी, जहाँ भी और जो भी ऐसे कर्मठ व्यक्ति हों, सबको अपना समझती है और

उनका आदर करती है। पर आपकी नीति में एक कमी है, क्षमा करें। स्थिति विशेष में स्वतंत्र रहकर और गुप्त रहकर काम करना सही हो सकता है किन्तु भारत की वर्त्तमान विशृंखल दशा में बिना किसी दल की पीठिका या किसी नारे के चल पाना कठिन है। देश में अनगिनत वाद बिखरे हुए हैं, एक की विचारधारा दूसरे की विचारधारा से टकराती है, सभी राजनीतिक मतों में परस्पर संघर्ष होता रहता है और एक को दूसरे पर प्रतिष्ठापित करने की प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती है! मतभेदों की इस तू-तू मैं मैं में मूल बात तो दब जाती है, केवल वाद विवाद ही हाथ लगता है। ऐसी दशा में, मेरी समझ से किसी एक निश्चित दल को साथ लेकर चलना आवश्यक है। आपका क्या ख्याल है?

तरुलता—मैं ऐसा नहीं मानती। ब्योरे की बातें चाहे जो भी हों, जब तक मूल की धारणा निश्चित है तब तक बिना किसी लेबिल के भी काम चल सकता है। वाद-विवादों के घटाटोप में जो लोग इस मूल को भूल जाते हैं वह सत्य के प्रति अनुरागी नहीं हैं। मैं ऐसे लोगों की बात नहीं कर रही हूँ। मेरे मामा ने जो सत्य पाया है वह उनके गम्भीर मानसमंथन और स्वानुभूति का परिणाम है। मेरी ऐसी धारणा है कि इसके लिए उन्हें किसी दल या वाद का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है।

लखनलाल चुप रहे। रामप्रसाद बोला—कहा नहीं था तुमसे, पार्टी को बहुत अच्छा वर्कर मिलेगा।

फिर लखनलाल के कान में कहा—कॉमरेड, सबेरे-सबेरे सूखा ही मत टरकाओ। कहेगी, चाय तक को न पूछा। न कुछ हो तो चाय ही बनवाओ।

लखनलाल इस बात को भूल ही गए थे! बोले—हाँ मिस गोस्वामी, चाय तो आप पिएँगी ही। क्यों?

तरुलता—न पीने की बात तो मैंने कही नहीं।

लखनलाल—यही चाहिए।

उठकर भीतर गए किन्तु मालकिन से चाय के लिए कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी! अपनी सहज बुद्धि से वह इतना समझ गई थीं कि यह लड़की चाहे जो भी हो, जब इतने खुले और निःसंकोच रूप से सबेरे-सबेरे परपुरुष के साथ एक दूसरे पुरुष से मिलने आई है और मुँह खोलकर बातें कर रही है तो उसे चाय पीने में भी कोई सकोच नहीं होगा। चाय की पुकार अभी बाहर से आती होगी। उन्होंने स्वयं ही अधिक बना ली थी, साथ ही हलुवे के लिए घी कड़ाही में डाल चुकी थीं। लखनलाल ने यह देखा तो प्रसन्नता से खिल उठे, कहा—तुम कितनी अच्छी हो!

मालकिन भरी बैठी थीं। बोलीं—हाँ, तुम्हारे ऐरे-ग़ैरे दोस्तों को बना-बनाकर चाय पिलाती रहूँ तो अच्छी तो रहूँगी ही। तुम्हारी बातों से तो मेरा जी जल जाता है।

फटकार खाकर लखनलाल मुन्ने को लेकर बाहर चले आए। तरुलता ने देखते ही उसे गोद में ले लिया, पूछा—यह आपका बच्चा है?

लखनलाल—हाँ।

तरुलता—बड़ा प्यारा है। आपने अपनी श्रीमतीजी से तो मिलाया ही नहीं।

यही लखनलाल का मर्मस्थल था। विवाह के पहले यह उनकी तीव्रतम साध थी कि उनकी पत्नी ऐसी हो जो समाज में मिल जुल सके, जो सही अर्थों में उनकी सहधर्मिणी हो। इसके लिए उन्हें बी० ए० एम० ए० पास स्त्री की चाह नहीं थी। वह केवल एक सहृदय स्त्री चाहते थे, जो उन्हें समझ सके, उनके साथ चल सके। विवाह भी उनका उनकी पसंद से ही हुआ, उसमें भी कहीं किसी भूल की संभावना नहीं रही। किंतु जिस समाज में अधिक से अधिक केवल सूरत देखकर

ही विवाह कर लेने की प्रथा हो, वहाँ कभी उस बाह्य-आवरण के पीछे से वास्तविकता प्रकट न हो पड़ेगी, यह नहीं कहा जा सकता। और वही लखनलाल के साथ हुआ। अब इस अनिवार्य गलग्रह को दूर करने का कोई उपाय उनके पास नहीं था। उनकी मनुष्यता का तकाज़ा था कि वह इस ढोल को सदा बजाते ही रहें। तरुलता का प्रश्न सुनकर उनके मुँह पर स्याही फिर गई। उसने इसे लक्ष्य किया और बात बदल दी। सोचा, इसका कारण वह रामप्रसाद से पूछकर समझ लेगी।

धर्मपत्नी ने रामबली के हाथ चाय भिजवाई, साथ में हलवा था। लखनलाल के जी में जी आया, दुश्चिंताओं को दूर झटकार कर वह चाय ढालने लगे। तरुलता ने तुरंत केटली अपने हाथ में ले ली, बोली—लाइए मैं बनाती हूँ।

रामप्रसाद—कॉमरेड, मिस गोस्वामी चाय अच्छी बनाती हैं।

लखनलाल ने भी समझा, उन गोरी-गोरी कोमल उँगलियों की बनी चाय वास्तव में बहुत मीठी होती होगी। चाय की मिठास से अधिक चाय बनानेवाली की बातों में और उसकी उपस्थिति में मिठास होती होगी। चाय पीते-पीते वह बोले—लेकिन मिस गोस्वामी, तुमने उस दिन कहा था और रामप्रसाद भी कहता है, तुम विवाह करोगी ही नहीं। यह क्या सच है?

तरुलता ने निःसंकोच उत्तर दिया—झूठ होने का तो कोई कारण मैं नहीं देखती।

रामप्रसाद चुप बैठ रहा। लखनलाल ने कहा—लेकिन इनका तो कहना था कि तुम इन्हीं से विवाह करोगी।

तरुलता उठकर रामप्रसाद के पास पहुँची और उसके झुके हुए मुख को ऊपर उठाकर बोली—क्यों जी, कहा था मैंने तुमसे क्या ऐसा कुछ? मुझे तो याद नहीं आता।

फिर रामप्रसाद की कुर्सी के हत्थे पर ही बैठती हुई लखनलाल से बोली—कहा भी हो तो कुछ झूठ नहीं कहा। मैंने यही तो कहा होगा कि यदि विवाह करूँगी तो इन्हीं से करूँगी। किंतु उस 'यदि' का महत्व आप लोग क्यों भूल जाते हैं। वह 'यदि' ही तो आज सत्य रह गया है। मैं अब भी कहती हूँ—यदि कभी विवाह करूँगी तो इन्हीं से करूँगी। क्यों, अब तो तुम्हें संतोष है न ?

लड़कियाँ—वयप्राप्त युवतियाँ—अपने प्रेमियों को, युवक मित्रों को पत्र लिखा करती हैं, कम से कम लिखने की इच्छा रखती हैं, यह कुछ अनहोनी बात नहीं। बल्कि न लिखना ही अस्वाभाविक है। वय प्राप्त कर लेने पर भी जिस युवक-युवती में प्रेम की मधुर गुदगुदी नहीं होती वह या तो यौवन का सम्मान करना नहीं जानते या फिर उनमें कुछ स्वाभाविक दौर्बल्य है। जो पिता-माता या बड़े लोग यह समझते हैं कि उनके अविवाहित पुत्र या पुत्री के मन में किसी भिन्न लिङ्गी के लिए आकर्षण नहीं है क्योंकि वह उन्हें पर्दे में रखते हैं, वह पिता-माता अपने को एक भारी भ्रम में डाले हुए हैं। परस्पर मिलन, संभाषण और पत्र-व्यवहारों की सुविधा के अभाव में भी, वय प्राप्त कर लेने पर युवक-युवती एक दूसरे की ओर आकर्षित होंगे ही, इस आकर्षण को न तो परिवार रोक सकता है, न समाज। हाँ, यह अवश्य होगा कि सुविधाओं के अभाव में ऐसे उपाय निकाले जायँगे जो ऊपर से दीख नहीं सकते। लखनलाल इस असंकोच और निर्भयता पर मर मिटे। यह उन्हें बहुत अच्छा लगा। नारी के इसी मुक्त और निर्भय रूप की वह कल्पना करते थे।

तरुलता—मैं इनसे प्रेम करती हूँ, इसमें विवाह का प्रश्न कहाँ से आ पड़ा ? किसी से प्रेम करने के लिए विवाह की ज़रूरत तो मैं नहीं समझती।

रामप्रसाद का उस कमरे में दम घुटने लगा। वह कहीं बैठकर इस

समूचे व्यापार पर सोचना चाहता था। उसने समझा था, लखनलाल के सामने बातें होने पर तरुलता अपना निश्चय बदल देगी किंतु उसने अपनी दृढ़ता का परिचय देकर उसे अवाक् कर दिया। उसने उठते हुए कहा—चलता हूँ कॉमरेड।

तरुलता ने उसका हाथ पकड़कर कहा—और मुझे कौन पहुँचाएगा?

रामप्रसाद—तुम क्या बच्ची हो?

तरुलता—तो बूढ़ी भी तो नहीं हूँ! दो आदमी रहने से रास्ता अच्छी तरह कटता है। नमस्कार लखनलालजी!

छ

रामचरन ने उस दिन मिल से आकर, माथे पर की गेड़ुरी उतार जब दीवार पर झटकारी तो अधिक नहीं तो कम-से-कम आध सेर धूल उसमें से ज़रूर झरी होगी। चूना ढोते-ढोते उसका मुँह एकदम सफेद हो गया था, जैसे भरपेट पाउडर आज लगाया हो। उसकी यह हुलिया देखकर धरती पर पड़ी-पड़ी भी राजे हँस पड़ी। बोली—तुमने कभी भूत देखा है?

रामचरन घबरा गया—भूत! आज सरे-साम से ही भूत की कौन सी बात आ पड़ी?

राजे—तुम वैसे ही लगते हो। ज़रा शीशे में मुँह तो देखो।

कभी का एक तीन कोने का आयना ताक़ पर रखा हुआ था। उसी की सहायता से राजे का शृंगार होता था। रामचरन ने उसे उतार कर देखते हुए कहा—भूत काला होता है। मैं तो गोरा होगया हूँ।

दोनों हँस पड़े। मिल की दिन भर की क्लान्ति इस अल्प हास-परिहास से शान्त हो गई। रामचरन कुर्ता उतार कर दरी पर मुँह लट-काए बैठ गया। इधर कई दिनों से संध्या समय मिल से लौटने पर उसे चाय देने वाला भी कोई नहीं था। दोपहर को रोटियाँ बाँधकर भी वह नहीं ले जा सकता था। वहीं मिल में ही छुट्टी के समय खोम्चेवालों से लेकर कुछ खा लेता था। अब राजे की एक हल्की-सी कराह सुनकर रामचरन ने पूछा—आज कैसा जी है रानी! मैं तो सुसरी मिल के मारे तेरी कुछ सेवा भी नहीं कर पाता रे।

बात उसकी सही है। जितना और जो कुछ प्रेम रामचरन उसे

दे पाया है, यदि उसका वश चलता तो उससे कहीं अधिक देकर उसे सन्तुष्ट करता किन्तु पेट भर पाने की चिन्ता में प्रेम और प्यार के लिए स्थान नहीं था। आज कई दिनों से राजे का जी अच्छा नहीं है, रह-रह कर मितली-सी आने लगती है, हलका-हलका ज्वर रहता है। मुख पर पीलापन छा रहा है और खाने-पीने से अरुचि सी हो रही है। रामचरन रात को पास ही के कलिया-पराठा बेचने वाली दूकान से तेल का बना गोश्त और दो चार-पराठे खा लेता है, राजे के लिए दूध लेता आता है। पर एक बात उसने लक्ष्य की है। एक ओर जहाँ राजे बीमार और दुबली दिखती है, दूसरी ओर वहीं उसके अंगों से एक अनोखी लुनाई झलकती है। उसके मुख पर एक अपूर्व तेज दिखता है। यह परिवर्तन कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा पिछले साल उसमें हो गया था। बस, एक इसी आशंका से वह काँप-काँप उठता है। उस साल भी तो ऐसा ही हुआ था! जब वह एक शिशु का पिता होने जा रहा था, उसकी इतने दिनों की कल्पना-मूर्त्त होने जा रही थी, राजे अमल-धवल मातृत्व के अनुभव से कुछ और ही हो गई थी, तभी उनके भगवान ने उन्हें इस सुख से वंचित कर दिया। उसके पास अपनी रानी को स्वस्थ्य आहार-विहार करा पाने की क्षमता नहीं थी, सूर्य के प्रकाश और मुक्त-वायु सेवन का साधन नहीं था, औषध का सुभीता न था, ऐसे के घर भगवान निधि क्यों दें? पुत्र का पिता होने के योग्य ही वह नहीं था। उसे याद है, इस दुर्घटना के बाद कुछ दिनों राजे विक्षिप्त सी रही, रामचरन का प्यार और दुलार भी राजे को उस रिक्त-स्थान की पूर्ति का साधन न लगता था जो गर्भस्थ-शिशु की मृत्यु ने कर दिया था। तबसे वह दूसरे गर्भ की कल्पना से ही काँप उठती थी। वह चाहता है कि कम से कम इस समय दिन-रात उसके पास रहे किंतु नौकरी इसके लिए अवसर नहीं देती। राजे का तो काम छूटा ही है, अब वह भी बैठ जाय तो रोटियाँ कैसे चलें। मन मारकर रह जाता है।

राजे यह स्थिति समझती है। कहा उसने—आज तो जी अच्छा है। और सेवा की कौन-सी बात है! काम पर न जाओगे तो खाओगे क्या?

रामचरन—यही तो सोचता हूँ। लेकिन अब देखता हूँ कि काम भी मुझसे सधेगा नहीं। दिन भर बैल की तरह गारा-चूना ढोते-ढोते रीढ़ टूट गई, ज़रा सुस्ताने लगा तो साहब लगा बाप दादा तक बखानने। कान पकड़कर एक थप्पड़ भी मारा।

राजे को सुनते ही ऐसा लगा, रामचरन के गाल पर उँगलियों के निशान अब तक बने हैं। अपना हाथ उसके गाल पर फेरते हुए बोली—हाय राम, तुम्हें उसने मारा? तुमने सह कैसे लिया? उसका हाथ क्यों नहीं तोड़ दिया?

रामचरन ने उसका हाथ मुलायमियत से हटाते हुए कहा—पगली कहीं की! जब तेरी पीठ पर पड़ी बेतों की मार मैंने सह ली तो अपने गाल का थप्पड़ न सह सकूँगा?

राजे की आँखों में दो बूँद आँसू झलके पर उसने आंचल उठाकर पोंछ लिया। अपनी बेबसी पर उसे रोना आ गया। रामचरन के शरीर पर कभी फूल की छड़ी पड़ने की भी उसने कल्पना नहीं की थी, आज उसे पेट के लिए गाली-लात सहने पड़ते हैं। लाचारी ऐसी कि प्रतिकार की, प्रतिवाद की कोई राह नहीं। मार सकने की क्षमता जिसमें है, उसके मार खा लेने में भी एक गौरव है। अवश होकर मार खा लेना मनुष्यता का अपमान है। रामचरन थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से क्यों नहीं दे सका, राजे को रह-रहकर यही टीसने लगा। वह यह नहीं सोच सकी, अपना 'अहं' बनाए रखकर नौकरी करना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। बड़े-बड़े अधिकारियों को भी, ऊँची-ऊँची तनख्वाहोंवाले अफ़सरों को भी अपने आत्म-सम्मान का गला मरोड़ना पड़ता है, तभी वह 'सफल' नौकर कहे जा सकते हैं। फिर ग़रीब मजूरों की हैसियत ही क्या? उसने कहा—तुम यह काम छोड़ दो।

रामचरन—तो और क्या करूँ ?

राजे—करोगे क्या ? रोजी का अकाल थोड़े ही है। जहाँ हाथ-पाँव चलाएँगे वहीं चार पैसे पैदा कर लेंगे। कम से कम यह मार तो न खानी पड़ेगी !

रामचरन—भीख के लिए हाथ फैलाकर जिसके दरवाजे जायँगे वहीं गाली और मार सहनी पड़ेगी। मालिक को तो पचास मजूर मिल जायँगे, मजूरों को मालिक नहीं मिलेगा। यही कारण है कि यह सब होता है। खैर, यह सब जाने दे, तू नहीं समझेगी। तू यह बताकि तेरा जी कैसा है ?

राजे उसके हाथ पर हाथ फेरती हुई बोली—कहती तो हूँ, जी को क्या हुआ है ?

रामचरन बार-बार एक प्रश्न पूछना चाहता है पर संकोच के कारण पूछ नहीं पाता। बात मुँह की मुँह में ही रह जाती है। राजे ने कहा—क्या सोच रहे हो ?

उसे बल मिला, पूछा—सच कहना रानी, अब कितनी देर है ?

राजे—किस काम में देर ?

रामचरन—अरी बता न, तू तो दिल्लगी करती है।

राजे—अरे बाबा, कुछ मालूम तो हो कि क्या बताऊँ ?

रामचरन ने जैसे बम फेंका—तुझे बच्चा कब होगा ?

राजे झट से करवट फिर गई, कहा—हटो, बड़े वैसे हो ! मैं क्या जानूँ ?

रामचरन ने दोनों हाथों से उसे अपनी ओर घुमाते हुए कहा—ऐसे वैसे की बात नहीं है, तू न जानेगी तो और कौन जानेगा ? तू तो घर में पड़ी रहेगी, इंतजाम तो मुझको ही करना पड़ेगा !

राजे ने मुँह बनाकर उत्तर दिया—बड़ा इंतजाम ही करना है न !

रामचरन—बड़ा न सही, छोटा इंतजाम तो करना है ! फ़ातिमा

काकी से कहना होगा। छोटी-मोटी चीजें भी ले आनी होंगी, साइत कुछ दवा दरपन भी लगे। बच्चा पैदा होना है कि कोई मज़ाक़ है ?

राजे एक बार आशंका से काँप गई। माता बनने की कल्पना जितनी उसके लिए सुखद थी, उतनी ही पिछले बार की अनुभूतियाँ दुखद। पहलौठी का प्रसव था, वह मरते-मरते बची थी। उसे मौत अपने सामने खड़ी दीखती थी। इतना कष्ट सहकर, अपना रक्त पिला-पिलाकर, अपने को निश्चिन्ह करके भी जब वह माँ बनने का आयोजन कर रही थी, तभी भगवान ने उससे यह सुख छीन लिया। उसका सपनों का महल धूल में मिल गया। उसे याद है, उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की थी कि अब वह माँ नहीं बनेगी, थोड़े दिनों उसने अपनी वय की पुकार को ज़बरन दबाया भी किंतु समय के साथ साथ उसकी वह प्रतिज्ञा कहाँ चली गई और फिर कैसे यह 'माँ' बनने का आयोजन हो गया, यह वह जान नहीं सकी। रामचरन के इस समय के प्रश्नों से जहाँ उसे एक ओर पुलक-मिश्रित रोमांच हो रहा था वहाँ भावी-अनिष्ट की आशंका से वह भयभीत भी थी। फिर से उसे सौर में जाना होगा, फिर वही कष्ट होंगे, फिर वही फ़ातिमा काकी आवेंगी। किंतु फिर वही परिणाम न हो। उसने धीरे से कहा—हाँ, तुम्हें क्या ! तुम तो इंतजाम करके बैठ रहोगे, जायगी तो मेरे सिर। मरूँगी मैं !

रामचरन ने चट-से उसके मुख पर हाथ रख दिया, बोला—क्या निखिद्ध बोलती हो ? मुन्ना होगा, गोद में खिलाओगी, बकइयाँ चलेगा। मरें तुम्हारे दुस्मन !

राजे ने देखा, रामचरन का मन एक अभूतपूर्व आनंद में डूब रहा है। वह पिता बनेगा। उन दोनों की छोटी-सी अस्त-व्यस्त गृहस्थी-शिशु के आगमन से कुहक उठेगी। उसकी तोतली बोली मन में नव-जीवन का संचार करेगी। नन्हीं-नन्हीं बाहें उठाकर जब वह उसकी ओर या रामचरन की ओर बढ़ेगा, स्वर्ग क्या उस समय कहीं और

होगा ? थोड़ी देर मन ही मन इस मिठास का अनुभव कर उसने कहा—तुम्हीं को पड़ेगा, देख लेना।

रामचरन—हाँ, ऐसा ही तो बड़ा सजीला जवान हूँ न मैं ! मुझको पड़ा तब तो हो चुका ! तुम्हें पड़ेगा, चाहे बद कर देख लो !

राजे—क्या बदते हो ? कौन कारूँ का ख़ज़ाना तुम्हारे पास है ?

रामचरन—मैं बताऊँ, हर हालत में तुझी को पड़ेगा। बदने की क्या बात है ?

राजे—अच्छा, मान लो मुझी को पड़ा तो क्या तुम उसे न मानोगे ?

रामचरन—यह तो मैंने कहा नहीं।

राजे—कहने से क्या होता है। लड़की हमेसा बाप की ओर जाती है, लड़का माँ की ओर।

रामचरन—अच्छा, तुम्हीं उसे खिलाना। बस न !

राजे को याद आया, मुनुआँ मालिक को ही ज़्यादा मानता था। उसकी ही बात से उसकी बात कट गई। मुनुआँ का दर्द एक बार फिर उसके कलेजे में कसक उठा। वह चुप हो रही।

रामचरन—मिल से छुट्टी लेनी पड़ेगी।

राजे—क्यों ?

रामचरन—क्यों क्या ? यहाँ का काम कौन करेगा ? दौड़ना-धूपना पड़ेगा, दवा-दरपन लाना पड़ेगा। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जो कुछ खरच-वरच लगेगा वह कहाँ से आएगा ?

यही एक समस्या ऐसी थी जिस पर सहज ही समझौता नहीं हो सकता था। समझौता की कौन कहे, इस उलझन की सुलझन आसान नहीं थी। न सही धनी-धोरियों के घर की तरह धूम-धाम, कुछ तो करना ही होगा। पहला लड़का धरती पर गिरेगा, कुछ तो दावत-तवाजो होगी ! खुशी से माँ-बाप के पाँव ज़मीन पर न पड़ेंगे। राजे को स्वयं यह समस्या खाए डाल रही थी। प्रसव-काल समीप जान उसने अपने

काम से छुट्टी भी ले ली थी। गर्भ का भार लेकर वह सिर पर बोझ कैसे ढोती ? रामचरन की अकेले की कमाई का ही भरोसा है। वह भी अगर छुट्टी लेकर बैठ गया तब तो हो चुका। मिलवाले घर बैठे मज़दूरी नहीं देंगे।

बोली—हाँ, कुछ न कुछ तो खरच-वरच होगा ही।

संध्या घनी होती आ रही थी। अभी दिया-बत्ती कुछ नहीं हुई। एक आगत सुख की कल्पना में दोनों विभोर थे, दिया-बत्ती की सुध किसे हो ? खरच-वरच की समस्या ऐसी न थी जो अंधकार में बैठकर सुलझा ली जाती। राजे ने ही कहा—अरे तो उठोगे भी, या सब इंतजाम इसी बखत कर डालोगे ? मिल से आकर यह चरखा ले बैठे। खाओगे पियोगे कब ?

रामचरन—हाँ, तेरे लिए दूध भी तो लाना है। ला, पैसे दे।

नित्य का नियम था कि रामचरन पहले माधोसिंह के यहाँ जाकर अपना भोजन कर लेता था तब राजे का दूध लेकर लौटता था। पैसे इतने नहीं थे कि स्वयं खाने का भी नगद दाम देता और दूध का भी। माधोसिंह भला आदमी था, दो-चार दिन तो गम खा गया पर आज भी जब रामचरन हाथ झुलाते पहुँच गया तो उसने ऐसा भाव दिखाया मानों उसे पहचानता ही न हो। काफ़ी देर तक उसे दूकान पर खड़ा रहना पड़ा। वह देख रहा था, लोग खाते थे, पैसे गिनते थे और चले जाते थे। नौ साढ़े नौ का समय था, धीरे-धीरे जब सभी खाकर चले गए और दूकान पर एक-दो आदमी ही रह गए, रामचरन ने कहा—सिंहजी, अब मेरी ओर भी नजर हो जाय। देर हो रही है।

माधोसिंह ऐसे बोला जैसे रामचरन को अभी देखा हो—कौन, रामचरन ? हाँ, हाँ, लो। गोश्त कितने का दूँ ?

रामचरन—एक आने का दे दो।

माधोसिंह ने अपनी दूकान पर खिलाने का नया तरीक़ा निकाला

था, तभी आस-पास की दूकानों से उसकी दूकान ज़्यादा चल निकली थी। उसके यहाँ खाना थालियों में मिलता था। एक ही नाप-तौल की उसने क़लई की पंद्रह बीस थालियाँ अच्छे दिनों में ख़रीद ली थीं। पराठों के दाम तय थे, तीन पैसे का एक। गोश्त को पूछ लिया जाता था। तीन-चार बरस में ही दूकान ऐसी चल निकली कि माधोसिंह के पेट का घेरा तीन इंच बढ गया। गले में एक सोने की सिकड़ी पड़ी रहती थी, बाएँ हाथ की उँगलियों में भारी-भारी अँगूठियाँ। दूकान के सामने टूटी मेज़ें कुर्सियाँ पड़ी रहती थीं जिन पर बैठकर लोग खाते थे। रामचरन के सामने जब खाना आ गया और वह खाने लगा तो माधोसिंह भी अपनी तोंद सहलाते, हाथ में एक टूटी पंखी लिए दूकान से नीचे उतर, उसी के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। धोती खिसकाकर घुटनों के ऊपर कर ली, बोला—मिल से कितना पा जाते हो ?

रामचरन ने बता दिया।

माधोसिंह—तुम्हारी घरवाली भी तो वहाँ काम करती है। उसे भी कुछ मिलता ही होगा।

रामचरन—मिलता तो था पर इधर वह काम पर नहीं जा रही है।

माधोसिंह—क्यों ?

रामचरन झेंप गया, क्या बताए। कहा—यों ही, तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती।

माधोसिंह—तो दवा-अवा क्यों नहीं कराते भाई ! क्या तबीयत ख़राब है ?

रामचरन आज माधोसिंह की इस अकारण कुतूहली-वृत्ति का अर्थ नहीं समझ पा रहा है। कभी उसने इस तरह के घनिष्ट प्रश्न नहीं किए थे। सहज ही उसे क्यों रामचरन से इतना अनुराग हो गया है ? राजे बीमार हो या न हो, उसकी दवा हो या न हो, किसी तीसरे से क्या मतलब ? पर माधोसिंह कच्ची गोटियाँ नहीं खेला था। रामचरन को यदि

वह दो-चार दिनों से उधार खिला रहा है तो निःस्वार्थ-भाव से नहीं, कुछ समझ-बूझकर ही ऐसा कर रहा है। अपनी दूकान पर बैठे-बैठे कितनी ही बार, उसने एक जवान औरत को इठलाते, फुदकते रामचरन के साथ जाते देखा है। लगातार उसके साथ देखकर वह समझ गया था कि यह ज़रूर इसकी बीवी है। उसका घर से विरक्त मन अनायास ही इस ओर बहक गया। उसके बाद जब पहले दिन रामचरन उसके यहाँ खाने गया तो उसने बड़ी आत्मीयता से उसे खिलाया। धीरे-धीरे बातों में यह भी जान लिया कि वह साथ जानेवाली जवान औरत उसकी घरवाली है। तबसे यह क़िस्सा चलता रहा। कभी रामचरन पैसे देता, कभी न देता। माधोसिंह माँगता नहीं। इधर उसने जब देखा तब रामचरन को अकेले ही आते-जाते देखा। उसकी विलासवृत्ति उसे उकसाने लगी। वह जानना चाहता था कि आज-कल उसकी स्त्री क्यों नहीं दीख पड़ती? इधर तीन-चार दिनो से वह इसी पसोपेश में पड़ा हुआ था। उधार खिला रहा था, झुँझला रहा था कि प्रश्न कैसे करे?

रामचरन—दवा-अवा क्या, यों ही ठीक हो जायगा।

माधोसिंह—तो क्या कुछ नहीं कर रहे हो?

रामचरन—नहीं।

माधोसिंह—खूब रहे भाई तुम भी। मुझसे तो ऐसा नहीं हो सकता था। घरवाली बीमार पड़ी हो और उसकी दवा भी न हो! आख़िर मैं पूछता हूँ, हुआ क्या है?

रामचरन ने जैसे गोली मारी—उसको बच्चा होनेवाला है।

विलासी को नारी का माँ वाला रूप रुचता नहीं। माँ बनकर नारी खेल की चीज़ नहीं रह जाती। युवती, विवाहित या अविवाहित, किसी कुशल चितेरे की कूँचियों का, नाना रंगों से रंजित, वह चित्र है जो कलापिपासु लोगों की आँखों को भाता है, उनकी कला की भावना को

तुष्टि देता है। माँ मन्दिर में प्रतिष्ठापित अन्नपूर्णा की वह मूर्ति है जो सौन्दर्य का भाण्डार होते हुए भी, भक्तजन का मस्तक झुका देती है। नारीत्व एक सुन्दर नाटक है, मातृत्व उसका यवनिका-पतन। प्रेयसी और माता—नारी के दो रूप, किन्तु अपनी भावनाओं में आकाश-पाताल का अंतर लिए हुए। माता नारी भी वही मदभरी आँखें रखती है, वही केश, वही कुचद्वय, वही जघन, किंतु वह आँखें कटाक्ष नहीं, वात्सल्य बरसाती हैं, उन्हीं स्तनों पर पड़े हुए अंचल की छाँह में पय की स्रोतस्विनी झरती है, उन्हीं जाँघों पर सिर रखकर लेटने में स्वर्ग-सुख मिलता है।

माधोसिंह की कल्पना को जैसे झटका लगा। इतने दिनों तक रामचरन को उधार खिलाना-पिलाना व्यर्थ ही गया। माँ के अजेय-दुर्ग में बंदी उस नारी को अब वह कैसे अपना सकेगा?

इसी समय रामचरन ने दूकान के नौकर को पुकार कर कहा—एक पराठा और एक आने का गोश्त और देना भाई।

माधोसिंह झल्ला गया—देखो रामचरन, खिलाने में मुझे कोई एतराज़ नहीं है, पर आज तो पैसे देने होंगे! हाँ।

रामचरन का मुँह का कौर मुँह में ही रह गया। हाथ रोककर बोला—पैसे तो आज नहीं है सिंहजी। अभी कुछ दिनों और गम खाना होगा।

माधोसिंह—कब तक गम खाऊँ, कुछ हद भी हो!

रामचरन—तो क्या कभी तुम्हारा पैसा मारा है मैंने? जैसे ही मिला वैसे ही दे दिया है।

माधोसिंह—वह सब सही है पर आदमी रोज़गार पैसे के ही लिए तो करता है! इस तरह गाहक के पास छोड़ने लगूँ तो कितने दिन काम चले। यहाँ तो रोज़ कुआँ खोदना और पानी पीना है। पाई-पाई जमा करूँ तो काम चले। ना बाबा, खाना हो तो पैसे लाओ। उधार खाना नहीं चलेगा।

रामचरन को यह अपमान अखर गया, ऐसे बोला जैसे अभी पैसे निकाल कर रख ही तो देगा—तो कितने हुए तुम्हारे अब तक ?

माधोसिंह ने उठकर दूकान से बही निकाली और रामचरन का हिसाब जोड़ने लगा। थाली एक ओर खिसकाकर उसी जगह रामचरन ने हाथ धो लिए और कुरते में पोंछ लिए। वह सोच रहा था, क्षण भर में ही इनकी सारी घनिष्टता, सज्जनता और उदारता को क्या हो गया ? कहाँ छू मंतर हो गए ? हिसाब जो भी निकले, वह इस समय देगा कहाँ से ? अगर नहीं देता है तो वह सरे-बाज़ार बेइज़्ज़त करेगा। उसकी आबरू उतारेगा। लक्षण से तो ऐसा ही जान पड़ता है। आज तक अपने जीवन में ऐसे संकट का सामना उसे कभी नहीं करना पड़ा था। यह नहीं कि उसने कभी उधार न लिया हो, कौन नहीं लेता, लेकिन हमेशा आगे पीछे उसने सबका हिसाब चुकता कर दिया है। बड़े-बड़े महाजन क़र्ज़ लेते हैं, बड़ी-बड़ी दूकानों से चीज़ें उधार लेते हैं, फिर वह किस खेत की मूली है ! उधर माधो हिसाब देख रहा था, इधर वह मन में यही ब्योंत बैठा रहा था कि कैसे इस समय छुटकारा मिले। धन्नासेठ की तरह कह तो दिया कि हिसाब दिखाओ पर मन में डर रहा था। कोई जुगत ऐसी निकल आती कि माधो इस समय गम खा जाता, फिर कल तो वह कहीं न कहीं से लाकर उसका भर पाई कर ही देगा। उसे लगा, जैसे कौर उसके गले में अँटक गए हों।

माधो ने बही पर से आँख उठाकर कहा—पाँच रुपए नौ आने हुए आज का लेकर।

ग़नीमत थी कि अभी दूसरा कोई ग्राहक नहीं आया था। रामचरन ने ऐसे पूछा जैसे गले तक पानी में डूबा हो—आज गम नहीं खा सकते माधो ?

माधो की उम्र तो कम थी लेकिन दुनिया देखे था। आदमी की दयनीयता से लाभ उठाने की विद्या उसे आती थी। राजे का पेट आज

भारी है, लेकिन कभी फिर अवसर मिलेगा। आँखों ही आँखों में हँसकर बोला—कहता तो हूँ। गम खाने से पेट तो नहीं भरेगा। पेट तो पैसों से ही भरेगा। आज-कल करते-करते इतने दिन तो हो गए, अब कब तक इंतज़ार करूँ भाई!

रामचरन—कभी तुम्हारा पैसा मेरे पास रुका है? अगर मेरी औरत काम पर जाती होती तो इस बार भी न रुकता। तुम तो अपने पैसों को ही लेकर पड़े हो, मेरी मुसीबत भी तो समझो। ले-देकर मेरी कमाई के जो पैसे आते हैं वह सब खाने-पीने में ही स्वाहा हो जाते हैं। अब उसको बच्चा होने वाला है, कुछ तो खर्च होगा ही। कहाँ से ला ऊँ?

सुर्ख़रू बनने का अच्छा अवसर सामने था। दस-बीस रूपए खर्च करके भी यदि मनोवांछा पूरी हो जाय तो क्या हर्ज है? यही तो होगा कि थोड़े दिनों और इंतज़ार करना होगा, लेकिन समय पर की गई यह सहायता और सहृदयता रामचरन और राजे को उसका ग़ुलाम बना देगी। माधो ने दार्शनिक और निरपेक्ष भाव से कहा—आदमी का काम आदमी से ही निकलता है। पर कोई किसी के मन में तो नहीं पैठ सकता। तुम्हीं इतने दिनों से मेरे यहाँ आते-जाते हो, कभी ज़िक्र न किया। कौन तुम्हें बड़ा भारी भोज देना है! अरे, दस-बीस रुपयों की बात थी, क्या मैं न दे देता?

रामचरन ने सोचा—अब मैदान मार लिया है! अब इस समय तो यह रूपए नहीं माँगेगा, फिर देखी जायगी। लेकिन माधो का क्षण-क्षण में बदलनेवाला भाव उसकी समझ में नहीं आ रहा था। अभी अपने रूपए माँग रहे थे। ऐसे बोल रहे थे जैसे बिना लिए यहाँ से उठने न देंगे, अभी पल्ले से और दस-बीस लगाने को तैयार। यह बात क्या है? माधो सोच रहा था—अब कहाँ जाओगे बचा! ऐसा कम्पा मारा है कि उम्र-भर याद रहे। यही तो होगा कि दस-बीस गाँठ से जायँगे, तो जायँ, वह सोने की परी इतने में भी सस्ती है। चलती

कैसे है जैसे हाथी ! देह ऐसी है जैसे दिया की लौ। इसके साथ सड़क पर चलती है तो ऐसा लगता है जैसे कौए के साथ हंसिनी जा रही हो। घबराओ मत बेटा, अगर मेरी लह गई तो देखना, वह चिड़िया उड़कर मेरे पिंजरे में आ रहेगी, जीभ चटकाते रह जाओगे। दोनों दोनों को छल रहे थे, परिस्थितियों के हाथों स्वार्थ का खेल चल रहा था पर ऊपर से दोनों निर्विकार थे।

रामचरन—बात तो सच है माधो, आदमी का काम आदमी से ही निकलता है। जरूरत पड़ती तो तुम्हीं से माँगता पर भाई, अपना कौल तो यह है कि जहाँ तक बने, करज न लेना पड़े। अब यही देखो, आज ही तुमने जिस तरह पैसे माँगे, अगर मैं तुम्हारा उधार न खाए होता तो ऐसे बोलते ? मैं गाहक की तरह आता, पैसे फेंकता और तुम मेरा मुँह जोहते। मेरी दसा उस कुत्ते की तरह है जो हलवाई की दूकान के पास खड़ा रहता है। दुतकार पानेपर भी दुम हिलाता है। उधार लेने और खानेवाला आदमी आदमी नहीं रह जाता।

माधो ने देखा रंग उखड़ रहा है। शिकार कहीं हाथ से निकल न जाय। उसने रद्दा जमाया—लाख रुपए की बात तुमने कही रामचरन। मैं जहाँ से गोश्त ले आता हूँ, एक बार तीन-चार दिन दाम न दे सका तो ऐसी-ऐसी सुनाई कि मुझे अभी तक याद है। और मैं घुघ्घू की तरह सुनता रहा। क्या करता ? पर भाई, मैं तो यह जानता हूँ, उधार बिना दुनियाँ चल ही नहीं सकती। हाँ, आदमी पराए से न माँगे, बस !

रामचरन—भैया, पैसे का सवाल जहाँ आया वहाँ अपने भी पराए हो जाते हैं। मैं तो आजकल यही देखता आया हूँ।

माधो की अनुभवी बुद्धि ने इस समय इस बात को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा। आदमी धेले की हाँडी भी खरीदता है तो उसे ठोंक बजाकर लेता है। यहाँ तो वह एक साथ दस-बीस रुपयों का खरीदार था। उसी कुशल व्यापारी की भाँति उसने पूछा—पहलौठी का है क्या ?

रामचरन—हाँ, यही समझो।

माधो—समझो क्या ?

रामचरन—पारसाल एक बच्चा गिर गया था।

माधो ने सहानुभूति दिखलाई - राम-राम ! भगवान् बच्चा दें तो उसे जिंदा रखें। नहीं तो बिना बच्चे का ही रहना अच्छा है। तुम एक अच्छी-सी दाई रख लो।

रामचरन को हँसी आ गई - तुम तो दिल्लगी करते हो माधो ! पाँच रुपए नौ आने के लिये तो मुँह चुरा रहा था, दाई कहाँ से रखूँ ? भाई, दाई-फाई हमाँ-सुमाँ के लिए नहीं है, यह बड़े आदमी को सोहता है। हमारे बच्चे तो ऐसे ही पैदा होते हैं।

माधो—और ऐसे ही मर जाते है ! हमारे बच्चे क्या बच्चे नहीं हैं ? तुम घबराओ मत। मेरे घर के बगल में एक दाई रहती है। है तो वह सरकारी नौकर पर कभी-कभी बाहर चली जाती है। मैं उससे कह दूँगा। दो-तीन दिन पहले से चली जायगी।

रामचरन—क्या लेगी ?

माधो—अब इससे तुमसे क्या बहस ? हाथी-घोड़ा थोड़े ही लेगी।

रामचरन को ऐसा लगा—अपनी लम्बी यात्रा की एक मंज़िल उसने पूरी कर ली है। राजे का पिछले साल का कष्ट उसे अभी तक याद था। हाते भर में फ़ातिमा काकी ही ऐसी थीं जो ऐसे अवसरों पर बुलाई जाती थीं। उन्हें नर्स कह लो, दाई कह लो, डॉक्टर कह लो, जो कुछ थीं, वही थीं। जिसको देखो, उनकी मिन्नत कर रहा है। बच्चा होने के दो-तीन दिन पहले से आ जाती थीं और छठी-बरही तक रहती थीं। हाते के न जाने कितने लड़के और युवक उनके हाथों के सहारे धरती पर गिरे थे और सभी से उन्हें समान स्नेह था। एक लम्बे समय से वह हाते में रहती आई थीं। उसी हाते की एक कोठरी में उन्होंने जीवन मरण के न जाने कितने नाटक देखे थे। वहीं उनका

पति मरा, लड़का मरा, बहू मरी, अब लड़के के लड़के के साथ रहती हैं। बाल सफ़ेद हो गए हैं, मुख पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, गाल बैठ गए हैं, शरीर शिथिल हो गया है, पर हाथों में वही फुर्ती है, वही कुशलता है। बच्चे पैदा कराना उनके लिए दाल-भात का कौर है। आज तक, लोगों की जानकारी में, उनके काम में कभी तल-बिचल नहीं हुआ। उन्हीं फ़ातिमा काकी के बदले इस बार सरकारी दाई आएगी, हातेवाले देखकर हैरान हो जायँगे कि रामचरन कहाँ से इतना खरच कर रहा है। उसने कहा—अब यह तो तुम्हारी ज़्यादती है माधो! दाई आकर क्या कर लेगी? हाते में एक फ़ातिमा काकी रहती हैं, वही हमेसा सब कुछ करती हैं। इस बार भी वही देख लेंगी।

माधो—अच्छा, अब रहने दो। फ़ातिमा काकी हैं तो अच्छी बात है पर सरकार कोई बेवकूफ़ थोड़े ही है जो उस दाई को रूपए देती है। कुछ तो उसमें होगा ही। चलो, तुम्हारा घर देख आऊँ ताकि दाई को बतला सकूँ।

दूकान बंद कराकर माधो साथ में चला। दूध लेने लगा तो पैसे माधो ने निकालकर दे दिए, रामचरन हाँ-ना करता रह गया। आज रामचरन को ज़रूरत से ज़्यादा देर हो गई थी। राजे इंतज़ार करते-करते सो गई थी। रामचरन ने पहले कोठरी में झाँक कर देखा, कपड़े-वपड़े तो ठीक-ठिकाने हैं, फिर माधो से पुकार कर कहा—इसी में रहता हूँ माधो।

आवाज़ सुनकर राजे उठ बैठी, इतनी रात गए यह किसको लाए हैं। माधो ने एक नज़र उस गर्भ-भारा-क्रांत राजे को दीपक के मंद प्रकाश में देख लिया और बोला—अच्छा, तो अब चलता हूँ रामचरन, कल फिर भेंट होगी।

राजे ने पूछा—यह कौन था?

रामचरन—माधो, जिसके यहाँ रोज खाता हूँ।

राजे—आज लौटने में बड़ी देर कर दी। इसे क्यों लाए थे?

रामचरन ने प्रशंसा के भाव से कहा—बड़ा भला आदमी है बिचारा। आज दूकान पर पहले तो मैं समझा, अब इज्जत गई। अपने पैसे माँगने लगा। फिर जब सुना कि तेरे पेट में बच्चा है और तू काम पर नहीं जाती, इसीलिए हाथ तंग है तो चुप रह गया। इतना ही नहीं, दूध भी उसने आज अपने पैसों से ही ले दिए हैं।

रामचरन ने समझा था, राजे प्रसन्न हो जायगी पर इसके विपरीत उसने राजे के मुख पर वितृष्णा का भाव देखा। उसने अविचलित भाव से कहा—इस बखत यहाँ क्यों आया था?

रामचरन—कहता है, इस बार तेरे बच्चा होने में सरकारी दाई भेजेगा। उसका जो कुछ खरच-बरच होगा, सब खुद देगा।

राजे—और फ़ातिमा काकी?

रामचरन—फ़ातिमा काकी तो हर बार आती हैं। एक बार न सही।

राजे को यह कुछ अच्छा नहीं लगा। फ़ातिमा काकी से हाते भर को स्नेह था। उनके बच्चा पैदा कराने में कभी किसी को कोई कष्ट भी नहीं हुआ था। न उनके नखरे उठाने पड़ते थे, न हाथ धोने के लिए साबुन-तौलिया की बला थी, न दस बार कपड़े बदलने की, न कुछ लेना-देना ही पड़ता था। अपना कर्त्तव्य समझकर और हर घर को अपना ही घर समझकर आती थीं, प्रेम से हँसते-हँसते बच्चा जनाती थीं और ज़च्चा-बच्चा की सम्हाल करती थीं। सौर से निकल कर जब ज़च्चा-बच्चा बाहर उठने-बैठने लगते थे, तभी उनका कर्त्तव्य समाप्त होता था। आज यह घुड़चढ़ी दाई आकर कुछ ख़ास क्या कर लेगी, यह राजे नहीं समझ सकी। उसके हाथ में क्या फ़ातिमा काकी से ज्यादा जस है या उसका हाथ लगने से बच्चा सोने-चाँदी का पैदा होगा? उसने देखा था, जब मालकिन के पेट

में दर्द हो रहा था और किसी तरह अच्छा होने नहीं आता था, एक काली-काली-सी दाई आती थी। कमरा बन्द करके, गरम पानी लेकर न जाने क्या करती थी। मालिक उसको 'गोयल' या 'मोयल', ऐसा ही कुछ पुकारते थे। राम-राम, उसका नख़रा मत पूछो। आओ तब किराया, जाओ तब किराया, साबुन दो, तौलिया दो, आज यह चाहिए, कल वह चाहिए। पचासों तरह की तो दवाई आई और उस पर भी तुर्रा यह कि दो रूपए रोज़ चाहिए। मालकिन नाक भौं सिकोड़ती ही रहती थीं पर मालिक न जाने क्या फ़ायदा देखकर उसे बुलाते थे। यहाँ भी यही सब बखेड़ा फैलेगा। आखिर इनको यह सूझा क्या? अच्छी भली तो फ़ातिमा काकी आती थीं, अब यह सरकारी दाई आएगी!

और माधो को क्यों उसके लिए इतना दरद है? इन्होंने जाकर अपना दुखड़ा रोया होगा। इनकी तो यह आदत ही है! पूछो भला, जिस-तिस से अपनी दसा कहने से क्या लाभ? हँसेंगे तो, रोयेंगे तो, हमीं तो! कि कोई दूसरा आकर बाँट लेगा? माधो कुछ भी हो तो तिसरैत है। न अपनी बिरादरी, न हित-नात, वह दाई-फाई की फिकर क्यों कर रहा है? उसने कहा—मैं फ़ातिमा काकी को ही बुलाऊँगी। नहीं चाहिए सरकारी दाई!

रामचरन—ले अब एक भला आदमी कह रहा है तो उसकी बात कैसे न मानूँ?

राजे—मेरी समझ में नहीं आता, तुम क्यों ऐरे गैरों से अपना रोना ले बैठते हो? माधो हो चाहे कोई और, घर-गिरस्ती के मामलों में तिसरैत के पड़ने की क्या ज़रूरत है?

रामचरन—वह तिसरैत नहीं है। देखो तो, हमारी तंगी देखकर उसने अपने पैसे माँगना छोड़ दिया। कोई दूसरा ऐसा कहीं कर सकता था?

राजे ने बिगड़कर कहा—कौन तुम्हारा हित नात है ?

रामचरन—हित-नात भी ऐसा नहीं कर सकते। हैं तो तेरे इतने हित-नात, बुलाने से क्या चले आएँगे ? आने की कौन कहे, कभी बात भी पूछते हैं ?

बहुत दिनों बाद राजे को यह बात याद आई। सच ही तो, कहने को तो उसके बाप हैं, भाई हैं, पर कभी बात भी पूछते हैं ! वही, जब से उसने काम करना शुरू किया तभी से रूठे बैठे हैं। चाहिए तो यह था कि इस अवसर पर वही लोग आते और जो कुछ करना होता, करते। वह उदास हो गई, एक घनीभूत व्यथा उसके मुख पर छा गई। बोली—हाँ, यही तो रोना है। वही लोग 'अपने' होते तो आज काहे को दूसरों से मदद लेनी पड़ती ?

देर बहुत हो गई थी। राजे ने बिना मन का दूध पिया और दरी पर पड़ रही। यद्यपि बड़ी आजिज़ी से उसने माधो की सहायता स्वीकार की फिर भी उसे यह कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। किसी भी दशा में एक बिल्कुल तीसरे आदमी की सहायता लेना उसे स्वीकार नहीं था। फिर, आज तक तो उसने यह नहीं देखा कि बिना किसी मतलब के कोई इतना खरच करने को तयार हो जाय। लेकिन माधो का मतलब ही क्या हो सकता है ? अभी उससे जान-पहचान ही कितने दिनों की है ? और, जान-पहचान है भी तो उधार खाने की !

राजे—लेकिन वह क्यों यह सब खरच-वरच कर रहा है ? उसका क्या मतलब है ?

रामचरन अब भी नहीं समझना चाह रहा था—बिना मतलब के कोई किसी की मदद नहीं करता क्या ?

राजे ने दृढ़ता से कहा—मैंने तो नहीं देखा।

रामचरन—तेरा देखना ही सब देखना नहीं है भाई। आदमी

का धरम भी तो कुछ होता है ! तू ही किसी को तकलीफ़ में देखे तो मदद नहीं करेगी ?

राजे—करूँगी क्यों नहीं ? दुनिया में इतने लोग गरीब हैं, अन्न बिना भूखों मरते हैं, तन ढँकने को एक तार नहीं पाते, रहने को झोपड़ी नहीं, कौन किसकी मदद करने जाता है ? अब वह धरम-बुद्धि संसार में रही नहीं। सबको अपनी हाय-हाय पड़ी है। आदमी पहले अपना पेट भर ले, दूसरे की मदद बाद में करेगा। माधो ही किसकी-किसकी मदद करने गया है ? तुम्हीं कह रहे हो, अपने उधार के लिए तुम्हारी इज्जत लेने को तयार था, छन भर में ही तुम्हारे लिए और अपनी टेंट से खरच करने को तयार हो गया। आखिर क्यों ? और भी कभी धेली निकाल कर दी है या आज ही धन्ना सेठ बन गया है ?

बात उसकी एकदम झूठ भी नहीं है। निःस्वार्थ भाव से आज कौन किसकी सहायता करता है ? बस चले तो दूसरे की जेब से भी पैसे निकाल लें। औरत होकर राजे जिस कठोर सत्य तक अनायास पहुँच गई, मर्द होकर रामचरन वहाँ तक नहीं पहुँच पाता। या ग़रीबी और विपन्नता और विवशता ने उसकी आँखों पर परदा डाल रखा है। अपनी असमर्थता और राजे को सुखी देखने के विचार ने उसे बेहया बनने को बाध्य किया है। वह जानता है, माधो से उसका कभी ऐसा संबंध नहीं रहा—केवल पैसे न रहने की दशा में उसकी दूकान से दो-चार दस दिन उसने उधार भोजन किया है। और समय होता, उसकी गाँठ में पैसे होते तो माधो के मुँह पर मार, कह देता—नहीं चाहिए तेरी मदद। अपने रुपए अपने पास रखे रह। लेकिन इस समय वह ऐसा कुछ नहीं कर सकता—कह सकता। आज तो उसे दूसरों की दया पर निर्भर रहना है।

दूसरे दिन मिल जाने पर उसका मन उड़ा-उड़ा फिर रहा था।

राजे की बात पर उसने रात भर विचार किया था। राजे तो सो गई थी किन्तु उसके मन में यही बात रात भर घूमती रही थी। माधो हो या कोई और, उन दोनों के बीच मे किसी तीसरे के आने की क्या ज़रूरत है? लेकिन फ़ातिमा काकी के स्थान पर लक़दक़ कपड़े पहने उस सरकारी दाई के आने की कल्पना उसे बड़ी सुखद लग रही थी। सारा हाता अचम्भे से देखेगा—अच्छा, रामचरन के घर दाई आई है! राजे की रात की बात से वह कुछ-कुछ यह भी समझ गया था, दिन पूरे हो गए हैं। उसे जो कुछ इन्तज़ाम करना हो, जल्दी ही कर ले। वह इतना मगन था कि उस दिन साहब बग़ल से निकल गए पर उसने सलाम तक नहीं किया। मेट से सीधे मुँह बोला तक नहीं। मिट्टी के खाँचे भर कर चला तो तीन बार गिरा दिया। उसके पाँव जैसे धरती पर पड़ते ही नहीं थे। आगन्तुक शिशु जैसे दोनों बाहें उठाकर उसकी ओर बढ़ रहा हो।

सात

चौदह जून सन् पैंतालिस भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय बनकर रहेगा। रात को पौने आठ बजे वायसराय लार्ड वैवेल ने रेडियो से भारत के सामने एक नया प्रस्ताव रखा। पिछले कई दिनों से भारत की जनता उत्सुकता-पूर्वक इस प्रस्ताव की प्रतीक्षा कर रही थी और जिसको जहाँ अवसर मिला, रेडियो के पास कान लगाए बैठा था।

लखनलाल, तरुलता, रामप्रसाद आदि बाबू मनबोधनलाल के घर पर जमे थे। एक दिन पहले से ही उनसे कह दिया गया था कि कल शाम को आपके यहाँ चौकड़ी जमा होगी। बाबू मनबोधनलाल शराबी-कबाबी आदमी ठहरे। बाप काफ़ी पैसे छोड़कर मरे थे, कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं थी। नाटे से, ठिंगने से आदमी थे, काले, सिर पर एक भी बाल साबुत नहीं था। बीवी कर्कशा थी, हरदम लड़ने को तैयार। हवा से युद्ध ठानती थी। अक्सर दोस्त उनकी गंजी खोपड़ी देख मज़ाक करते—बीवी की जूतियों ने यह जंगल साफ़ किया है। बाबू मनबोधनलाल कभी बुरा नहीं मानते, मज़ाकपसंद आदमी हैं। जीवन में उनका सिद्धांत 'खाओ, पियो और मौज करो' ही रहा। जिस तरह पास में पैसा है, उसी तरह खर्च करने का दिल भी है। एक न एक पार्टी, दावत लगी ही रहती। कविता से रस है, स्वयं भी कभी-कभी कुछ लिख लेते हैं। दोस्तों से प्रशंसा भी मिल जाती है। नाटकों के शौक़ीन, सुनते हैं, अभिनय के लिए कई बार पुरस्कार पा चुके हैं। जिस तरह बंगाल की भुखमरी के लिए जी खोलकर चंदा दिया और स्वयं दौड़ धूपकर चंदा उगाहते रहे, उसी तरह गवर्नर के वार फ़ंड में

भी रुपए दिए। हरदिलअजीज़ आदमी थे। मज़े का कार्यक्रम था—सुरा-सुंदरी की उपासना, बैठक में बैठे-बैठे पुस्तकें पढ़ते रहना और पत्नी की बातों से ऊब उठने पर छड़ी उठाकर घूमने चल देना! आस-पास में बस एक उन्हीं के यहाँ रेडियो था, जिसकी खोल पर ज़रूरत से ज़्यादा धूल जमी थी।

रेडियो पर का खोल उतारकर झटकारते हुए आप बोले—यार, जी चाहता है कि इसे अब बेच डालूँ। आखिर बेकार ही तो है!

तरुलता—क्यों-क्यों, बेकार क्यों है? क्या आप कभी सुनते नहीं?

मनबोधनलाल—सुने कौन, और क्या? गाना लगाओ तो ऐसा जान पड़ेगा, धोबी अपने गधे को पीट रहा हो। कोई-कोई साहब तो ऐसी आवाज़ निकालेंगे जैसे गले में गोली अँटक गई हो और नाम सुनिए तो उस्ताद झंडाअली, मास्टर उजबकसिंह, मिस रोशनारा! कोई कम्बख्त उस्ताद या मास्टर से नीचे नहीं है। खबरें लगाओ तो दोनों ओर से वह-वह दून की हाकेंगे कि क्या कहने! अगर ब्रिटिश गवर्नमेंट कहेगी कि हमने सौ हवाई-जहाज़ मार गिराए तो जर्मनी ने भला दो सौ से कम क्या मारे होंगे? यह रेडियोवाले सुननेवालों को तो गधा समझते हैं, जो चाहे कहे जाओ। घर की खेती है, और क्या?

तरुलता—अगर आपकी बात पर लोग चलें तो न तो कोई रेडियो सुने, न अखबार ही देखे। दोनों ओर से दून की हाँकी जाती है, यह सही है लेकिन समझदार आदमी उसमें से अपने काम की बात निकाल ही लेता है।

मनबोधनलाल—पर कुछ काम की बात हो भी, या यों ही समझ लड़ाई जाय? रेडियो हो या अखबार, आपके सामने वही तो आता है जो आपके मालिक चाहते हैं? और वह हमेशा अपने ही लाभ की बात आपके सामने आने देंगे। मैं कहता हूँ……

रामप्रसाद को यह प्रसंग रुच नहीं रहा था। बहुत दिनों बाद

रेडियो के सामने बैठा था, कुछ सुनने को उसके कान खुजला रहे थे। बोला—मारो गोली मालिक और नौकर को। रेडियो तो खोलो!

मनबोधनलाल—कहाँ खोलूँ?

रामप्रसाद—लखनऊ लगाओ। कुछ ठुमरी टप्पा होगा ही।

अभी वायसराय के ब्रॉडकास्ट में देर थी। लखनऊ से कोई जान अलाप रही थीं – तड़पत हूँ दिन रैन, नाहीं पड़त चैन। पल पल गिनत आज, भूली सकल लाज, उन बिन सखी मोहिं नागन भई रैन। नाहीं पड़त चैन……

मनबोधनलाल उबल पड़े—अब यही लीजिए। कहने को तो आप वियोग में इतना तड़प रही हैं कि चैन नहीं, रातें कम्बख्त नागन हो गई हैं और गला कह रहा है जैसे लड़के के ब्याह में सोहर गा रही हों। अरे भाई, जिसे वियोग होता है, विरह में जो तड़पता है, जिसे रातें करवटें बदलते बीतती हैं वह कहीं गला फाड़-फाड़कर चीखता है, अलाप लेता है, गिटकिरी भरता है? ताल-सम देखकर चलता है?

लखनलाल—तो आखिर क्या करे? रोए?

मनबोधनलाल—वह इससे कहीं अच्छा है। कम-से-कम उसमें हृदय की भावना तो व्यक्त होगी। शब्दों से भावना व्यक्त होती है लेकिन उन शब्दों के पीछे कुछ असलियत भी तो हो। चाहे कोई जान हों, बाई हों, देवी हों, मेरा दावा है कि इन्होंने कभी विरह का दुःख अनुभव नहीं किया। उस गाने की पंक्तियों की तह में उतरने की क्षमता भी इनमें नहीं है। फिर वह कहाँ से वह अनुभूति लाएँ? संगीत में करुणा व्यक्त करने के लिए जिन राग-रागिनियों की शरण ली गई है, केवल उन्हीं को तोड़-मरोड़कर गले से निकाल देने से ही तो सुननेवालों की आँखों में आँसू नहीं आ जायँगे! उस रागिनी

में बल पैदा करने के लिए हृदय का सहयोग चाहिए। शब्द एक उचित सीमा तक ही काम दे सकते हैं।

मनबोधनलाल ने एक महाराजिन रख ली थी। माँ-बेटी थीं। माँ को तो कम, बेटी को मनबोधनलाल की चिंता अधिक रहती थी। पत्नी के युद्ध ठानने का एक प्रबल कारण यह भी था। किंतु यह हम ज़रूर कहेंगे, उपयोगिता की दृष्टि से उसका महत्व पत्नी से भी अधिक था। पत्नी को जहाँ अपने ही कामों से अवकाश नहीं था, एक घंटे का काम तीन घंटों में करतीं, उसके बाद जो समय बचता उसमें दुनिया-भर की आलोचना-प्रत्यालोचना तथा मनबोधनलाल को सुधारने का अहोरात्रि प्रयत्न करती रहतीं, वहाँ महाराजिन की वह बेटी मनबोधन-लाल के लिए समय पर चाय बना देती, उनके कपड़े ठीक कर देती, उनके कमरे की चीज़ें जतन से रखती। वह उनकी अवैतनिक गृह-रक्षिका थी। यह पद भी किसी ने उसे दिया नहीं, स्वय ही उसने ले लिया। इस समय भी धर्मपत्नी पड़ोस के मकान की एक महरी से बहुत महत्त्वपूर्ण बात-चीत कर रही थीं, महाराजिन आलू छील रही थी महाराजिन की बेटी ने जो देखा, बैठक में कई आदमी आए हैं और साथ में एक लड़की भी है तो झट् चाय बनाकर बैठक में भेजी, साथ में गरम पकौड़ियाँ थीं। उपस्थित सभी लोगों के मुखों पर प्रसन्नता झलक उठी। मनबोधनलाल के नेत्रों में प्रशंसा हँस रही थी।

रामप्रसाद से न रहते बना—अच्छा, आपकी मिसेज़ को हम लोगों का बहुत ख्याल है! आते देर नहीं और नाश्ता हाज़िर!

क्षण भर में मनबोधनलाल का मुख विवर्ण हो गया—यही तो रोना है भाईजान, यही तो रोना है। वह इस समय नाश्ता बनाने से ज़्यादा ज़रूरी काम कर रही हैं। यह तो महाराजिन की बेटी ने बनाया होगा।

तरुलता स्त्री थी। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि बाबू मन-

बोधनलाल के अस्त व्यस्त जीवन का क्या रहस्य है। उसे उन पर करुणा उपजी।

उधर रेडियो पर दूसरा गाना चल रहा था, कोई सस्ता फ़िल्मी गीत—जिसका आशय था, प्रेमी अपनी प्रेमिका से कह रहा है कि तुम मुझसे गंगा के उस पार मिलना। प्रेमिका भी उन्हीं शब्दों में उसका उत्तर दे रही है। रामप्रसाद से न रहा गया, पकौड़ी मुँह में भरे बोला—हाँ भैया, पेट भरा है। चाहे गंगा के पार मिलो चाहे जमुना के पार मिलो। क़िस्मत के सिकन्दर हो तुम लोग। यहाँ मिलने की कौन कहे, कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता।

कटाक्ष किधर है, तरुलता समझ गई। केवल एक गहरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर रह गई। कोई मुँहतोड़ उत्तर देना चाहती थी पर इतने लोगों की उपस्थिति ने उसका मुँह बन्द रखा। मन-बोधनलाल बोले—यार, पकौड़ियाँ अच्छी बनी हैं, और मँगवाता हूँ। थोड़ी पकौड़ियाँ और दे जाना भाई! हाँ साहब, आप क्या कह रहे थे, कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता! तो न करे, यहाँ किसको मुँह लगाने की ग़र्ज़ है। जिसे सात बार गर्ज़ हो वह आए और बातें करे। अपने राम यह इल्लत पालते ही नहीं! चार दिन की तो ज़िन्दगी है, हाय-हाय करके काटी तो क्या काटी। अपने राम तो ज़िन्दगी को भी एक खेल समझते हैं और उसे हँस-खेल करके ही काट देने के आदी हैं। प्रेम-व्रेम का झमेला नहीं पालते। किसी से हँस बोल लेना बुरा नहीं है पर उस हँसने-बोलने को विनोद की सीमा के बाहर नहीं जाने देना चाहिए।

तरुलता—जिसके पास पैसा है वह ज़िन्दगी को खेल समझ सकता है और उसे हँस खेलकर काट दे सकता है। जिसे दोनों वक़्त अपने परिवार के भाड़ जैसे पेट में दो मुट्ठी अन्न डाल पाने का साधन जुटाना पड़ता हो, तन ढँकने को वस्त्र और माथे पर साया का प्रबंध

करना हो, बीमार और दुर्बल बच्चे के मुँह में दो बूँद दूध डालने का आयोजन करना हो, रोगिणी पत्नी के लिए औषध और पथ्य जुटाना हो वह कहाँ से ज़िन्दगी को खेल समझे और कैसे उसे हँस खेलकर काट दे मनबोधनलाल जी !

ऐसा लगा, जैसे मनबोधनलाल इस तरह के तर्क बहुत सुन चुके हैं या इस प्रश्न पर स्वयं ही पर्याप्त सोच-विचार कर चुके हैं। बोले—ऐसे लोगों को तो हँसने की और ज़रूरत है देवी जी, नहीं तो विपत्तियों के घटाटोप में उनका अस्तित्व ही न रह जाय। विपत्तियाँ अगर हँसने से नहीं दूर हो सकतीं तो रोने से भी नहीं दूर हो सकतीं। हँसने से तो उनका कष्ट हलका भी हो जा सकता है, रोकर वह क्या पाएँगे ? मैं अपने बारे में जानता हूँ। मुझे जब बहुत कष्ट होता है तो या तो वह—वह जो आप उस ताक़ पर देख रही हैं—मेरा मन बहला देती है, या फिर मैं ख़ूब ज़ोर से हँसने लगता हूँ। यह भी न हुआ तो छड़ी लेकर बाहर चल देता हूँ। उस समय जो भी मिले, मैं उसे पकड़कर दुनिया भर की ऊलजलूल बातें करूँगा। बच्चा हो, बूढ़ा हो, जवान हो, औरत-मर्द कोई भी हो, मैं अपना दिल बहला लूँगा। हाँ—क्षमा करें देवी जी—ऐसे समय यदि कोई युवती पास में हो जो दिल के घावों पर अपनी बातों से मरहम रख सके तो संसार भर का दुःख भूला जा सकता है।

ताक़ पर 'डायर मेकिन' की 'रम' की एक बोतल रखी थी। तरुलता समझ गई, उधर ही इशारा करके बोली—इसे आप दिल बहलाने का साधन समझते हैं ? यह मानती हूँ कि थोड़ी देर के लिए इससे ग़म ग़लत किया जा सकता है पर इससे कष्टों का निवारण तो नहीं हो जाता। और, जो आपने युवतियों के साथ दिल बहलाने की बात कही वह भी सही हो सकती है पर समाज इसके लिए इजाज़त कहाँ देता है ?

मनबोधनलाल—तो समाज के नाम को रोइए ! यह भी नहीं, वह भी नहीं, तो चक्की में पिसते रहिए और छाती कूट-कूटकर रोए जाइए। समाज से यह वैषम्य दूर कर देना एक दो दिन का काम नहीं है। न आप कर सकती हैं न मैं कर सकता हूँ। यह कोढ तो जाते-जाते ही जायगा। यह कौन कहता है कि यह व्यवस्था बनी रहे ? इसे जड़मूल से उखाड़ फेंकने की चेष्टा करिए, जी-जान से लड़िए, पर मेरा कहना यही है कि हँसते रहिए। मातमी सूरत लेकर कोई आन्दोलन भी नहीं चलाया जा सकता। आप अपने मज़दूरों को ही लीजिए। इनके जीवन में क्या है ? दिन भर कोल्हू के बैल की तरह काम करो, शाम को घर आकर बीवी बच्चों पर मिल का गुस्सा उतारो। इन्हें हँसना सिखाइए, ज़िन्दगी को ज़िन्दगी समझना सिखाइए। इनके चेहरों पर हँसी होगी तो बहुत काम आसान हो जायगा। आप लोग इनके सामने बड़ी-बड़ी बातें रखते हैं, इनके अधिकारों की दुहाई देते हैं, इनका राजनीतिक महत्व समझाते हैं। मैं पूछता हूँ, यह कौन नहीं जानता कि वह दुनियाँ में जीने के लिए आया है ? जब मरना होगा तब मरेंगे, कुत्तों की मौत मरना कौन चाहता है ? कौन मजूर नहीं जानता कि उसे कष्ट हैं ? कौन अपने अभावों को वरदान समझता है ? कौन दुखी और अभावों का मारा अपने जीवन को अभिशाप नहीं समझता ? आप लोग इनसे अपने दुःख और अभाव और कष्ट और परतंत्रता दूर करने का निश्चय करने को कहते हैं। कहिए, ज़रूर कहिए, डंके की चोट पर कहिए पर पहले इनको हँसना सिखाइए, जब तक इनके कष्ट एकदम दूर नहीं हो जाते तब तक उन कष्टों को हलका करना सिखाइए। इनके दुखों की लम्बी जाड़ों की रात में विनोद की, मनोरंजन की, हँसी की चाँदनी बिखेरिए।

पकौड़ियाँ और आ गईं और बात चीत बंद हो गई। सब भूखों

की तरह उन पर टूट पड़े। उधर रेडियो ने एनाउन्स किया—दिस इज़ डेल्ही कॉलिंग। यू विल नाउ लिसेन टू ए स्पीच·····

वायसराय का ब्रॉडकास्ट था। सब लोगों ने कुर्सियाँ खिसका कर रेडियो के नज़दीक कर लीं। बहुत साफ़ अंग्रेज़ी में वैवेल साहब बोल रहे थे। हिज़ मैजेस्टीज़ गवर्नमेण्ट की ओर से अधिकार पाकर वह भारत के नेताओं के सामने एक सुझाव रख रहे थे। वास्तव में चाहे प्रस्ताव में कुछ रहा हो या न रहा हो, जिस गम्भीरता और विश्वास के साथ वह बोल रहे थे वह कानों को सुखद लग रहा था। अपनी जान में उन्होंने और उनके ज़रिए ब्रिटिश सरकार ने भारत को बहुत कुछ दिया। शब्दों का चुनाव इतना बढ़िया था कि क्या कहने! रामप्रसाद और तरुलता में तो ब्रॉडकास्ट सुनते समय भी छेड़छाड़ चलती जा रही थी, केवल लखनलाल और मनबोधनलाल गम्भीरतापूर्वक सुन रहे थे। तरुलता ने रामप्रसाद को बहुत उत्सुकता-पूर्वक सुनते देखकर कहा—अहा हा, जैसे सब समझ ही रहे हैं! अरे हज़रत, वायसराय साहब अंग्रेज़ी में बोल रहे हैं, अंग्रेज़ी में।

रामप्रसाद—जी। आपसे कुछ अधिक ही अंग्रेज़ी मैंने पढ़ी है।

तरुलता—अच्छा बताओ तो, एक्सटर्नल एफ़ेयर्स के क्या मानी?

रामप्रसाद—तुम्हारा सिर। और क्या?

तरुलता दिल की ओछी नहीं थी। वह उन युवतियों में नहीं थी जो युवकों को दूर से अपना रूप दिखा-दिखाकर तरसाने में सुख मानती हैं। इतनी नीच प्रवृत्ति उसकी नहीं थी। सम्पूर्ण समर्पण का मूल्य वह जानती थी। बात केवल इतनी ही थी कि विवाह के नाम से ही उसे कुछ चिढ़ थी। आरम्भ से ही उसकी प्रकृति स्वतंत्र और बंधन-हीन रही। अपनी अल्पवय में ही उसने विवाहित दम्पतियों के आत्महनन की कथाएँ एकाधि बार सुनी थीं। पास-पड़ोस की स्त्रियों

की कुदशा अपनी आँखों देखी थी। जब बड़ी हुई और कुछ पढ़ा गुना तब यह सत्य पत्थर की लकीर की तरह और उसके मन में बद्धमूल हो गया कि आर्थिक स्वातंत्र्य के बिना नारी सदैव दासी रहेगी, नर स्वामी। वह स्त्रियों के उपार्जन को कुछ बहुत अच्छा नहीं समझती किन्तु उपार्जन का साधन उनके पास होना आवश्यक समझती है। तब यह तो न होगा कि पुरुष जिन पाँवों से उसे ठुकराए, उन्हीं तलुओं को वह सुहलाती रहे। पुरुष लात मार कर उसे घर से बाहर निकाल दे और वह द्वार पर बैठी-बैठी बिसूरा करे या राह-बाट में भीख माँगे या वेश्या बन जाय! आज हमारे यहाँ अधिकतर यही हो रहा है। पुरुष मन-ही-मन जानता है कि मेरा आश्रय छोड़ इसे कहीं खड़ी होने को भी स्थान नहीं मिलेगा, मारो तो, गाली दो तो, अपमान करो तो, क्षण-क्षण छाती छेदते रहो तो, झख मारेगी, सब कुछ सहेगी पर कहीं जाने का नाम नहीं लेगी। स्त्री भी यह मन ही-मन जानती है कि मेरे कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, जो कहो, सब यही हैं। रूखा-सूखा मुट्ठी भर अन्न देंगे तो यही देंगे, रहने को जगह यही देंगे, तन ढँकने को वस्त्र पाऊँगी तो इन्हीं से पाऊँगी। समाज ने अन्यथा कोई भावना उनमें पनपने ही नहीं दी। एक स्त्री का एक पुरुष के साथ बँधे रहने का आरंभ चाहे जिन आर्थिक, सामाजिक कारणों से हुआ हो, आज वह कारण तो गौण बनकर रह गए हैं, मुख्य रह गया है केवल यह भयंकर सर्वहंता परिणाम, जिसने स्त्री को स्त्री नहीं रहने दिया। उसके सारे गुण, जो उसे देवी के सिंहासन पर बिठा सकते थे, केवल कहानी रह गए। वह गिरी और अपने साथ समस्त-समाज को चोट पहुँचाई। वह डूबी और समूची पुरुष जाति को अपने साथ ले डूबी। वह धूल में मिल गई और देश को भी निष्प्राण, जड़ और क्लीव बना दिया। अपने बनाए जाल में पुरुष स्वयं फँस गया। नारी अपेक्षाकृत दुर्बल है। उसकी

दुर्बलता से पुरुष ने जहाँ खेल खेला, वहाँ स्वयं भी लाभ के खाते में कुछ नहीं जमा कर पाया। जहाँ नारी को साथ लेकर चला वहाँ स्वयं तो ऊँचा उठा ही, समाज और देश और राष्ट्र को भी उँचा उठाया। उसके मन में यह विचार दृढ़ हो ही रहे थे, सौभाग्य से उन्हीं दिनों अपने मामा का उसे आदर्श मिला। जब साथ रहे तब भी यही सब समझाते रहे। उम्र में बड़े थे पर उम्र की, अनुभव की धौंस जमाने की उनकी आदत नहीं थी। उन्होंने सेवा और त्याग और कर्म का जो उदाहरण उसके सामने रखा वह उसे भा गया। उसे लगा कि जो कुछ वह कह रहे हैं, उसका हृदय तो बहुत पहले से ही वही माँग रहा है। वह सेवा करेगी, दीनों की, दलितों की, शोषितों की सेवा। विवाह करके अपने को एक पिंजरे में डाल लेना, समय पर दाना पानी पाकर संतुष्ट हो बैठ रहना उसके लिए नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वह अपने हृदय को कुचल डाले। वह मरुभूमि नहीं बन जाना चाहती थी जिसमें लू के बगूले उठते रहते हैं। वह नन्दन-कानन बनना चाहती थी जहाँ फूलों की सौरभ उड़ती रहती है। जिस तरह केवल रोटी ही खाकर आदमी नहीं जी सकता, पानी की ज़रूरत उसे पड़ेगी ही, उसी तरह केवल पानी पीकर ही कोई नहीं रह सकता, कुछ ठोस चीज़ पेट में जानी ही चाहिए। हृदय और मस्तिष्क, दोनों के सम-संतुलन से ही आदमी आदमी बना रह सकता है। नहीं तो पशु में और उसमें विशेष अंतर नहीं रह जायगा। और प्रेम के, मैत्री के, विनोद के यह आदान-प्रदान जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। तभी विवाह की कल्पना मन में न पालकर भी वह जीवन को विरस नहीं बनाए रखना चाहती थी।

वायसराय साहब बोल चुके। रामप्रसाद ने लखनलाल से पूछा—क्या समझे कॉमरेड ?

तरुलता बोल उठी—मैं तो पहले ही कहती थी कि तुम्हारी समझ में

नहीं आएगा ! फिर, इसमें शर्म काहे की ? मौलाना आज़ाद भी तो अपने साथ दुभाषिया रखते हैं और वह राष्ट्रपति हैं। लखनलालजी, अब क्या होगा ?

रामप्रसाद किट-किटाकर रह गया। लखनलाल ने कहा—मेरी समझ में तो काँग्रेस और लीग, दोनों को ही यह मौक़ा हाथ से न जाने देना चाहिए। इस बार के ऑफ़र में गवर्नमेंट सिंसियर मालूम होती है। फिर हम गवर्नमेंट को छोड़ भी दें, देश की हालत जैसी है उसमें इस समय पॉपुलर गवर्नमेंट को शासन की बागडोर सम्हालनी चाहिए। मैं तो यहाँ तक मानने को तयार हूँ कि क्रिप्स ऑफ़र से अधिक इस बार के ऑफ़र में पावर्स दी गई हैं। केवल डिफ़ेन्स को छोड़कर सब ही तो दे रहे हैं। फ़िनैन्स, एक्सटर्नल एफ़ेयर्स, यह सब पहले कहाँ अपने हाथ में थे ?

मनबोधनलाल—लेकिन जनाब, यह भी तो सोचिए कि यूरोपीय-युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भी ब्रिटिश सरकार इस तरह के समझौते की बात क्यों कर रही है ?

लखनलाल—यह तो स्पष्ट है। यूरोपीय-युद्ध समाप्त हो जाने पर भी जापान का ख़तरा अभी पूरी तरह मिटा नहीं है। सरकार जानती है कि ना भारतीय-जनमत का सहारा लिए वह जापानी-शक्ति को अच्छी तरह परास्त नहीं कर सकती। अब तक ज़बर्दस्ती के बल पर भारत से चाहे जो सहायता उन्होंने ले ली हो, वास्तविक सहायता उन्हें नहीं मिली। यदि केन्द्र में तथा प्रान्तों में अपनी सरकार हो जो जनता का दुःख-दर्द समझ सके, जिसे जनता से सच्ची सहानुभूति हो, साथ ही जिसके मन्त्रियों को जनता अपना समझे, तो बहुत कुछ काम हो सकता है।

मनबोधनलाल—मुझे तो लगता है कि यह सब चुनाव की चालें हैं। चुनाव सफलता-पूर्वक हो जाने पर ब्रिटिश सरकार भारत को ठेंग दिखला देगी।

लखनलाल—हो सकता है कि यह सच हो, किन्तु काँग्रेस और लीग मिलकर एक संयुक्त मोर्चा खड़ा कर सकते हैं। संयुक्त जनमत की उपेक्षा कोई भी सरकार अधिक दिनों तक नहीं कर सकती।

तरुलता—क्या जिन्ना साहब इस बार मान जायँगे? कांग्रेस के साथ मिलकर क्या वह नई सरकार बनाएँगे?

लखनलाल—बनाना चाहिए। यदि इस बार भी लीग ने अवसर से लाभ नहीं उठाया और कोई समझौता नहीं हुआ तो भारत का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

थोड़ी देर और गपशप होती रही, चाय का एक दौर और चला और सब लोग विदा हुए। लखनलाल का घर तो पास ही था, वह चले गए। रह गए रामप्रसाद और तरुलता। सड़क पर चलते-चलते तरुलता ने कई जगह गड्ढों से बचने के लिए रामप्रसाद का हाथ पकड़ लिया, कई स्थलों पर उसके कन्धे का सहारा लिया। जब-जब ऐसा हुआ तब-तब रामप्रसाद सिहर उठा, एकान्त सड़क पर युवती के करों का यह स्पर्श उसे रोमांच करने लगा। तरुलता के लिए जैसे यह सब कुछ नया नहीं, वह इसकी अभ्यस्त है। एक जगह सड़क के क़रीब बीचोबीच किसी पड़ोसवाले ने कोई मनौती मानी थी, एक मिट्टी का घड़ा और दिया और कुछ फूल, बताशे आदि रखे थे। घड़ा लुढ़क गया था, पानी बहकर एक गढ़े में भर गया था। उससे बचने के लिए तरुलता ने एक हाथ रामप्रसाद के कंधे पर रखा और दूसरे हाथ से दाएँ पैर की साड़ी ऊपर उठाई। पिंडलियों तक उघरा उसका गोरा पाँव उस दीपक के प्रकाश में रामप्रसाद को बहुत भला लगा। सड़क पार करके एक गली के अंधकार में घुसते हुए तरुलता ने कहा—आज तुम मुझसे नाराज़ हो गए न?

रामप्रसाद स्पर्श का मधुर सुख अनुभव कर रहा था, बोला—क्यों?

तरुलता—मनबोधनलाल के यहाँ जो मज़ाक मैंने किया!

रामप्रसाद—मज़ाक का भी कोई बुरा मानता है ?

तरुलता—मानता तो नहीं पर तुम्हारा मन मेरी ओर से खट्टा जो हो गया है !

रामप्रसाद—कौन कहता है ?

तरुलता—कहेगा कौन ? मैं स्त्री हूँ और स्त्री यह बात बिना कहे भी समझ लेती है।

रामप्रसाद ने सत्य को अधिक दबाना सही नहीं समझा। कहा—तरु, यह सही है कि तुमने मुझे दुखी किया है। मेरा सब सुख मिट्टी में मिला दिया है। मेरा सपनों का महल ढहा दिया है। इस सत्य को तुम मुझसे अधिक जानती हो। तुम्हीं सोचो, तुमने जो निश्चय किया है वह कहाँ तक युक्ति-संगत है ! मैं तो समझता हूँ, तुम भावुकता से काम ले रही हो।

तरुलता— भावुकता तो तब होती जब प्रेम करते ही दौड़कर तुम्हारे गले बँध गई होती। इतनी अनजान मैं नहीं हूँ। मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ और करती रहूँगी। जीवन के आरंभ में ही जिस पथ पर चल खड़ी हुई हूँ उससे पीछे नहीं हटूँगी। पर विवाह न करने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली है।

रामप्रसाद—पर इस प्रेम से शरीर की भूख तो नहीं मिटेगी। माफ़ करना, मैं बहुत स्पष्ट कह रहा हूँ।

तरुलता एक क्षण रुकी, माथा नीचे झुका लिया, फिर कहा—हाँ, नहीं मिटेगी। जानती हूँ। जब लाचार ही हो जाऊँगी तब तुमसे कहूँगी।

तरुलता का घर आ गया। रात काफ़ी हो गई थी, दस, सवा दस बज रहे थे। रामप्रसाद ने कहा—अच्छा तरु, चलता हूँ।

तरुलता चलता हूँ ! इसके क्या मानी ? घर नहीं जाओगे क्या ?

रामप्रसाद—अभी ज़रा घूमूँगा। नमस्कार।

तरुलता ने एक विचित्र दृष्टि से रामप्रसाद को देखा और प्रति-नमस्कार के लिए हाथ बढ़ा दिए। रामप्रसाद घूम पड़ा। तरुलता ने अभी एक पाँव सीढ़ी पर रखा ही था कि उसने रामप्रसाद का स्वर सुना—तरु! तरुलता!

रामप्रसाद समीप आ गया। तरुलता ने कहा—क्या है?

रामप्रसाद—तरु, मैं·····मैं एक बात कहना चाहता हूँ।

उसकी भर्राई हुई आवाज़ और मुख पर के भाव देखकर तरुलता ने धीमे स्वर में, पास आकर कहा—क्या है? कहो न!

रामप्रसाद बग़लें झाँकने लगा, बहुत देर तक अनिमेष उसकी ओर देखते रहने के बाद जैसे उसने तोप से गोला छोड़ा हो—तरु, आज तक जीवन में मुझे किसी स्त्री के चुम्बन का अनुभव नहीं हुआ। जब छोटा था तब के चुम्बनों की अब याद नहीं रही। तरु, मैं एक बार युवती के चुम्बन का अनुभव करना चाहता हूँ।

तरुलता सहमी, झिझकी, रुकी, डरी और रामप्रसाद के सीने में मुँह छिपा लिया। नारी को नर के निकट आश्रय मिल गया था। धीरे-धीरे रामप्रसाद ने उसका मुँह ऊपर उठाया और लाज से फूले अब तक के अछूते अधर चूम लिए। कहा—यह दिन हमारी मैत्री के इतिहास में अमर रहेगा तरु!

तरुलता द्वार खोलकर भीतर चली गई।

लखनलाल घर पहुँचकर, खा-पीकर, सोने की तयारी कर रहे थे। उनकी आदत थी, सोने के पहले कुछ पढ़ते अवश्य थे। आज भी नियम के अनुसार उन्होंने स्टालिन पुरस्कार-प्राप्त उपन्यास 'रोड टु कैल्वरी' उठाया और अपने कमरे में बैठकर पढ़ने लगे। अभी मुश्किल से दो पृष्ठ पढ़ पाए होंगे कि सहसा ही बिजली बुझ गई। घर भर में गुप्प अँधेरा! उन्होंने समझा, मेनस्विच फ़्यूज़ हो गया होगा।

टटोल कर उठे, टॉर्च जलाई और स्विचबोर्ड के पास पहुँचे। पर कुछ पता न चला। टॉर्च के ही सहारे बाहर निकले तो देखा, सड़क की रोशनी भी ग़ायब है। पड़ोस के लोग भी भाग-दौड़ मचा रहे हैं। ख़राबी कहाँ है, पता नहीं चलता। भीतर आकर बोले—सुनती हो, दो-चार दिए जला लो। बिजली चली गई है, क्या जाने कब आए।

धर्मपत्नी आँगन में पलँग पर मुन्ने को लिए हुए सो रही थीं। लखनलाल की आवाज़ सुनकर उठीं, बोलीं—हैं, यह गैलरी की बत्ती किसने बुझा दी? रामबली की कारस्तानी होगी और क्या!

लखनलाल—वही तो कह रहा हूँ। रामबली की कारस्तानी नहीं है, सभी जगह बिजली नहीं है। कहीं पावर हाउस में ख़राबी होगी। दो-चार कड़ुवे तेल के दिए जला लो।

अनमने मन से गृह-स्वामिनी उठीं और रामबली की सहायता से दो-तीन दिए जलाने में घर भर में जैसे तूफ़ान आ गया। जलाती जाती थीं और बड़बड़ाती जाती थीं—आधी रात को उठकर दिया जलाओ, क्या अंधेर है! बिजली को भी इसी वक़्त जाना था! तू क्या करता है रे, तेल क्यों नहीं डालता? और बत्ती क्या मैं बनाऊँगी?

उनका यह क्रोध लखनलाल पर था, रामबली पर था, पावर हाउस पर था या हवा से वह लड़ रही थीं, यह तो वही जानें! जैसे-तैसे करके दिए जले और वह फिर पलँग पर पड़ रहीं। लखनलाल न तो सो सकते थे, न पढ़ ही सकते थे। आँखें बिजली के प्रकाश की अभ्यस्त हो गई थीं, दिए जलते रहने पर भी उन्हें सर्वत्र अँधेरा ही लग रहा था। रामबली से एक गिलास पानी माँगकर उन्होंने पिया और चारपाई पर पड़ रहे। सहसा ही द्वार पर किसी ने थप-थपाया। रामबली ने द्वार खोलकर देखा, एक आदमी अस्तव्यस्त दशा में, गन्दे कपड़े पहने, जो अंधकार में एकाकार हो गया था,

खड़ा है। द्वार खुलते ही उसने पूछा—बाबू हैं ?

रामबली—हाँ, हैं तो पर सो रहे हैं।

आगन्तुक—जगा दो भैया उनको, कह दो रामचरन आया है।

रामबली को इस समय मालिक को तक़लीफ़ देना अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—क्या सबेरे काम नहीं हो सकता ?

रामचरन—सबेरे तक तो रामनाम सत्त हो जायगा। तुम जाकर कह भर दो, मालिक खुद ही चले आएँगे।

लखनलाल जाग ही रहे थे और उन्होंने रामचरन का नाम भी सुन लिया था। रामबली को कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी। बाहर आकर बोले—क्या है रामचरन ?

रामचरन ने गिड़गिड़ाकर कहा—मालिक, एक बार चलकर देख लो। साइत बचेगी नहीं।

लखनलाल समझे नहीं—कौन नहीं बचेगी ? क्या कह रहे हो तुम ? इतने बदहवास-से क्यों हो रहे हो ?

रामचरन ने रो दिया—मालिक, बड़ा दरद है उसे। मछली की तरह तड़प रही है। ऐसे बच्चे से तो बिना बच्चा ही भला। बार बार आपका नाम लेकर पुकारती है। कहती है, मालिक को बुलाओ ! चलकर देख लो मालिक ! बड़ी दया होगी।

लखनलाल सब समझ गए। पूछा—कौन-कौन है वहाँ ?

रामचरन—फ़ातिमा काकी हैं, एक सर्कारी दाई है, माधो है, और बहुत सी औरतें हैं।

लखनलाल न तो फ़ातिमा काकी को जानते थे, न उस सर्कारी दाई को जानते थे और न माधो को। उन्होंने सोचा, तरु को साथ ले लेना ठीक होगा। बोले—तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।

रामचरन ने समझा, इतनी रात को यह जाना नहीं चाहते। निराश होकर कहा—तो मैं जाऊँ मालिक !

लखनलाल—हाँ भाई। कहा तो कि अभी आता हूँ।

पत्नी की नींद न कहीं खुल जाय, और इस समय घर से निकलना कठिन हो जाय, इस डर से लखनलाल धीरे-धीरे घर में गए, अपने बक्स में से कुछ रुपए निकाले और रामबली से द्वार बंद करने को कह-कर बाहर निकल गए। हाथ में उनके टॉर्च थी।

थोड़ी देर बाद तरुलता के साथ रास्ते में जाते हुए लखनलाल ने कहा—मैं इस समय तुम्हें घर पर पुकारने में डर रहा था।

तरुलता—क्यों ?

लखनलाल—क्यों क्या ? इतनी रात को कोई तुम्हें घर से उठाकर कहीं ले जाय तो माँ बाप को बुरा नहीं लगेगा ?

तरुलता ने हँसकर कहा—पहले लगता था, पर अब वह इसके आदी हो गए हैं।

रामचरन के घर पर भारी भीड़ जमा थी। पास-पड़ोस के औरत मर्द जमा थे, वह माधो की भेजी सरकारी दाई थी, माधो स्वयं खबर पाकर आ गया था, फ़ातिमा काकी बिना बुलाए लाठी टेकती आ गई थीं, रामचरन था। जितने मुँह उतनी बातें हो रही थीं। भीतर राजे बुरी तरह चीख रही थी, उसका क्रन्दन बाहर तक सुन पड़ता था। गम्भीर रात्रि के अंधकार और सन्नाटे में उसके क्रन्दन का स्वर और तीव्र लग रहा था। बाहर दियों के टिमटिम प्रकाश में पुरुष इस तरह बैठे हुए थे जैसे मिलकर कोई षड़यंत्र कर रहे हों। फ़ातिमा काकी और दाई राजे को सम्हालने की व्यर्थ चेष्टा कर रही थीं किंतु उसका दर्द प्रतिपल बढ़ता ही जा रहा था। लगता था, बच्चा पेट फाड़कर बाहर निकल आएगा, जैसे वह भीतर कुलाँचे मार रहा हो। इतनी भारी यंत्रणा में भी राजे रह-रहकर यही पुकारती थी—मालिक को कोई बुलाओ। हाय, अब मैं बचूँगी नहीं। रामचरन का कलेजा मुँह को आ रहा था, चौखट पर एक ओर बैठा वह आँख मूँदे मना रहा था—महादेव सामी, मेरी रानी को कुछ

न हो। सब राजी खुशी बीत जाय, तुम्हें पाँच पैसे का परसाद चढ़ाऊँगा।

लखनलाल को देखते ही रामचरन प्रसन्नता से खिल उठा। जैसे उनकी उपस्थिति में कोई जादू हो। मन ही मन अपने को इसलिए धिक्कारा कि क्यों उनके ऊपर उसने अविश्वास किया। साथ में जब एक औरत देखी तो हैरत में पड़ गया। सोचा, हो न हो, यह मालकिन होंगी। लखनलाल की धर्मपत्नी को उसने देखा नहीं था। एकदम उतावली से उठकर बोला—चलो मालिक, देख लो।

उपस्थित औरत मर्द सभी संभ्रम से एक ओर हट गए। टॉर्च के सहारे लखनलाल और तरुलता भीतर गए। सरकारी दाई से तरुलता ने पूछा—अब क्या हाल है ?

दाई—हाल तो आप देख ही रही हैं। अभी एकाध घंटे लगेंगे।

उस दाई ने जहाँ-जहाँ बच्चा जनाया था वहाँ सब हिसाब-किताब अँग्रेज़ी था। यहाँ का निराला ठाठ देखकर वह घबरा रही थी। कहीं अर्थ का अनर्थ न हो जाय ! रुपए का लालच न होता तो वह आती भी नहीं। सोच रही थी, मेरे रुपए तो सीधे हो ही जायँगे। उसके निश्चिंत हो जाने का एक कारण और भी था। वह देख रही थी, फ़ातिमा काक को स्थिति का जितना ज्ञान है, उसे तो वह भी नहीं है। साथ ही, उपस्थित सभी लोग जो कुछ सलाह करते हैं, पूछते हैं, फ़ातिमा काक से ही। उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता।

सहसा ही राजे विक्षिप्त सी चीख उठी—मालिक को बुलाओ। मैं मर जाऊँगी। हाय !

लखनलाल ने देखा, उसके बाल बिखर गए हैं, वस्त्र अस्त-व्यस्त। आँखें उलट रही हैं। बोले—क्या है राजे, मैं तो खड़ा हूँ। घबराती क्यों है ?

उस भीषण अवस्था में भी राजे ने वह कंठस्वर पहचान लिया। व्यर्थ ही वस्त्र ठीक करने का प्रयास करते हुए बोली—मालिक, मालिक,

तुम आ गए ? अच्छा किया। मैं जा रही हूँ। मुन्ने को नहीं देख सकी ! मालिक, वह ऐरन मैंने ही चुराई थी। यह उसी का डंड मिला है। हाय राम, अब नहीं बचूँगी।

लखनलाल की आँखों में उसकी व्यथा देखकर आँसू आ गए। अविवाहिता तरुलता भी काँप उठी। लखनलाल ने कहा—पागल, क्या बकती है ? तुझे हुआ क्या है ?

तरुलता ने आँख के इशारे से लखनलाल को बाहर जाने को कहा। भीतर अब केवल राजे, तरुलता, फ़ातिमा काकी और वह दाई रह गए। राजे की यंत्रणा प्रतिपल बढ़ती जा रही थी। काकी ने उसकी चारपाई के बाहर कम्बल का एक परदा डाल दिया, जल्दी से कोने में एक गढ़ा खोद दिया और अपने घर से बोरसी मँगाकर उसमें आग सुलगा दी। अँधेरा घर धुएँ से और भी भर गया। कहीं हवा आने-जाने का नाम नहीं। पानी गरम किया गया और न जाने क्या-क्या किया गया। तरुलता और दाई, दोनों फ़ातिमा काकी की चपल कार्य-क्षमता देखकर अचंभे में आ गईं। रात को लगभग दो बजे तरुलता ने बाहर आकर कहा—रामचरन, लड़का हुआ है।

रामचरन को जैसे आँखें मिल गईं। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, बकर-बकर देखता रह गया। लखनलाल ने उसे हिलाकर कहा—रामचरन, तेरे लड़का हुआ है। कुछ खिलाएगा पिलाएगा नहीं ?

उपस्थित सब लोग खुशी से नाच उठे। माधो भी मूँछों में मुसकिराया। रामचरन ने झट् से ज़मीन पर माथा धर दिया। उसके अन्तःकरण से भगवान के लिए स्तुति निकल रही थी।

बड़ी रात, जब सब लोग धीरे धीरे चले गए, रामचरन चुपके से बाहर से उठकर, धीरे-धीरे जाकर अपनी रानी की बग़ल में पड़े हुए, लाल-लाल मुन्ने को भर आँख देख आया।

आठ

पावर न होने से मिल दूसरे दिन बन्द रही और रामचरन को अनायास ही अपनी रानी के आसपास मँड़राते रहने की सुविधा मिल गई। उसका दिल जैसे बाँसों उछल रहा था। कब वह दिन होगा जब वह अपने लाल को गोद में खिलाएगा! उसके सरल निष्कपट हृदय में भाँति-भाँति की कल्पनाएँ उठतीं, मुन्ना बड़ा होगा, घुटनों चलेगा, तुतले बोल बोलेगा। फिर, बस्ता लेकर स्कूल पढ़ने जायगा। एक दिन आएगा जब वह पालकी पर चढ़कर ब्याह करने जायगा, एक दूल्हन लाएगा। तब तक उसके बाल पक गए होंगे, राजे भी जुलजुल हो जायगी। बहू घर का सारा इन्तज़ाम करेगी, फिर उसके भी बालबच्चे होंगे। वह दादा कहाएगा.....उसका ऐसा जी करता कि अभी दौड़कर मुन्ने को गोद में उठा ले और उसका मुँह अपने गर्म-गर्म चुम्बनों से भर दे, पर काकी के डर के मारे वह मन मारे रह जाता। वह सरकारी दाई चली गई थी, उसका काम समाप्त हो गया था। और रह कर भी क्या करती? काकी ने जिस कौशल और तत्परता से सारा काम-काज सम्हाल लिया था उसमें उसके लिए कहाँ स्थान था? और, काकी का शासन ऐसे मामलों में ऐसा-वैसा न होता था, बड़ा कठोर होता था। ज़च्चा-बच्चा को कहीं हवा न लग जाय, कहीं गर्मी-सर्दी का असर न हो, कहीं ज़ुकाम-खाँसी का फेर न हो। दिन भर में तेरह बार अछ्वाइन और हरीरा दिया जाता, अपनी बहू से सोठौरा बनवा रही थीं, बच्चे को फाहा की तरह फेरती रहतीं। राजे चुपचाप पड़ी उनकी कार्यदक्षता और स्नेहसनी तत्परता निहारा करती।

कल की उसकी रात एक कल्प के समान ही व्यतीत हुई थी। जैसे उसका नवजीवन हुआ था। उन प्राणघाती घड़ियों की मर्मान्तक पीड़ा का प्रतिफल उसकी बग़ल में ही पड़ा हुआ था, आँखें बन्द थीं। दुबला-दुबला-सा, लाल-लाल, सजीव मांस पिण्ड। आज राजे माँ है। आज वह उस आसन पर बैठी है, जिसकी कल्पना एक युग से वह पालती आ रही थी। जब-जब उसकी दृष्टि शिशु पर पड़ती, कल की रात एक देखे हुए स्वप्न की भाँति उसके मानस-पट पर तैर जाती। एक बात और उसे खाए डाल रही थी। कल दोपहर से ही उसने रामचरन को नहीं देखा है। देखा भी होगा तो उसे याद नहीं। वह होश में ही कहाँ थी? क्या उन्होंने बच्चे को देखा होगा? कहाँ से देख पाए होंगे, वह तो भाग-दौड़ में लगे थे! लेकिन साइत रात को किसी वख्त आकर देख गए हों! संकोच के कारण वह काकी से पूछ भी तो नहीं सकती! यही जानती होंगी, क्योंकि यही तो रात भर यहाँ थीं! उसका अन्तःकरण चाह रहा था, उन्होंने बच्चे को देख लिया हो। अगर वह माँ थी तो वह पिता था। उसे संसार में ले आने का श्रेय दोनों को ही है। उसे क्या एक मुन्ने का मुँह देखने की साध कम थी! पिछली बार जब लड़का गिर गया था, वह कई दिनों तक कितना रोया था। आज उसका कलेजा जुड़ा गया होगा! भगवान, जब यह दिन दिखाया है तो ऐसा करो कि सब राजी-खुसी रहे!

मोह और वात्सल्य के अतिरेक से राजे काँप उठी, उसने एक हाथ नव-जात शिशु पर धीरे से रख दिया, जैसे वही हाथ भावी विपत्तियों और अनिष्टों और बाधाओं से मंगल-कवच बनकर उसकी सदा रक्षा करता रहेगा। उस वरदायी हाथ की छाँह में जैसे सारे संसार के सुखों का भाण्डार हो। काकी ने जो राजे को इस समय जागती पाया और बच्चे पर मृदुलता से हाथ रखे देखा तो बोलीं—बहू, अब कैसा जी है?

राजे—अब तो अच्छा है काकी। रात तो मुझे ऐसा लगा जैसे अब तुम लोगों को देखना मेरे भाग में बदा नहीं है।

काकी ने मीठे ताड़ना के स्वर में कहा—क्या कहती है बहू ? ऐसा भी कहीं होता है ?

राजे—अच्छा मान लो काकी, सच ही मैं मर जाती तो क्या होता ?

काकी—होता मेरा सिर, और क्या होता ! बड़ी आईं मरनेवाली !

राजे ने इस ताड़ना का मान रखते हुए भी धीमे स्वरों में कहा—मैं तो सोचती हूँ काकी, कि तब वह क्या करते ? बेचारे अनाथ हो जाते।

काकी—कौन अनाथ हो जाता ? रमचरना ? सुनो जरा इसकी बात, जैसे यही तो उसका खरच-बरच चला देती है। अरे, तू न रहती तो वह दूसरी मेहरिया ले आता। बैठा थोड़े ही रहता !

फिर गम्भीर होकर कहा—पर तू ऐसी बात सोचती ही क्यों है भाई। मरें तेरे दुसमन ! तू तो मजे में कुँअर कन्हैया खिला।

हाँ, वह रात भर में ही यशोदा बन गई है। उसकी गोद में भी भुवन मोहन कन्हैया है। सन्तान को गोद में लेकर माँ सारे संसार को चुनौती दे सकती है। आज राजे का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। लेकिन जिस सन्तान के कारण वह एकबारगी ही उल्लास की चरम सीमा पर पहुँच गई है उसी सन्तान ने उसे भारी आशंका में भी डाल दिया। अगर वह न होगी तो रामचरन दूसरा ब्याह कर लेगा। वह मरद है और फिर, अभी उसकी उमर ही क्या है ! वह बिना मेहरिया के थोड़े ही रह सकता है ! बिन घरनी घर भूत का डेरा, गिरस्ती सूनी कैसे रखेगा ? यह तो औरतों के ही लिए है कि एक मरद गुजर जाने पर उसके नाम को ज़िन्दगी भर बैठी रोया करें ! तो, जब वह न रहेगी तो मुन्ने के लिए नई माँ आएगी। रामचरन

तो मरद-मानुस ठहरा, वह तो बाहर-बाहर रहेगा। नई माँ जैसे खिलाएगी, खायगा, जो पहिराएगी, पहिनेगा, जहाँ सुलाएगी, सोएगा। अगर रोटी न मिली तो बकर-बकर मुँह ताकता रहेगा। किसको इतनी फिकर होगी कि उसका मुँह जोहता रहे, उसको पान-फूल की तरह फेरता रहे! और रामचरन के सामने ऐसा बन जायगी जैसे उसे मुन्ने के लिए बड़ा दरद है!

यही सब सोचते-सोचते और शिशु की ओर एकटक वात्सल्यभरी दृष्टि से देखते-देखते उसकी आँखों में आँसू आ गए और दो बूँद टप से गिर पड़े। उसी समय काकी अछवानी लेकर आईं। उन्होंने जो आँखों में आँसू देखे तो घबरा कर बोलीं—यह क्या है बहू? तेरा तो कुछ मिजाज़ ही नहीं समझ में आता। लड़कोरी औरत कहीं ऐसे बैठकर रोती है! बच्चे को कुछ हो गया तो तुझी से पूछूँगी, हाँ। आखिर बात क्या है भाई?

राजे—कुछ नहीं काकी। तुम मुसलमान हो तो क्या, पर पुरुब जनम में तुम मेरी माँ थीं। माँ के बिना इतनी सेवा कौन करता है काकी?

राजे के इन वाक्यों ने फ़ातिमा काकी के जराग्रस्त, शुष्क, पोपले मुख पर भी क्षण भर के लिए स्निग्धता और सरसता ला दी। उन्हें अपने वह दिन याद आ गए जब उनका भी पूरा कुनबा था, वह भी एक पूरे परिवार की स्वामिनी थीं। उनका भी जीवन जीवन था। आज वह लड़के के लड़के के साथ रहने पर बाध्य हुई हैं। रोज़ अल्लाहताला से दुआएँ माँगती हैं कि जल्दी उठा लो, अब नहीं सहा जाता। जीवन में कोई रस नहीं रह गया है, हाथ-पाँव शिथिल हो गए हैं। राजे के मुख से अपने लिए 'माँ' शब्द सुनकर उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आए। हाते में सब लोग उनका आदर करते थे। यद्यपि मज़दूरों में भी छुआछूत बहुत चलता है किन्तु एक लम्बे

युग से वहाँ रहकर अपनी सेवाओं के बल पर उन्होंने सब के घरों में और हृदयों में घर कर लिया था। कोई उनसे कुछ बराता नहीं था। कभी कदाचित् कोई नया मज़दूर आ जाता तो थोड़े दिनों जाति-रक्षा बड़े ज़ोर-शोर से करता किन्तु धीरे-धीरे सब ठीकठाक हो जाता। जाति-रक्षा के उसके धूमधाम के प्रयत्नों को देखकर फ़ातिमा काकी मन-ही-मन हँसती रहतीं, क्योंकि वह जानती थीं, नया घोड़ा है, कब तक पुट्ठे पर हाथ न रखने देगा! स्नेह-विह्वल स्वर में बोलीं—सेवा-एवा की बात नहीं है बहू! और फिर, मुसलमान होने से क्या होता है? मुसलमान क्या आदमी नहीं होता? उसे क्या दया-धरम नहीं होता?

राजे—होता क्यों नहीं काकी? मगर यही देखो, लोग न तो तुम्हें कुछ देते हैं, न तुम्हारे हाथ का छुआ खाते हैं फिर भी तुम सबकी मदद करने को तयार रहती हो। अगर तुम न होतीं तो वह सरकारी दाई क्या कर लेती?

काकी ने ऐसा मुँह बनाया; जैसे उन्हें इसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं—उँह, रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी। मैं क्या किसी के देने-लेने की भूखी हूँ? मुझे दे ही देंगे तो कौन मैं महल खड़े कर लूँगी? या मुझे सौ-पचास बरस जीना ही है! मैं तो सोचती हूँ, जब एक बिद्या मुझे आती है तो क्यों न लोगों की मदद करूँ? और जो उस सरकारी दाई की बात करती हो बहू, तो उसने तो तुझे मार ही डाला था। वह तो कहो, मैं ख़बर पाकर आ गई। तुम लोगों ने तो मुझे बुलाया नहीं। एक बार सोचा कि जहाँ अपना अपमान हो वहाँ न जाऊँ, पर जी नहीं माना।

शर्म से राजे का माथा झुक गया। सहसा ही वह कुछ उत्तर नहीं दे सकी। काकी यह बात आगे-पीछे कहेंगी ही, यह वह अनुभव कर रही थी। तब वह उन्हें उत्तर क्या देगी? जिस दिन से रामचरन ने सरकारी

दाई आने की बात कही थी तभी से वह फ़ातिमा काकी को उत्तर देने लायक़ साहस अपने में एकत्र कर पाने का प्रयत्न कर रही थी। वह पुरुष है, उसे किसी को उत्तर देने की अधिक चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं पर राजे तो स्त्री है न ! किसी के उपकार को वह इतनी शीघ्र नहीं भूल सकती। और जबसे काकी ने बिना बुलाए आकर उसे मौत के मुँह से निकाला है तबसे तो वह और भी लज्जित है। उसने धीरे से कहा—क्या कहूँ काकी उनकी अक्किल को ! पूछो, वह दाई आकर क्या खास कर लेती जो तुम न करतीं ? मैं तो मना करती रही पर जब मानें तब न !

सहारा पाकर काकी ने आगे कहा—आज-कल धन्नासेठ बन गया है क्या ? दाई-फाई का खरच-वरच कहाँ से उठाता !

सच ही तो, यह तो राजे भूल ही गई थी कि वह दाई रामचरन की रखी नहीं प्रत्युत माधो ने भेजी थी। तो उसके मना करने पर भी रामचरन ने माधो से सहायता ली ? इनको हो क्या गया ?

सहसा ही काकी ने कहा—अच्छा बहू, मैं ज़रा घर हो आऊँ। कुछ वहाँ का भी सरंजाम कर आऊँ। बहू है तो, पर बड़ी अल्हड़-झिल्हड़। उस पर मुझे भरोसा नहीं भाई ! और सच पूछो तो अभी उसकी उमिर ही क्या है ! खेलने-खाने के दिन हैं !

वह चलीं तो राजे उनकी ओर निहारती रह गई। इस विजातीय वृद्धा पर उसे आन्तरिक श्रद्धा हो आई थी। अपनी माँ भी ऐसी सेवा न करती। आखिर उन्होंने इतना खरचा भी उठाया, उस दाई की फीस भी दी, सवारी का किराया दिया होगा पर काम आईं यही काकी। लेकिन उन्हें माधो की सहायता की क्या ज़रूरत थी ? मन में वह इन्हें कितना ओछा समझता होगा ! कौन मैं दाई बिना मरी जाती थी ! यह मैं मानती हूँ कि मेरी मुहब्बत के ही कारण इन्होंने यह सब किया पर क्या मेरी मुहब्बत की वजह से यह कुएँ में कूद पड़ेंगे ?

माधो बाहर बैठा रामचरन से बातें कर रहा था। उसने पीने को पानी माँगा। रामचरन को अच्छा अवसर मिला। इसी बहाने एक नज़र वह राजे को देख लेगा। ऐसे तो फ़ातिमा काकी उसके प्राण ले लें। भीतर आया तो राजे भरी बैठी थी। रामचरन ने कोठरी में सिर घुसाकर इधर-उधर झाँका, बोला—काकी कहाँ गई ?

उसके मुख पर अपरिसीम उल्लास खेल रहा था। राजे ने उसे लक्ष्य न करके कहा—घर गई। मैं पूछती हूँ, तुम्हें उस सरकारी दाई को बुलाने को किसने कहा था ? मैंने तो मना किया था न ?

खेलते बच्चे को जैसे किसी ने तमाचा मारकर रुला दिया हो। वह इस आशा से आया था कि राजे उसे देखते ही हर्ष से नाच उठेगी। बच्चे को उसकी गोद में डालकर कहेगी—लो, यह तुम्हारा है। उसके रोम रोम से मेरे लिए प्रेम और बच्चे के लिए आशीर्वाद झरता होगा। मैं उससे कहूँगा कि यह मेरा नहीं है। वह तुनुक जायगी, तब उसे मनाऊँगा। किन-किन शब्दों में उसे मनायेगा, यह भी उसने सोच रखा था। हाँ—फ़ातिमा काकी हुई तब कुछ भी नहीं हो सकेगा। कल रात की उनकी सेवा-शीलता और बिना बुलाए आकर कर्त्तव्यपालन करना उसे बहुत अच्छा लगा था। मन ही मन वह श्रद्धा और कृतज्ञता से दबा जा रहा था। उसने स्वय सोचा था, अवसर पाते ही उनसे क्षमा-प्रार्थना करेगा किन्तु इस समय उसके प्रफुल्लित हृदय पर राजे के निर्मम व्यवहार ने चोट पहुँचाई। उसी चोट की तीव्रता में उसने कहा—तो क्या हुआ जो वह आ गई ! माधो ने जब भेज ही दिया तो क्या करता ? गर्दनियाँ देकर निकाल देता ? तू तो जाने कैसी बातें करती हैं भाई !

राजे ने उसी सिलसिले में कहा—हाँ, निकाल देते। तब कम से कम काकी से मुँह तो न लुकवाना पड़ता ! काम तो काकी ही आई कि वह सरकारी दाई ? खड़ी-खड़ी देखती भर रही !

यह बात सत्य थी। रामचरन ने आशंका से पूछा—क्या कुछ काकी कह रही थीं ?

राजे—हाँ। उन्होंने अपने न बुलाने का मुझसे ताना मारा। मैं तो मारे सरम के धरती में गड़ गई। क्या जवाब देती ? आखिर माधो हो या कोई और, हमारे बीच में कोई क्यों पड़ता है ? हम किसी से भीख माँगने तो नहीं जाते। जितनी चादर होगी, उतना ही पाँव पसारेंगे। तुम्हीं हो जो सबसे रोना रोने बैठ जाते हो ! मैं माधो-फाधो, किसी को नहीं जानती।

रामचरन ने आजिज़ी से कहा—अच्छा, तो हो तो गया। जरा धीरे बोल न ! माधो बाहर ही बैठा है। कहीं सुन ले तो अनर्थ हो जाय।

पर राजे ने जैसे इस समय लड़ने की क़सम खाई थी—सुन ले तो क्या कर लेगा ! कोई उसके दबैल बसे हैं ? उसका रुपया दे दो। वह अपने घर खुस, हम अपने घर खुस।

रामचरन ने बात बदल दी—सो रहा है क्या ?

राजे के मुख पर मातृत्व झलक गया—हाँ, देखो न ! तुम्हीं को पड़ा है। रात तुमने देखा कि नहीं ?

रामचरन—हाँ, देखा तो था।

राजे का रोम-रोम तृप्त हो उठा। उसे जैसे आँखें मिल गईं, बोली—मैं तो सोच रही थी कि कहीं तुमने न देखा हो !

रामचरन यह भी कहीं हो सकता है। मेरा तो रोयाँ-रोयाँ जैसे आँख-कान बना हुआ था। कब वह घड़ी आवे ! भगवान से मनाता था, सब राजी-खुसी रह जाय तो पाँच पैसे का परसाद चढ़ाऊँगा। बारे सब कुसल से बीत गया।

राजे—तो तुम आज जाकर परसाद चढ़ा दो। भगवान के कामों में देर नहीं होनी चाहिए। आज साम को चले जाना।

रामचरन—चला जाऊँगा, जल्दी क्या है ?

राजे—अब यही दलिद्दरपन तो मुझे अच्छा नहीं लगता। आखिर साम को बैठे ही तो रहोगे ! पाँच पैसे कौन बहुत बड़ी रकम है ? चढ़ाने भी चले तो पाँच पैसे का परसाद, पाँच आने क्यों नहीं मान दिया ?

रामचरन—अब निकल गया मुँह से तो क्या करूँ ? कह तो पाँच आने का चढ़ा दूँ !

राजे—अब जाने दो। जब निकल ही गया मुँह से तब पाँच पैसे का ही चढ़ा दो। भगवान सरधा देखते हैं, पैसा नहीं देखते।

रामचरन चाह रहा था कि अभी राजे को बाँहों में भर ले। उससे कहे कि अब तक तू प्यार करने की चीज़ थी, अब आदर की चीज़ हो गई है। अब तू माँ हो गई है। तेरा आसन साधारण औरतों से ऊपर है। वह कुछ कहने जाही रहा था कि काकी आगईं। उन्हें भला घर पर कहाँ चैन ? हाथ में दो-चार सोंठौरे लिए हुए थीं। उसके आते ही रामचरन बिल्ली की तरह पाँव दबाकर बाहर निकल गया। काकी के पोपले मुख पर भी मुसकिराहट आ गई। उन्हें पल भर के लिए अपनी जवानी याद आ गई।

पानी लेकर बाहर आया तो माधो ने रसिकता से कहा—बड़ी देर कर दी। घरवाली ने रोक लिया क्या ?

न-जाने क्यों रामचरन को माधो की यह रसिकता इस समय बुरी लगी। कहा—अब क्या करूँ ? अकेला आदमी हूँ। पचास काम हैं। कुछ बाजार से लाना है, यही वह बतला रही थीं।

माधो—अकेले काहे हो ! मैं जो हूँ ! तुम तो मुझे अभी तक गैर समझते जा रहे हो। आदमी अगर आदमी पर विश्वास ही न करना चाहे तो कोई क्या करे ? क्या-क्या लाना है ?

विरक्त भाव से रामचरन बोला—विश्वास की बात नहीं है। पर सोचता हूँ, तुम कब तक मदद करते जाओगे ! फिर मैं कुछ-न-कुछ

तो कमा ही लेता हूँ। राजे भी चार दिन बाद काम पर जाने ही लगेगी। फिर कोई दिक्कत नहीं रहेगी। तुमने जो गाढ़े समय मेरी मदद की उसके लिए मैं तुम्हारा एहसान मानता हूँ।

माधो का मुँह उतर गया। स्वार्थमयी सेवा में धैर्य्य ही कितना! उसे ऐसा लगने लगा जैसे यहाँ दाल गलनी कठिन है। अब तक का सब खर्च उसे व्यर्थ लगने लगा। पर तुरन्त ही उसकी विलासिता ने उसे सजग किया। बोला—एहसान की इसमें कौन सी बात है? यह तो मेरा धरम था। आदमी के काम आदमी ही आता है। कब राजे काम पर जायगी, अभी तो नहीं जाती! तुम्हारी भी कौन ऐसी बड़ी आमदनी है! मैं तो समझता हूँ, जो-जो चीज़ें लानी हों, फ़िहरिस्त मुझे दे दो। मैं ला दूँ, या तुम्हीं साथ चलकर खरीद लो।

राजे की कटूक्ति का असर अभी रामचरन पर से हटा नहीं था। उस पर माधो की इस बात का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कहा—नहीं भैया, तुम काहे तकलीफ़ करोगे। मैं ही कहीं से इन्तजाम करके लेता आऊँगा। छट्ठी के लिए कुछ चीज़ें चाहिएँ, वह आ जायँगी।

यद्यपि राजे ने छट्ठी के सामान की कोई फ़िहरिस्त रामचरन को नहीं बताई थी फिर भी सहसा ही माधो के सामने जब उसके मुँह से यह बहाना निकल गया और जब माधो फ़िहरिस्त की चीज़ें भी ला देने को प्रस्तुत हो गया तो रामचरन को मन ही मन प्रलोभन होने लगा। ऊपर से राजे के वाक्यों का प्रभाव उसके कंठ मे बोल रहा था, पर भीतर ही भीतर उसका मन चाहता था कि उसके ना-ना करते रहने पर भी माधो सब चीज़ें ला दे। वह एक और उत्तरदायित्व से छूट जाय। क़र्ज़ लेनेवाला या दूसरों के सामने हाथ फैलाने का अभ्यासी मनुष्य सहज ही इस प्रवृत्ति से छुटकारा नहीं पाता। जैसे डॉक्टर मरीज़ के यहाँ ना-ना करते हुए भी फ़ीस के रुपए जेब में रख लेता है। प्रत्येक नया क़र्ज़ लेनेवाला यही सोचकर क़र्ज़ लेता है कि जहाँ तक हो

सका, जैसे भी बनेगा मैं जल्द ही क़र्ज़ लौटा दूँगा। पर होता सदा इसका उलटा है। लौटाने की कौन कहे, वह धीरे-धीरे क़र्ज़ के पंजों में कसता ही जाता है। यही दशा दूसरों के सामने हाथ फैलानेवालों की होती है। उनका आत्म-सम्मान मर जाता है।

इसी समय लखनलाल वहाँ पहुँचे। रामचरन उठकर खड़ा हो गया और इन्हें सलाम किया। माधो उन्हें जानता नहीं था अतः बैठा रहा। लखनलाल ने एक नज़र माधो को देखा, फिर रामचरन से पूछा—क्यों, राजे मज़े में है?

रामचरन—हाँ मालिक!

लखनलाल—और बच्चा?

रामचरन—आपकी दया से वह भी कुसल से है।

लखनलाल—अच्छी बात है। तो तू मिठाई कब खिलाएगा भाई!

रामचरन झेंप गया। इतने बड़े-बड़े आदमी उससे ऐसी मीठी तरह बातें करते हैं। बोला—सरकार, आपका ही दिया तो खाते हैं!

राजे ने जो लखनलाल की बोली सुनी तो काकी से रामचरन को भीतर बुलवाया। कहा—मालिक आए हैं?

रामचरन—हाँ, तुझे पूछते रहे कि कैसी है। मुनुआँ को भी पूछते रहे।

राजे—मुनुआँ को उन्हें दिखा क्यों नहीं देते?

रामचरन ने फ़ातिमा काकी की ओर देखा जैसे कह रहा हो—यह खा जायँगी।

राजे ने कहा—वह कुछ नहीं। सारा सहर देख चुका, एक वही नहीं देखेंगे? तुम जाकर उन्हें बुला लाओ।

रामचरन उधर लखनलाल को बुलाने बाहर निकला, इधर राजे ने काकी से अनुमति भी ले ली। इसके लिए भी उन्हें तयार कर लिया कि वही गोद में लेकर दिखा दें। वह उठकर खड़ी नहीं हो सकती और

रामचरन गोद में लेकर मालिक के सामने खड़ा होने में सरम से धरती में गड़ जायगा।

लखनलाल आए, बच्चे को देखा और प्रथानुसार दो रुपए उसके लिए फ़ातिमा काकी को दे गए। राजे पड़ी-पड़ी यह सब देख रही थी। उसका अन्तःकरण उनके प्रति सच्ची श्रद्धा से भर गया। सहसा ही उसके मन में यह इच्छा हो आई कि मालकिन भी इसे देख लें तो कैसा हो! पर इसका कोई साधन न होने से वह मन मारकर रह गई।

लखनलाल ने बाहर निकलकर रामचरन को एक ओर ले जाकर कहा—रामचरन, तुम्हें एक तकलीफ़ दूँगा भाई!

रामचरन अवाक् हो गया, वह भी मालिक के किसी काम आ सकता है! पूछा—क्या मालिक! कैसी तकलीफ़?

लखनलाल—तुमसे बतलाया था न कि मेरे यहाँ आज-कल एक लड़का राजे की जगह काम करता है! उसका बाप जेल में था। कुछ दिन हुए, जेल से छूटा है। कल रात जब मैं तुम्हारे यहाँ था, तभी वह पता लगाते-लगाते किसी तरह मेरे घर पहुँचा। रात तो किसी तरह मेरे यहाँ रहा, पर मैं चाहता हूँ कि अब उसे तुम्हारे यहाँ रख दूँ। तुम उसका काम भी मिल में लगवा दो।

लखनलाल ने रामबली के बाप की सारी कथा थोड़े में रामचरन को समझा दी। रामचरन की आँखों में आँसू आ गए। सब सुनकर उसने कहा—मालिक, जो जगह है वह आप देख ही रहे हैं। यही एक बित्ता भर की कोठरी और गज भर का ओसारा है। मुझे रखने में कोई उजुर नहीं है पर सोचता हूँ कि उन्हें तकलीफ़ होगी।

लखनलाल ने हँसकर उत्तर दिया—अरे पागल, जो जेल की काल-कोठरी में सज़ा काट आया, उसके लिए तो यह कोठरी ओसारा महल ही समझो। उसे कोई कष्ट न होगा। हाँ, तुम अपनी सोच लो। न हो तो राजे से भी सलाह कर लो।

राजे के लिए तो लखनलाल की बात ब्रह्मवाक्य थी। उससे कहने भर की देर थी। तुरन्त ही बोली—हाँ-हाँ, रख क्यों नहीं लेते ?

रामचरन—तूने तो कह दिया कि रख क्यों नहीं लेते पर रक्खें कहाँ, कपार पर ? कहाँ पर सोएगा, कहाँ खाना पकाएगा ?

राजे ने जैसे इन आशंकाओं को हवा में उड़ाते हुए कहा—सब हो जायगा। तुम मालिक से कह दो कि उन्हें भेज दें।

'प्राण परे साँकरे, न हाँ करे न ना करे' वाले स्वर में रामचरन ने लखनलाल से कह दिया—भेज दीजिए मालिक, रख लूँगा।

लेकिन लखनलाल समझ गए कि इसे कष्ट हो रहा है। बोले—तुम्हारे ऊपर बोझ मैं नहीं डालना चाहता। न होगा, कहीं और प्रबंध कर दूंगा। रखता तो मैं अपने ही यहाँ लेकिन राजे की मालकिन के मारे न रख पाऊँगा।

रामचरन—नहीं-नहीं मालिक, भेज दो न। मैं तो खाली उनकी तकलीफ़ के लिए कह रहा था। मुझे कोई उजुर नहीं है।

मिलों में मँहगाई का भत्ता कम कर देने की तथा मज़दूर घटाने की चेष्टाएँ बड़े ज़ोरों से हो रही थीं। लड़ाई पश्चिम में समाप्त हो गई थी और मिल-मालिकों को यह कहने का अवसर मिल गया था कि हमें अब इतने कारीगरों की ज़रूरत नहीं है। धीरे-धीरे पचास बहाने बताकर मज़दूर हटाए जा रहे थे। मिलों के पास सरकारी ऑर्डर कम रह गए। मजदूर सभा ने इसके विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की। लड़ाई के बाद के ज़माने की रहाइश कहीं महँगी होगी। उससे पार पाने के लिए जब मज़दूरों का वेतन भी बढ़ाना चाहिए, उस समय उनके वेतन घटाए जा रहे हैं, उन्हें काम कम होने का बहाना बनाकर निकाला जा रहा है। मालिकों की इसमें एक नीति और भी है। बोनस बाँटने का समय आ रहा है, जितने ही कम मज़दूर हों, अच्छा है। यों, मिलवालों के पास अनगिनत लटके ऐसे हैं, जिनसे वह मज़दूर

कम कर सकते हैं या उन्हें पैसे कम दे सकते हैं किन्तु इस समय तो वह खुले आम कह रहे हैं कि काम नहीं है। सरकार भी इसमें कुछ बोल नहीं सकती। लखनलाल आजकल इस स्थिति के कारण बहुत व्यस्त हैं। मज़दूरों की एक बड़ी संख्या बेकार हो जायगी। मामूली तौर पर एक मज़दूर ज़्यादा दिनों आजकल बेकार नहीं रहता, एक मिल छोड़ वह दूसरी मिल में जा सकता है पर जब सभी मिलें आदमी कम कर रही हैं तब वह कहाँ जायगा? इस विषय में मिलों के अधिकारियों से तथा सरकारी अधिकारियों से लिखा-पढ़ी भी चल रही है पर अभी कोई काम की बात नहीं निकली। मज़दूरों की छँटनी धीरे-धीरे शुरू हो गई है। तरुलता और रामप्रसाद ऐसे बेकारी के शिकार मज़दूरों के यहाँ जा-जाकर उनका दुख-दर्द पूछते हैं, यथा-संभव उनकी सहायता करते हैं, उन्हें काम दिलाने का प्रयत्न करते हैं। इस कार्य के लिए उन्होंने एक छोटा-मोटा फ़ंड भी खोल रखा है।

लखनलाल ने पूछा—रामचरन, तुम्हारी मिल में मुस्तफ़ा के ससपेंड होने के बाद फिर तो कुछ उपद्रव नहीं हो रहा है? और मिलों में तो बहुत सनसनी है!

रामचरन—उपद्रव तो ऐसा कुछ खास नहीं है मालिक पर आपस में सब खुसुर-खुसुर करते रहते हैं कि अब छँटनी बड़े जोरों से हो रही है। यह भी कहते हैं कि बोनस का बखत नगीच जानकर मालिक लोग और भी छँटनी कर रहे हैं।

लखनलाल—खाली बात ही करते हैं या और कुछ करने की सोचते हैं?

रामचरन—और कुछ क्या मालिक?

लखनलाल—यही, मार-पीट, हड़ताल आदि।

रामचरन—ऐसा तो नहीं सुना कुछ मालिक।

पर रामचरन सुने या न सुने, मज़दूर भीतर-ही-भीतर बहुत उत्तेजित थे। अपने अधिकारों की रक्षा के लिए वह इस समय सब कुछ करने को तैयार थे। उनकी यह विरोध-भावना और रुद्ध-क्रोधावेग नाना रूपों में फूट पड़ते थे। मिलों में भी इस समय ज़्यादतियाँ बहुत हो रही थीं। एक-एक बिनता का जॉबर मज़दूरों से तनख़्वाह के वक्त रुपए ले लेकर घर भरता जाता था। इन्हीं रिश्वत के रुपयों के बल पर उन मज़दूरों की रोजी लगी हुई थी। मिलों का प्रबंधविभाग ऐसा है कि डिपार्टमेण्टल ऑफ़िसर के पास तो बिरला ही मज़दूर पहुँच पाता है। सारा दारोमदार मिस्त्रियों, हेडजॉबरों और सुपरवायजरों पर ही है। सुना जाता है कि मज़दूरों को नौकरी पाने के लिए कामिनी-कंचन, दोनों की सेवाएँ अर्पित करनी पड़ती हैं। हेडजॉबर अक्सर सिनेमा घरों में, नुमायशों में तथा खेल-तमाशों में मज़दूरों की स्त्रियों के साथ देखे गए हैं। जुर्माने, सस्पेंशन, डिसमिसल आए दिन की चीज़ें हैं और गाली-मार तो मज़दूरों के लिए उतने ही ज़रूरी समझे जाते हैं जितना दोनों वक्त भोजन। हर छोटा-बड़ा-मझोला अधिकारी अपने को मज़दूरों का भाग्य-विधाता समझता है। गन्दे और बदबूदार क्वार्टरों में रहो, सड़ा-गला भोजन करो, हरी तरकारी तक तुम्हें मुयस्सर न हो, हैज़े और क्षय के शिकार होते रहो, विपन्नता और अभावों की मार से किसी तरह तुम्हारी गृहणियों का यौवन और सौन्दर्य बच रहे तो उन्हें भाग्य-विधाताओं की भेंट चढ़ाते रहो, गाली-मार सहते रहो और बैल की तरह काम करते रहो। किन्तु मज़दूर भी आखिर आदमी ही हैं। परिस्थितियों ने उन्हें जानवर बना रखा है। वह भी आघात करना जानते हैं। चोट लगने पर उन्हें भी पीड़ा होती है, उन्हें भी अपने मान-अपमान का बोध होता है, उन्हें भी अपनी कन्याओं, माँओं-बहनों के कौमार्य्य और सतीत्व-अपहरण पर हार्दिक विक्षोभ होता है। यह सच है कि उलट कर प्रतिघात करने

की प्रवृत्ति उनकी बलवती नहीं होती, पेट भर पाने के प्रयत्नों ने उन्हें मनुष्यता से विच्युत कर दिया है। वह अहिंसक हो गए हों, यह बात नहीं किन्तु हिंसा की भावना उनकी कुचल दी गई है। उनका धर्म, कर्त्तव्य, उनका मान-अपमान, उनका सम्पूर्ण अस्तित्व ही पैसे पर निर्भर हो गया है। उन्हें पैसे देते रहो, वह चूँ भी न करेंगे, चाहे उनका गला काट डालो। अब वह भी होता नहीं दीखता। उनके पैसों पर भी आँच आने लगी है। जिस दिन लखनलाल ने रामचरन से यह सब बातें कीं उसके तीन-चार दिनों बाद रामचरन की मिल का विनता का हेडजॉबर खलीक मिल के सामने ही सुबह-सुबह जूतों से बुरी तरह पीटा गया। और मजा यह कि पीटनेवालों का पता तक न चला। बिचारा चुपचाप खोपड़ी सुहलाता रह गया। यह जॉबर वही था, जिसके बारे में सुना जाता था कि फ़ी मज़दूर एक रुपया वेतन के वक्त उसका बँधा हुआ है। नए नौकरी के उम्मीदवार मज़दूर को अक्सर एक बोतल देशी शराब भी उसके घर पहुँचानी पड़ती थी तथा कभी-कभी रात-बिरात उसके अन्य मनोरंजन का सामान भी मुहय्या करना पड़ता था, फिर चाहे वह उसकी बहन हो या पत्नी हो। उसके पिट जाने पर ऊपर से तो मिल में शान्ति रही पर अन्दर-ही-अन्दर सभी मज़दूरों को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उनकी विद्रोह-भावना इस सस्ते प्रतिकार से ही आंशिक रूप से तुष्ट हो गई। हड़ताल आदि करना स्वयं उनके हित में इस समय घातक था और उनका कोई समझदार नेता इस घातक अस्त्र के उपयोग की सलाह उन्हें नहीं दे रहा था।

मुख्य प्रश्न इस समय था मिलों में मज़दूरों का कम किया जाना। मज़दूर और अंशतः उनके नेता भी सरकार की ओर दृष्टि लगाए हुए थे, वही इस स्थिति का हल निकाल सकती है। वायसराय के भाषण से नयी सरकार बनने की कुछ आशा भी बँध चली थी। नेताओं

पास दनादन वायसराय के निमंत्रण पहुँच रहे थे और लोग शिमला-प्रयाण के लिए तैयार हो रहे थे। सरकारी हलकों में बराबर यह चर्चा हो रही थी कि नयी सरकार का आना तय है। युद्धकालीन निर्मित कई सरकारी विभागों के छोटे-मोटे कर्मचारी, जो आई० सी० एस० या पी० सी० एस० नहीं थे, धीरे-धीरे कहीं और नौकरियाँ भी ढूँढ़ने लगे थे क्योंकि उन्हें यह प्रायः तय सा लगता था कि नयी सरकार यह सब विभाग बन्द कर देगी या आमूल परिवर्तन होंगे। समाचार-पत्रों के लिए ऐसी उत्सुकता कभी लोगों में नहीं देखी गई। जहाँ कहीं भी रेडियो था, ख़बरों के वक्त चार-पाँच आदमी हमेशा घेरे पाए जाते थे।

लखनलाल इस मिल से उस मिल, उस मिल से इस मिल दौड़ते फिरते थे। उधर तरुलता के परिश्रम का अन्त न था। घर पर तो उसकी सूरत शायद ही कभी दिखाई पड़ती हो। सायकिल लिए फिरकी की तरह नाचती रहती। रामप्रसाद कई बार उसके घर गया पर भेंट न हुई। कितनी ही बार और कितनी ही देर अपने द्वार पर खड़ा रहा पर तरुलता उधर से निकली ही नहीं। लखनलाल से पूछता तो वह सूखा-सा उत्तर देते। उस दिन का वह चुम्बन अभी उसे याद था पर लगता था कि तरुलता उसे भूल गई है। आज वह अपने एक मित्र के यहाँ स्वरूपनगर गया हुआ था। सायकिल पर लौट रहा था कि रास्ते में तरुलता मिली। वह भी सायकिल पर भागी जा रही थी। रामप्रसाद ने पुकार कर रोका। बोला—तरु, कहाँ से आ रही हो?

एक पेड़ के तने से सायकिल टिकाकर तरुलता ने माथे का पसीना पोंछा फिर उत्तर दिया—कुछ मकान मालिकों ने मज़दूरों को अपने हाते से निकालने के लिए नोटिसें दी हैं। वह बिचारे घबरा रहे हैं कि बरसात आनेवाली है, ऐसी हालत में क्वार्टर छोड़कर जायँ कहाँ?

कानपुर में मकानों की जो कमी है वह सभी जानते हैं। किसी तरह रो-गाकर गिरे-पड़े, चूते, जर्जर क्वार्टरों में वह गुज़र-बसर करते थे, अब वह भी छिनने जा रहा है। इस विषय में कुछ करना होगा। उसी सिलसिले में दौड़-धूप रही हूँ। तुम तो कई दिनों से दीखे ही नहीं!

रामप्रसाद—जी हाँ, उलटा चोर कोतवाल को डाटे! मकान के दरवाज़े पर खड़े-खड़े और इन्तज़ार करते-करते आँखें पथरा गईं पर आपको जब फ़ुरसत मिले तब तो!

तरुलता ने हँसकर कहा—हाँ भाई, बात तो सही है। इधर मुझे फ़ुरसत ही न मिली कि तुम से मिल पाती। पर यह मैं कहाँ जानती थी कि तुम दरवाज़े पर खड़े-खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे?

रामप्रसाद—तुम क्यों जानोगी? तुम्हें क्या ग़र्ज़ पड़ी है कि देखो, कौन मरता है, कौन जीता। पड़ी होतीं किसी के प्रेम में तो जानतीं!

यह आक्षेप ग़लत था। प्रेम करना स्त्री ही जानती है और तरुलता ने स्त्री का प्रेम दिया था। कोई उसके हृदय को चीर कर देखे कि वहाँ रामप्रसाद के लिए प्रेम का कितना अगाध सागर लहरा रहा है। यह बात दूसरी है कि उसने अपने अन्तर्वासी प्रेम को उस तरह नहीं प्रकट किया था जिस तरह रामप्रसाद ने किया था। रामप्रसाद के इस कथन पर तरुलता ने वक्र दृष्टि से उसे देखा, बोली—तुम कह सकते हो ऐसा?

रामप्रसाद समझ गया कि वह कुछ कड़ी बात कह गया है, सहम कर बोला—तो मेरा और कुछ मतलब थोड़े था! मैंने तो यों ही कह दिया था। चलो, चलो। रास्ते में भारत रेस्तरां में चाय पीते चलेंगे।

तरुलता को अभी दो-चार घंटे कोई काम नहीं था, वह रेस्तरां जाने को प्रस्तुत हो गई। रेस्तरां में चाय का ऑर्डर देकर रामप्रसाद ने कहा—तरु, उस दिन की बात याद है?

तरुलता—किस दिन की ?

रामप्रसाद—उस रात की, जब रेडियो सुनकर लौटे थे।

स्त्री-सुलभ लज्जा से तरुलता के गाल लाल हो गए, धीरे से कहा—हाँ, याद है।

रामप्रसाद—तुमने कुछ बुरा तो नहीं माना?

तरुलता—बुरा मानने की तो उसमें कोई बात नहीं थी। मैंने तो उसे केवल एक खेल समझा। खेल की बात का कोई बुरा मानता है ?

रामप्रसाद—बहुत-सी लड़कियाँ बुरा मान जाती हैं।

तरुलता—वह बुरा नहीं मानतीं, सतीत्व और कौमार्य की झूठी भावना उन्हें बुरा मानने को बाध्य करती है। मेरा तो ख्याल है, वह केवल बुरा मानने का अभिनय करती हैं। आजतक तो मैंने देखा नहीं कि किसी युवती को युवकों से मिलना-जुलना, हँसी-विनोद और युवकों का स्पर्श बुरा लगता हो। सरल, स्वस्थ जीवन की स्वाभाविक माँग को अनुचित समझनेवाली युवती मैंने आज तक नहीं देखी। यदि कहीं हो भी तो उससे मेरी सहानुभूति नहीं है।

जिस प्रसंग को भारतीय स्त्रियाँ पतन की चरमावस्था समझतीं, जिस विषय पर वह बात तक करना अनुचित समझती हैं, वही इस तरुलता के निकट कितना गौण बनकर रह गया है। कुमारी के शरीर का परपुरुष द्वारा स्पर्श इसके लिए कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। तरुलता ने आगे कहा—आज के प्रगतिशील समाज में इन सड़ी धारणाओं को प्रश्रय नहीं दिया जा सकता। युग आगे भाग रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों से पीछे नहीं रहना है। वह नौकरी करें या न करें, उन्हें जीविका के साधन अपने लिए सुरक्षित रखने हैं। जिन्होंने अपने लिए आवश्यक समझा है, जो परिस्थितियों के कारण बाध्य हैं, वह नौकरी और अन्य सार्वजनिक कार्य कर भी रही हैं। आज के युग में यह कल्पना करना कि नारी असूर्यम्पश्या

होकर रहेगी, स्वयं अपना ही उपहास करना है। किसी नर्स से यदि यह कहा जाय कि तुम किसी डाक्टर का स्पर्श न करो या किसी रोगी का स्पर्श न करो, किसी अभिनेत्री से कहा जाय कि किसी अभिनेता की छाया से दूर रहो, किसी राजनीतिक ख्यातिप्राप्त नेत्राणी से कहो कि पुरुषों से दूर-दूर भागो तो यह केवल मज़ाक करना होगा।

रामप्रसाद ने तर्क के लिए कहा—किन्तु यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि किसी पुरुष का चुम्बन करती फिरो!

तरुलता—यह कहने की बात भी नहीं है। आग और तृण पास-पास रहेंगे तो एक दूसरे पर उनका प्रभाव पड़ेगा ही, इसे न तो तुम रोक सकते हो, न समाज और न सारी दुनिया। दो ही मार्ग हैं, या तो स्त्रियों को खींच कर फिर पीछे की स्थिति में ले जाओ या उन्हें नई दुनिया के प्रकाश में आँखें खोलने दो। उन्हें समझने दो कि वह पुरुषों की समकक्ष हैं। उन्हें स्वयं अपना सम्मान करना सीखने दो। उन्हें पीछे ले जाने में समाज के डूबने का भी अन्देशा है, इससे यही अच्छा है कि उन्हें अपने मार्ग पर चलने दिया जाय। रह गई उस प्रश्न की बात जो तुमने उठाया है, तो यह सब व्यक्तिगत बातें हैं। कहाँ, कौन क्या करता है इसका लेखा-जोखा लिए फिरने की ज़रूरत नहीं है। एक युवक या युवती यदि कोई ऐसा काम करते हैं जिससे उनका व्यक्तिगत संबंध है तो उस कार्य की ज़िम्मेदारी भी उन पर है। मैंने जो कुछ किया या तुम्हीं ने जो कुछ किया उसकी ज़िम्मेदारी हम दूसरों पर कैसे छोड़ सकते हैं?

रामप्रसाद ने हँसकर कहा—तुम तो ऐसा लेक्चर झाड़ रही हो जैसे मैं सचमुच स्त्रियों को छुई-मुई बनाकर रखना चाहता हूँ। अगर मेरे साथ तुम्हारी शादी हुई होती तो मैं सचमुच तुम्हें परदे में रखता।

तरुलता—जी हाँ, मुँह धो रखिए। परदे में स्त्रियों को रखते हैं वह लोग जिन्हें स्वयं अपने पर ही विश्वास नहीं होता। जो अपने को

जितना ही अपनी स्त्री के अयोग्य पाता है, उतना ही वह अपनी स्त्री को ठोंक-पीट कर 'सती' बनाए रखने की चेष्टा करता है।

उस दिन बातचीत और चाय के दौर के बीच दोनों घर की ओर चल पड़े। खास बात इतनी ही हुई कि एक बार रामप्रसाद ने टेबुल के नीचे तरुलता का पाँव दबा दिया और तरुलता ने कहा—तुम बड़े शरारती हो !

नौ

शिमला में लॉर्ड वैवेल द्वारा बुलाई गई कान्फ्रेंस का जो परिणाम होना था, वही हुआ। वायसराय और कांग्रेस की समस्त चेष्टाओं के बावजूद केवल मुस्लिम-लीग के सर्वेसर्वा और ब्रिटिश सरकार के बढ़ाए हुए महानुभाव श्रीयुत जिन्ना की हठधर्मी ने सारा तमाशा ख़त्म कर दिया। जिन्ना साहब की यह कोई बहुत बड़ी ग़लती न थी। सारा देश जानता है कि वह किस खूँटे के बल पर कूदते हैं। यह आश्चर्य की ही बात है कि केवल एक आदमी के कुछ कहने या करने से एक इतने विशाल देश की प्रगति रोक दी जाय। वायसराय ने यद्यपि अपनी अन्तिम स्पीच में सारा भार अपने ऊपर ओढ़ लेने का स्वाँग रचा, किन्तु भारत और ब्रिटेन ही नहीं, सारी दुनिया यह समझ गई कि कान्फ्रेंस की असफलता का भार किसके कंधों पर है। यह अवश्य है कि वायसराय ने और उनके द्वारा अँग्रेज़ सरकार ने बहुत ढीली-ढाली नीति ग्रहण की। कान्फ्रेंस बुलाते समय भी वायसराय को मिस्टर जिन्ना की हठधर्मी की आदत मालूम थी। जब उन्होंने मुस्लिम-लीग की अनुचित माँगें स्वीकार न करने का साहस दिखलाया तब बिना मुस्लिम-लीग की सहायता और सहयोग के नई सरकार क्या वह स्थापित नहीं कर सकते थे? प्रत्यक्षतः कान्फ्रेंस समाप्त कर देने का कोई कारण नहीं था। समूचे देश को आशा बँध गई थी कि अब कुछ-न-कुछ होकर ही रहेगा। सरकारी कर्मचारियों का रवैया बदल गया था, दूसरी ओर इक्के-ताँगेवाले तक पुलिस से अब उतना नहीं डरते थे जितना पहले। वास्तव में काँग्रेस के इतिहास में इतना

अभूतपूर्व परिवर्तन कभ नहीं हुआ था। ब्रिटिश सरकार के लिए सहायता का हाथ इतनी तत्परता और सद्धदयता से काँग्रेस ने कभी नहीं उठाया था। सारे देश में आशा की एक लहर फैल गई थी, अपने प्रिय और सम्मानित नेताओं को एक बार फिर जेल की काली दीवारों के बाहर पाकर जनता हर्ष से पागल हो गई थी। वायसराय की शासन-परिषद में बड़े-बड़े नेताओं के रहने की उम्मीद हो रही थी। इसी समय लार्ड वैवेल द्वारा कान्फ्रेंस समाप्त कर दी गई। कारण यही दिया गया कि मुस्लिम-लीग शासन-परिषद के लिए नाम देने को तैयार नहीं है और वायसराय द्वारा चुने गये नामों को वह स्वीकार नहीं करती। जिन्ना साहब को फूल उठने का एक और अवसर मिल गया, देश एकबार फिर निराशा के गर्त में डूबने-उतराने लगा। यद्यपि काँग्रेसी नेताओं ने अपने भाषणों में और वक्तव्यों में बार-बार निराशा न पालने की सलाह दी, बार-बार कहा कि हमें अब भी आशा है और हम बिना मुस्लिम-लीग के सहयोग के भी शासन का सूत्र सम्हालने को तैयार हैं, किन्तु साधारण जनता तो निराश हो ही गई। अन्न कष्ट दूर होने की, वस्त्र-कष्ट दूर होने की और अन्य बहुत-सी धाँधलियाँ दूर होने की निकट भविष्य में कोई आशा नहीं रह गई। बेगार चलती रहेगी, मिलों में मज़दूरों पर अत्याचार चलते रहेंगे, घूसखोरी चलती रहेगी, पुलिसवालों के ज़ुल्म ज्यो-के-त्यों बने रहेंगे, जनता का जीवन वैसा ही अभावग्रस्त बना रहेगा।

मज़दूर पढ़ेलिखे भले ही न हों किन्तु देश में घटनेवाले महान परिवर्तनों की सूचना उन्हें मिल जाती है। नेताओं के छोड़े जाने से तथा नयी सरकार आने की आशा से वह भी प्रफुल्लित हुए थे। उन्हें भी नयी सरकार में अपना हित दिखता था। उन्होंने सोचा था, और ठीक ही सोचा था कि नयी सरकार उनकी स्थिति में सुधार करेगी, उनके लिए क़ानून बनाएगी। पर उनकी आशाएँ भी धूल में मिल

गईं। सुलगती हुई आग, जो पानी के कुछ छींटे पाकर बुझ गई-सी लगती थी, निराशा की फूँक पाकर फिर भभक उठी। मालिकों से मज़दूरों ने कई बार अपनी शिकायतें कहीं, मार-पीट, गालियाँ बन्द कराने की प्रार्थनाएँ कीं पर कुछ विशेष प्रभाव न पड़ा। आज रामचरन अभी मिल से आकर बैठा ही था और मुन्ने को खिला ही रहा था कि रामबली हाँफता हुआ आया और कहा—रामचरन, चलो, तुम्हें मालिक अभी बुलाते हैं।

रामबली के बाप को रामचरन के यहाँ उठकर आए कई दिन हो गए। रोज़ रामचरन के साथ जाता है कि शायद कोई काम मिल जाय पर अभी तक नहीं मिला। रामचरन कोशिश कर रहा है। जैसा उसे अंदेशा था, रामबली के बाप के आने से कोई विशेष असुविधा नहीं हुई, उस बित्ते भर के क्वार्टर में उसके लिए भी स्थान निकल आया। वह घर के कामकाज में मदद करता है, बैठा मुन्ने को खिलाया करता है। हाँ, एक बात हुई है। खाना वह रामचरन के ही यहाँ खाता है। रामचरन को यह अतिरिक्त व्यय विशेष अखरता नहीं। अखरे भी तो वह लाचार है। एक तो लखनलाल ने उसे भेजा है, दूसरे राजे का कड़ा नादिरशाही हुक्म है। यों, रामबली के बाप ने अपने व्यवहारों से रामचरन को भी मोल ले लिया है। जिस दिन पहले पहले यहाँ आया उसी दिन रात को अपने जेल-जीवन की ऐसी रोमांच-कर कहानी उसने सुनाई कि रामचरन काँप उठा, राजे के नेत्रों में आँसू आ गए। उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी, कृश शरीर और झुर्रियाँ पड़ा हुआ मुख दूर से पुकार-पुकार कर कहते थे कि जेल के एक युग के लम्बे जीवन ने उस पर चिरदिनों के लिए अपना प्रभाव डाल दिया है।

रामबली मालिक का संदेश रामचरन को सुना कर बाप के पास बैठ गया था। रोज़ तो वह मालकिन के कारण आ नहीं पाता था, जब कभी लखनलाल भेजते तब आता था या रात को काम खत्म

करके सोने के समय आता था। जब आता तो काफ़ी देर तक बैठा रहता। रामचरन ने उसके बाप को सुनाकर कहा—सुनते हो इसकी बात! जब आता है तब घोड़े पर सवार आता है।

रामबली—घोड़े पर सवार क्या? मालिक ने कहा कि फ़ौरन बुला लाओ।

रामचरन जब लखनलाल के यहाँ पहुँचा, वहाँ रामप्रसाद था, तरुलता थी और एक दो आदमी और थे। लगता था जैसे किसी भारी बात पर सलाह-मश्विरा हो रहा है। रामचरन को देखते ही लखनलाल ने कहा—रामचरन, तुमसे एक सलाह करनी है। तुम कुछ मदद कर सकते हो?

रामचरन की समझ में कुछ भी नहीं आया, बोला—कैसी सलाह, मालिक?

लखनलाल—ख़बर मिली है कि तुम्हारी मिल में कल उपद्रव होनेवाला है। अभी कुछ दिनों पहले बिनता का हेड जॉबर पीटा गया था, यह तो तुम्हें मालूम ही है। अब सुनते हैं, कल बिनता और तिरासल के मजदूर कुछ उपद्रव फिर करनेवाले हैं। तुम्हारे यहाँ तिरासल में कोई मिस्त्री रामकृष्ण है?

रामचरन ने पलभर याद किया, फिर उत्तर दिया—हाँ, है तो।

लखनलाल—उसी से सब मज़दूर बिगड़े हुए हैं। सुनते हैं, एक कोई महादेव है। बड़ा पुराना आदमी है। अभी तक रामकृष्ण का दो रुपए महीना उससे बँधा हुआ था! जब तक मिलता रहा तब तक तो कुछ नहीं हुआ, इस महीने महादेव उसे रुपए नहीं दे सका। रामकृष्ण ने इधर-उधर लगाकर महादेव को नौकरी से बरख़ास्त करा दिया। जब वह बहुत रोया, गिड़गिड़ाया तो इस शर्त पर वह फिर रखने को तैयार हुआ कि एक-दो रोज़ में महादेव अपनी विधवा भौजाई को साथ लेकर उससे गंगा के उस पार रेत पर मिले। महादेव

इस बात को नहीं सह सका और उसने अपने साथियों से सलाह की है कि कल रामकृष्ण को डिपार्टमेण्ट के अन्दर ही पीटा जाय। महादेव खुद तो रहेगा नहीं, इसलिए उस पर किसी का शुबहा भी नहीं होगा।

रामचरन ने सहम कर पूँछा—और बिनता में मालिक ?

लखनलाल—बिनता में खलीक की लगाई आग अभी सुलग रही है। हाज़िरी ग़ज़त भरी जाती है, प्रोशक्शन ठीक-ठीक नहीं उतारा जाता। मार पीट और गाली वग़ैरा तो चलती ही रहती है।

रामचरन को मौक़ा मिला—मारपीट और गाली तो मालिक, सभी डिपाट में चलती है। अभी उस दिन मुन्शी को साहब ने एक थप्पड़ मारा, जरा-सा मैं टीन की छाँह में कमर सीधी करने लगा था। पूछो भला, तुम जो अपने दफ्दर में टेबुल पर टांग फैलाकर सिगरेट पीते रहते हो वह क्या है ? तुम्हें तो कोई नहीं मारने आता ! मुदा एक बात है मालिक, हमारे मज़दूर भाइयों को भी मार खाने में मज़ा आता है। मैंने देखा है, इधर साहब थप्पड़ मार कर हटा नहीं कि वह एक गाल सुहराते जायँगे, दूसरे गाल से हँसते जायँगे।

लखनलाल—वह सब सही है पर इसका कारण वह नहीं है जो तुम सोचते हो। खैर, हमने तुमको इसलिए बुलाया है कि तुम बताओ, कल का यह उपद्रव कैसे रोका जाय ? एक-दो मिल में ऐसे छोटे-मोटे उपद्रव होकर बन्द हो जायँ तो कोई बात नहीं। डर यही है कि यह आग सभी मिलों में न फैल जाय। उससे नुक़सान किसका होगा, तुम्हीं लोगों का तो ! मालिकों ने तो लड़ाई में इतना काफ़ी पैदा कर लिया है कि कुछ दिनों मिल बन्द करके भी बैठे रह सकते हैं। उनके हलवे-माड़े पर इससे कुछ विशेष जरब न आएगा। मरोगे तुम लोग, जिन्हें रोज़ कुआँ खोदना और पानी पीना है।

रामचरन ने हताश भाव से कहा—तो हम क्या कर सकते हैं

मालिक ! यह सब होना कुछ अच्छी बात नहीं है पर यह सब रोकना भी तो हमारे बूते का रोग नहीं है। जब सब सुसरे लाट साहब के बच्चे बनकर आग लगाते हैं तो उसके फल से कहाँ भागकर जायँगे ! जलेंगे नहीं तो क्या होगा ? जैसी करनी वैसी भरनी, कोई झूठ थोड़े ही कहा है !

लखनलाल—कैसी बातें तुम करते हो रामचरन ! कोई बेवकूफ़ आदमी यह सब कहे तो माना भी जाय, तुम तो सब कुछ समझते हो। अगर एक आदमी कुएँ में कूदता है तो उसे निकालने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि और लोग भी कूद पड़ें ! गाली, लात, मार, यह सब अच्छी चीज़ें नहीं हैं। यह तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ, सारी दुनियाँ जानती है। प्रश्न है कि यह सब क्यों होता है ? ऐसा करनेवाले दुष्ट हैं। पर क्या एक दुष्ट को जान से भी मार डालने से यह सब बन्द हो जाएँगे ? यदि वास्तव में एक तिरासल के मिस्त्री या बिनता के मिस्त्री को क़त्ल कर देने से यह सब बुरे काम सदा के लिए बन्द हो जाने की आशा हो तो शायद मैं सबसे पहले इसकी सलाह दूँगा। पर मैं जानता हूँ कि ऐसा होगा नहीं। जिस तरह राजनीतिक क्षेत्र में आतंकवाद के हिमायती सोचने के आदी हो गए हैं, उसी तरह मज़दूरों को गुमराह करनेवाले नेतागण सोचते हैं। तिरासल का तुम्हारा रामकृष्ण हो या बिनता का ख़लीक हो, यह इकाई नहीं है और न तो इनके व्यवहार ही कोई अनोखे हैं। यह अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। बल्कि, यह बिचारे तो दया के पात्र हैं। वास्तविक अधिकार तो हैं नहीं, जो नहीं है उसे 'है' कह कर दिखाने में ही इनकी सारी शक्ति व्यय हो जाती है और इस प्रदर्शन के सिलसिले में ही वह ऊटपटांग काम कर बैठते हैं। एक-दो दस आदमी मार डाले जायँ, उससे वह मशीन नहीं रुक सकती जिसके चलने के साथ-साथ यह सब उपद्रव अनिवार्य हैं। उस मशीन को

ही बन्द करने की चेष्टा होनी चाहिए। उस व्यवस्था को ही मिटाओ जो ऐसे रामकृष्णों को और ऐसे खलीक्कों को जन्म देती है। जड़ पर आघात करो, डालियाँ आपसे आप टूटकर गिर जायँगी।

इतनी बड़ी-बड़ी बातें रामचरन नहीं समझ सकता था। न तो उसे राजनीतिक आतंकवाद का ही पता था न उस व्यवस्था का ही सिर पैर मालूम था जिसका एक शिकार वह स्वयं है। उसने इतना ही कहा—तो मालिक, गाली-मार तो नहीं सही जाती, चाहे जो हो।

लखनलाल—हाँ, मैं मानता हूँ कि गाली-मार नहीं सही जाती। सहा जाना भी नहीं चाहिए। लेकिन अभी मैंने कहा है कि कुएँ में से आदमी निकालने के लिए खुद कुएँ में कूदना ज़रूरी नहीं है। गाली-मार रोकने के लिए तुम खुद गालियाँ देने लगो या मार-पीट करने लगो, यह कहाँ की भलमनसाहत है? इन सब छोटी-छोटी बातों के लिए मज़दूरों का मार-पीट का आश्रय लेना या हड़ताल आदि करना अच्छा नहीं है।

तरुलता से न रहा गया। वह स्त्री थी और रामकृष्ण ने एक स्त्री के सतीत्व से खेलना चाहा था। इसी बात को यह इतनी छोटी कह रहे हैं। उत्तेजित भाव से उसने कहा—यह आपके लिए छोटी बात है? उस शैतान ने महादेव की विधवा भौजाई को क्यों बुलाया? उसकी इतनी हिम्मत कैसे पड़ी? इसीलिए कि महादेव एक मज़दूर है और वह मिस्त्री होने के कारण अपने को महादेव से कुछ ऊँचा समझता है। यह छोटी बात नहीं है लखनलाल जी।

तरुलता को इतना उत्तेजित लखनलाल ने कभी नहीं देखा था। उक्त घटना का संबंध एक स्त्री से है तभी वह इतनी विचलित हो उठी है, यह वह समझ गए। शान्त भाव से बोले—छोटी बात तो है ही तरु, सोचो तो खुद ही समझ लोगी। मज़दूरों और दलितों

के महान् आर्थिक प्रश्न का यह एक अंग ही है, उससे ज़्यादा कुछ नहीं। यह या इस जैसे कार्य स्वयं मुख्य प्रश्न नहीं बन सकते। तुमने अभी-अभी कहा है कि उसको ऐसा करने की हिम्मत कैसे पड़ी? तुम्हारा प्रश्न ही तुम्हारा उत्तर है। जिस व्यवस्था के आधार पर हमारा यह समाज खड़ा है उसमें ऐसी बातें कहने के लिए या करने के लिए अधिक साहस की आवश्यकता नहीं हुआ करती। पूँजीवादी मशीन जब चलती है तब अपने एक-एक पहिए के साथ न जाने कितना कर्दम और कलंक बटोरती चलती है। यह बिचारे रामकृष्ण और ख़लीक़ और अन्य इनके भाईबन्द वही बने हैं जो इन्हें इस व्यवस्था ने बनाया है। तुम लोगों की मुसीबत यही है कि तुम लोग इन बातों को मूल से अलग करके देखते हो। तभी मैंने कहा कि जड़ पर आघात करो, डालियाँ अपने आप टूटकर गिर जाएँगी। मशीन के ज़ंग लगे पुरज़ों को घिस-घिसकर ठीक रखने के बजाय मशीन ही बदल देनी ठीक है।

तरुलता ने अपनी भूल अनुभव की। उसे लगा कि वह आवश्यकता से अधिक उत्तेजित हो गई थी। लखनलाल के सदुद्देश्यों पर शंका करने का उसके पास कोई कारण नहीं था। कुछ उत्तर देकर बात बढ़ानी उसने नहीं चाही, चुप रह गई। कुछ सोचकर रामचरन ने कहा—तो मालिक, महादेव को बुलाकर समझा दो। वह अपने साथियों को रोक देगा।

लखनलाल—यह सब कर चुका हूँ। उस पर कोई असर पड़ने का नहीं, उसके सिर भूत सवार है। 'मरता क्या न करता' वाली मसल है। नौकरी तो अब उसे मिलने से रही, वह सोचता है कि क्यों न अपने अपमान का बदला चुका दे। पर मैं सोचता हूँ, मान लो, इससे एक महादेव ने एक रामकृष्ण से बदला ले लिया, तो क्या आ! यह कैसे कहा जा सकता है कि यह सब अब आगे से नहीं होंगे!

रामचरन—मार के डर से भूत भागता है साहब !

लखनलाल—हाँ, भूत भाग सकता है पर आदमी नहीं ! कम-से-कम आदमी का स्वभाव नहीं बदल सकता। जब तक वह व्यवस्था ही नहीं बदल जाती जिसकी आड़ में ऐसे शैतान पलते हैं तब तक एक-दो के पिट जाने से कुछ नहीं होगा। हम लोग उस व्यवस्था को ही बदल देना चाहते हैं और तभी इस समय हड़ताल आदि या मार-पीट रोकने को कहते हैं। जोश में आकर कोई ऐसा काम नहीं कर डालना चाहिए जिससे हमारे उद्देश्य-सिद्धि में बाधा पड़े। जब तुम लोगों का संगठन बन चुका है, तुम्हारे दुख-दर्द की बातें वहाँ सुनी जाती हैं, उन्हें दूर कराने के लिए हम लोग एँड़ी-चोटी का पसीना एक करते ही हैं, तब ऐसी बातें हमारे हाथ में न सौंपकर खुद ही क़ानून हाथ में लेना ठीक नहीं है। फिर, इससे कोई स्थायी शान्ति भी संभव नहीं है। तुम क्या समझते हो, हमें तुम्हारे कष्टों का पता नहीं है ? तुम्हारे ऊपर जुर्माने होते हैं, प्रोडक्शन ग़लत लिखा जाता है, हाज़िरी ठीक से नहीं भरी जाती, बात-बात पर सस्पेंशन और डिसमिसल्स होते रहते हैं, क़ानूनन नौ घंटे की जगह पर तुमसे ज़्यादा काम लिया जाता है, छुट्टी का कोई ठीक तरीक़ा नहीं, गालियाँ खाते हो, मार सहते हो, सड़े, गन्दे, बदबूदार कोठरियों में जीते-मरते हो, तुम्हारी बहू-बेटियों की इज्ज़त ख़तरे में रहती है और अब इधर लड़ाई ख़त्म हो जाने के कारण काम न होने का बहाना बनाकर वेतन कम किए जा रहे हैं, भत्ते घटाए जा रहे हैं और भारी संख्या में तुम्हें मिलों से निकाला जा रहा है। यह बातें ऐसी नहीं जिनका हमें पता न हो। हम जानते हैं और उन्हें दूर करने के प्रयत्नों में जी-जान से लगे हैं। मालिक लोग इस समय लड़ाई में पैदा किए हुए धन के मद में फूल रहे हैं, उन्हें इसकी चिन्ता नहीं है कि मज़दूर-वर्ग मरता है या जीता है। ग़ल्ले और कपड़े जैसी जीवन की अनि-

वार्य आवश्यकताओं के एकान्त अभाव और रहने पर भी न मिल पाने के कारण तुम्हारी ही हालत अबतर हो रही है, तुम्हारे मालिकों की नहीं। हमारे ध्यान में यह सब बातें हैं, एक भी हमारी नज़र से ओझल नहीं। हमें इस स्थिति को ही दूर कर देना है। शिमला कान्फ़रेंस से कुछ आशा बँधी थी, वह भी समाप्त हो गई। प्रान्तीय-शासन हाथ में लेने को हमारे नेतागण तैयार दिखते नहीं! हमें तो खुद ही भारी लड़ाई लड़नी है, जिसमें तुम सब लोगों की ज़रूरत पड़ेगी। किन्तु लड़ने का यह तरीक़ा नहीं है। किसी लड़ाई के सैनिक लड़ने के समय अपने व्यक्तिगत प्रश्नों को आगे नहीं रखते। ऐसा होने से कोई लड़ाई नहीं जीती जा सकती। इस समय हमें अपने निजी प्रश्नों को, यहाँ तक कि वर्गगत प्रश्नों को भी भूल जाना होगा। समूचे राष्ट्र का हित सामने रखते हुए एक कार्यक्रम बनाकर चलना होगा, जिसके परिणाम पर ही जन-जन का कल्याण और मंगल संभव है।

रामचरन फिर घपले में पड़ गया। यह बड़ी-बड़ी बातें उसकी समझ में ही नहीं आ सकती थीं। लखनलाल ने भी बाद में समझा कि उनकी बातों का बीज ऊसर में पड़ा है पर जब बोलने लगे तो बोलते ही गए। रामप्रसाद ने कहा—कॉमरेड, बेकार बक रहे हो। यह सोचो कि कल क्या करना है?

लखनलाल चौंके—कल? हाँ, कल कुछ करना होगा। देखो रामचरन, तुम्हारी तिरासल में कितने लोगों से जान-पहचान है?

रामचरन ने समझा, बड़ी भारी विपत्ति उसके सिर पर आ रही है। धर्म-संकट में पड़कर बोला—यही, क़रीब दस-बारह मज़दूरों से।

लखनलाल—तो देखो, हम लोग तो मिल के भीतर जा नहीं सकते, हाँ, बाहर गेट पर मैं रहूँगा, रामप्रसाद रहेंगे और तरुलता रहेगी। तुम कल ज़रा जल्दी मिल चले जाना और तिरासल के जो-

जो कारीगर आते जायँ, सबको होनेवाली दुर्घटना की सूचना देते जाना और कहते जाना कि कोई भाई उस उपद्रव में शामिल न हों। ऐसा करने से उन्हीं का नुक़सान होगा। हम लोग बाहर भी लोगों से यही कहेंगे। बिनता के लिए मैंने दूसरा आदमी ठीक कर दिया है। कोशिश हमें पूरी करनी है कि कल कोई उपद्रव न हो!

रामचरन ने अपनी शंका प्रकट की—पर साहब, सब मुझसे कहेंगे नहीं कि तू कौन होता है हमारे बीच में बोलनेवाला! जा, गारा-चूना ढो। तब मैं क्या कहूँगा?

गारा-चूना ढोनेवाली बात उसने ऐसा मुँह बनाकर कही कि सबको हँसी आ गई। रामचरन अप्रतिभ होकर बोला—हँसने की बात नहीं है साहब! कहीं किसी मुसरे ने एक धौल धर दिया तो मैं कहीं का न रह जाऊँगा! हैं भी तो पूरे दानव!

लखनलाल—अरे तो नाहक़ डरते हो तुम! अपने फ़ायदे की बात सुनकर धौल क्यों जमाएँगे? आख़िर हैं तो सब तुम्हारे भाई ही।

रामचरन आश्वस्त नहीं हुआ—भाई हैं तो क्या हुआ? जिसके सिर पर ख़ून सवार रहता है वह कहीं किसी की बात सुनता है? नंगा ख़ुदा से बड़ा! कहने को तो मैं सब कह दूँगा जो आप लोगों ने कहा है पर वह मानेंगे या नहीं, यह जिम्मा मेरा नहीं!

रामचरन बिदा हुआ तो मन में कल के लिए एक भारी डर लेकर। उसको यही आशंका हो रही थी कि कहीं कल वह ख़ुद न मार खा जाय। जिस बात से उससे कोई मतलब नहीं, ख़्वामख़्वाह उसमें कूदना कहाँ की बुद्धिमानी है? वह न किसी के लेने में न देने में! चाहे बिनतावाले लड़ें चाहे तिरासलवाले, चाहे रामकृष्ण लात खाय चाहे ख़लीक़ का।भुरकुस निकाला जाय, उससे क्या बहस? वह तो अपना गारा-चूना ठीक ठिकाने ढोता जाय, यही बस

है। पर एक बात का उसे संतोष है। मालिक ने कहा था कि एक दिन ऐसा हो जायगा जब न तो मज़दूरों को गाली खानी पड़ेगी, न मार, न सड़ी कोठरियों में रहना पड़ेगा, न बात-बात में निकाले जाने का डर होगा। ग़ल्ला और कपड़ा भी आसानी से मिल जायगा। वह दिन कितना अच्छा होगा। वह दिन भर मिहनत करेगा, भरपूर मज़दूरी उसे मिलेगी, रहने को साफ़-सुथरा मकान होगा, राजे रानी बनी राजकुमार को लेकर उसमें हँसी-ख़ुशी रहेगी। मालिक ने कहा था कि यह सब पाने के लिए भारी लड़ाई होगी जिसमें उसकी भी ज़रूरत होगी। मालिक को उस पर कितना भरोसा है! वह सिपाही बनेगा, उस लड़ाई का सिपाही! इस कल्पना से वह इतना प्रसन्न हुआ कि थोड़ी देर के लिए उसकी सारी आशंकाएँ उड़ गईं और वह छाती फुलाकर चलने लगा। रास्ते में दूकान बढ़ाकर लौटते हुए एक खोम्चेवाले से टकरा जाने पर जब चौमुहानी के कॉस्टेबुल ने मधुर स्वरों में उसका स्वागत किया तभी उसका स्वप्नों का महल चूर हुआ।

लखनलाल उस दिन जल्दी सोने चले गए। रामप्रसाद और तरुलता रास्ते में एक बार फिर भिड़ गए। तरुलता ने कहा—जवाहरलाल का स्टेटमेंट देखा?

रामप्रसाद—कौन-सा?

तरुलता—वही, जिसमें कम्यूनिस्टों पर कीचड़ उछाली गई है।

रामप्रसाद—जो शिमला में उन्होंने यूनाइटेड प्रेस के स्टीवर्ट हेन्सले को दिया था?

तरुलता—हाँ, मैं नहीं समझ पाती कि इन नेताओं को जेल से बाहर आने पर क्या हो गया है! जवाहरलाल, पटेल, आज़ाद, नरेन्द्रदेव सभी कम्यूनिस्टों पर उबल रहे हैं। आख़िर क्यों? हमारा अपराध क्या है?

रामप्रसाद—तुमने रेल की पटरी उखाड़ी थी ?

तरुलता—मैं क्यों ऐसा करती ?

रामप्रसाद—तार काटे थे ?

तरुलता—मैं पागल नहीं थी।

रामप्रसाद—बिजली के खंभे गिराए थे ?

तरुलता—तुम तो मज़ाक करते हो !

रामप्रसाद—मज़ाक की बात नहीं, मैं सच ही कह रहा हूँ। पिछले आन्दोलन में मैंने यह सब देखा था। एक दिन रात को मैं इलाहाबाद में जॉर्जटाउन से गंगा की ओर जानेवाली सड़क पर एक मित्र के साथ जा रहा था। मित्र की पत्नी को डिलेवरी होनेवाली थी, एक दाई उसी ओर रहती थी, उसी को बुलाने हम जा रहे थे। रात गुप्प अँधेरी थी, सड़क की बिजलियाँ भी जाने क्यों नहीं जल रही थीं। हम लोग यही बात करते जा रहे थे कि देखा, एक गली में कुछ लोग खड़े हैं। पास पहुँचकर देखा तो एक बिजली का खंभा गिरा दिया गया है और उसे उठाकर बीच सड़क पर बिछा देने की तैयारी हो रही है। पूछा, यह क्यों किया जा रहा है, तो एक सज्जन बोले—ताकि मिलिटरी की लॉरियाँ आगे न बढ़ने पाएँ। यह कितना बड़ा बचपना था, यह शायद वह नहीं समझ रहे थे।

तरुलता—उँह, हुआ होगा पर यह ऐसे कारण नहीं हैं जिनसे यह नेतागण हमारे विरोधी हो जायँ। कोई भी समझदार आदमी इस तरह की बचपने की बातों को रोकेगा। खुद इन लीडरों ने कहा है कि तोड़-फोड़ के काम उनके आदेश से या कांग्रेस के आदेश से नहीं हुए हैं। हमने यही तो किया था कि उस समय ऐसे काम होने से रोके थे !

रामप्रसाद—जवाहरलाल जी ने तो यह भी कहा है कि वर्तमान-काल में भारत में कम्यूनिज़्म की कोई विशेष शक्ति ही नहीं है।

इसका प्रभाव नहीं के बराबर है। यद्यपि बंगाल के अकाल में तथा कई और बातों में कम्यूनिस्टों ने आशातीत सफल कार्य किया है किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा का विरोध करने के कारण उन्होंने भारतीय राष्ट्र की सहानुभूति खोदी है और अपने छोटे क्षेत्र के बाहर उनका प्रभाव बहुत कम हो गया है। वह भारत के लिए 'प्रोग्रेसिव सोशलिज़्म' ही सही समझते हैं।

तरुलता—हमारी समझ में यह नहीं आता कि हमने राष्ट्रीयता को क्या धक्का पहुँचाया है? हमने कब यह कहा कि ब्रिटिश सरकार को बनाए रखो? कब कांग्रेस की बात नहीं मानी? हाँ, हम तोड़-फोड़वाली राष्ट्रीयता को उस समय भी बुरा समझते थे, इस समय भी समझते हैं। गांधीजी ने तो जोशी को लिख ही दिया है कि मैं तुम लोगों को बुरा नहीं समझता।

बात करते-करते रामप्रसाद और तरुलता के मकान आ गए। रामप्रसाद ने कहा—तरु, इस समय एक प्याला चाय तुम अपने हाथ से बनाकर पिला देतीं तो कृतार्थ हो जाता! जन्म-जन्मांतर तुम्हारा ऋणी रहता।

तरुलता—तुम पुनर्जन्म मानते हो क्या?

रामप्रसाद का होम करते ही हाथ जला। कहीं फिर बहस न छिड़ जाय। बोला—पुनर्जन्म न मानने से यदि इस वक्त एक कप चाय मिल जाय तो क्या बुरा है?

तरुलता—तो आओ, बना दूँ।

रामप्रसाद—यह नहीं, मेरे यहाँ चलकर बनाओ।

तरुलता ने कुछ सोचा, फिर कहा—चलो।

भीतर जाकर तरुलता ने देखा, एक अविवाहित के यहाँ जो व्यवस्था होनी चाहिए वह पूरी है। एक ओर किताबों और अखबारों का ढेर, दूसरी ओर एक खाट पर दरी और तकिया, बीच कमरे में

एक फटी चटाई जिस पर बीड़ियों का एक आधा बंडल और माचिस और एक कोने में स्टोव और तेल की बोतल। ओसारे में लोटा गिलास लुढ़का पड़ा है और एक-दो दोने पड़े हैं जैसे हलवाई के यहाँ से कुछ लाकर खाया-पिया गया हो। टॉर्च के सहारे वह यह सब देखती जा रही थी और मन में रामप्रसाद के लिए एक गहरी सहानुभूति और हार्दिकता भरती जा रही थी। वह अकेला है। उसे देखने-सुननेवाला कोई नहीं, उसके खाने-पीने की व्यवस्था करनेवाला कोई नहीं। थक-थकाकर आता होगा और कुछ खा-पीकर पड़ रहता होगा। संभव है, कभी सिर में भयंकर पीड़ा भी होती हो, तब भी कोई दबानेवाला नहीं। तकिए से माथा दबाकर पड़ रहता होगा। काम भी तो कितना करता है! यह सच है कि वह कभी किसी काम में स्वयं 'इनीशियेटिव' नहीं लेता पर जिस काम में जोत दो, बैल की तरह लगा रहेगा। मैं यदि उसके घर में होती, उसकी चौबीस घंटों की साथिन होती तब भी क्या वह ऐसा ही अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित रह पाता? उसने मुझसे यही तो चाहा था कि मैं उसका भार सम्हाल लूँ। जिस आदमी का पल-पल जनता का है, उसका बोझ सम्हालनेवाला एक कोई मनचाहा होना ही चाहिए। मुझसे यह भी नहीं हो सका।

इसी समय रामप्रसाद लालटेन जलाकर ले आया, बोला—शायद छ-सात दिनों से इसके जलने की नौबत नहीं आई। रात में बड़ी देर करके लौटता था और सो रहता था। पता नहीं, तेल भी है या नहीं।

तरुलता करुणा से भीग आई, कहा—तुम ऐसे क्यों रहते हो? मुझे तो यह सब पता नहीं था। आज पहले-पहले तुम्हारे घर में आई हूँ।

रामप्रसाद—ऐसे क्यों रहता हूँ? और कैसे रहूँ? और किसी

तरह रहने का मेरे पास साधन ही क्या है तरु ? छोटा था तभी बाप-माँ से अलग हो गया। भाई-बहन कोई थे नहीं। विवाह हुआ नहीं और न होने की आशा ही है। एक तुम मिलीं, सो तुमने भी मेरी सभी आशाओं पर पानी फेर दिया। पढ़ा-लिखा ज़्यादा हूँ नहीं कि कहीं बड़ी नौकरी कर सकूँ। रुपया पास में काफ़ी नहीं कि आराम से लीडरी ही कर सकूँ। सिपाही आदमी हूँ, आदेश बजा लाता हूँ और रूखा-सूखा कुछ पेट में डालकर सो रहता हूँ। ऐसे न रहूँ तो और कैसे रहूँ ?

भर्राए हुए गले से तरुलता बोली--क्या इस जीवन-क्रम में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता ? सिपाही भी आदमी ही होता है।

रामप्रसाद ने कह ही दिया—परिवर्तन नहीं हो सकता, यह तो मैं नहीं कहता। परिवर्तन करने के ही लिए तो तुमसे कहा था। तुमने न जाने कहाँ से यह सिद्धान्त बना लिया कि विवाह करोगी ही नहीं। जीवन की गाड़ी बिना रस के नहीं चलती तरु ! स्त्री के सहयोग के बिना मनुष्य अधूरा है, उसके सारे काम अधूरे हैं। उस दिन की बात सोचो, न जाने कितने दिनों की अतृप्ति और अभाव मेरे उस अनुरोध में फूट पड़े थे और तुम्हारे उस एक चुम्बन ने ही मेरी न जाने कितनी युग-युग की ज्वालाएँ दम भर में शान्त कर दीं। अधरों के उस एक निमिषमात्र के स्पर्श ने मेरे नस-नस में बिजली की लहर दौड़ा दी। मुझे उस समय यदि कोई प्रलय की आग में कूदने को कहता तो मैं शायद कूद पड़ता ! उसके बाद से भी, केवल उस स्वर्गीय-सुख की कल्पना करके ही, मैं दैत्यों की तरह काम कर रहा हूँ। थकावट मुझे आती ही नहीं। सोचता हूँ, घर में कोई ऐसा होता, जो दिन भर की क्लान्ति और अवसाद लेकर मेरे वापस आने पर मुझे अपने स्पर्श से, अपनी वाणी से, अपने प्राणार्पण से फिर ताज़ा बना देता, फिर कर्माभिमुख बना देता तो मैं क्या न करता ? पर, यह सुख मेरे लिए नहीं है।

तरुलता भले ही 'पत्थर' बनने की अथक चेष्टा करे, है वह स्त्री ही। नारी के समस्त गुणावगुण, भावाभाव और कमज़ोरियाँ उसमें भी हैं। अपने चारों ओर फैली नारियों की कुदशा देख-देखकर उसे, यह सच है कि, विवाह के नाम से ही घृणा हो गई थी। बाद में कुछ पढ़ने-लिखने पर जब भारत की दलित, शोषित जनता की सेवा का आदर्श उसके सामने आया, साथ ही मामा की सीखों ने उसके मन में जड़ें जमाईं, उसने भावावेश में यह प्रायः निश्चय-सा कर लिया कि वह विवाह के बंधन में नहीं बँधेगी, उसके सेवा-कार्य में इससे विघ्न पड़ेगा। क्या जाने कैसा पति मिले। अगर वह विवाह की और सतीत्व की पूँजीवादी और सामन्तवादी भावनाओं का शिकार हुआ—जैसा कि अधिकांश पति होते हैं—तो उसकी ज़िन्दगी क़हर हो जायगी। उसके मन का सेवा का बिरवा असमय ही झंझा के झोंकों से उखड़-पुखड़कर कहीं दूर जा गिरेगा। वह स्थिति कैसी होगी! इस स्थिति की कल्पना से ही वह काँप उठती। यही कारण है कि उसने पिता-माता से और रामप्रसाद से भी यह स्पष्ट कह दिया था कि वह विवाह नहीं करेगी। अगर रामप्रसाद को आशा थी तो बस यही कि उसने कहा था—अगर कभी विवाह करूँगी तो तुम से ही करूँगी।

पर इस समय तरुलता विचलित हो उठी है। उसके मन-प्राण पर उदासी छा रही है। इस गम्भीर रात्रि में वह किसी ऐसे युवक के सामने उसी के घर में, बैठी है जिसका सम्पूर्ण जीवन निर्माल्य-सा उस पर ही चढ़ने को प्रस्तुत है। जिसके जीवन के बनने-बिगड़ने का सारा भार उसके ऊपर है। जो एक युग से उसकी ही आराधना कर रहा है और आश्चर्य यह कि वह स्वयं जिस पर अपने को लुटा चुकी है। शरीर दो होते हुए भी उनके प्राण एक हैं। जीवन का ध्येय एक है, विचारों में वह एक हैं। संभव है, विवाह द्वारा शारीरिक रूप

से बँध जाने पर भी उसकी प्रगति का मार्ग रुद्ध न हो ! कम-से-कम यह भय या आशंका उसे होने का कोई कारण नहीं है कि रामप्रसाद उस पर अपने व्यक्तित्व का बोझ लादेगा, उस पर अपने पतित्व की धौंस जमाएगा या उसे सात ताले में बन्दकर रखने का ही प्रयास करेगा। तब, अधिक संभव है, सेवा और कर्म-पथ पर वह दोनों हाथ में हाथ डाले, कंधे से कंधा मिलाए, एकतानता और समानता के साथ अधिक तत्परता से, कर्मठता से और जागरूकता से, चलें, बढ़ें और आगे बढ़ें। रामप्रसाद उसका होगा, वह रामप्रसाद की होगी और दोनों मिलकर समूचे राष्ट्र के दलित, पीड़ित, शोषित नर-नारियों के होंगे। उसका रामप्रसाद पर प्रभाव पड़ेगा, रामप्रसाद का उस पर और दोनों की सम्मिलित सेवाएँ देश को अर्पित होंगी। कोई किसी का स्वामी नहीं, दास नहीं। मित्र वह अब भी हैं, तब भी रहेंगे, हाँ, मित्रता का बंधन अधिक स्थायी, अधिक मंगल और अधिक स्नेहपूर्ण होगा।

उसके मुख के उतार-चढ़ाव और वक्ष के स्पंदनों को रामप्रसाद साग्रह देख रहा था। बड़ी देर हो जाने पर भी जब तरुलता नहीं बोली तो उसने उसके पास जाकर ठोढ़ी में हाथ लगाकर ऊपर उठाया, और कहा—तरु, क्या सोच रही हो ? एक सिपाही की जीवन-कथा पर रुककर सोचने को ही क्या है ?

तरुलता फूट पड़ी—रामप्रसाद, मुझे काँटों में न घसीटो। तमने मुझे ऐसे पथ पर ला खड़ा किया है जहाँ से न आगे जा सकती हूँ न पीछे। मैं स्त्री हूँ और तुमने इस समय मेरी इसी दुर्बलता का फ़ायदा उठाया है। क्या तुम्हें और कोई लड़की नहीं मिलती जिससे विवाह कर तुम सुखी हो सको ?

रामप्रसाद—लड़कियों की कमी दुनिया में नहीं है। विवाह करके महज़ एक 'लड़की' घर ले आना मैं चाहता भी नहीं। तुमने सुना

नहीं—'अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान।' लड़कियाँ बहुत मिल सकती हैं पर तरुलता नहीं मिल सकती। और मुझे तरुलता चाहिए, 'लड़कियाँ' नहीं।

तरुलता ने शरारत से पूछा—क्यों? मुझ में ऐसा क्या है जो और लड़कियों में नहीं है?

रामप्रसाद को कुछ गुदगुदी हुई—तुम में क्या नहीं है? तुम में वह सब है जो अन्य लड़कियों में नहीं है। शरीर तुम्हारा भी वैसा ही है जैसा अन्य लड़कियों का, पर तुम्हारे इस शरीर के साथ एक अनोखी कमनीयता, एक अपूर्व लावण्य है। जहाँ अन्य युवतियाँ पतिदेव के आगे अपने तन का निर्माल्य सजाए दिन-रात खड़ी रहने में गौरव और धर्म मानती हैं वहाँ तुम ऐसा नहीं कर सकोगी यह मैं जानता हूँ। और यही तुम्हारी महत्ता होगी। मैंने एक बार लखनलाल जी से कहा था कि पार्टी को तुममें एक अच्छा वर्कर मिल सकता है। मैं पदे-पदे इस बात का अनुभव करता हूँ कि तुम मेरी सहगामिनी ही नहीं होगी बल्कि तुम्हारे साथ मिलकर मुझे देश की सेवा करने के लिए एक अदम्य स्फूर्ति, एक नई प्रेरणा, एक अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त होगी। कॉमरेड लखनलाल को स्त्रियों से विशेष लगाव नहीं है। वह स्त्री की शक्ति पर, उसकी प्रेरणात्मक सत्ता पर विश्वास नहीं करते। स्त्री के लिए जो कोमल भावनाएँ होनी चाहिएँ, रस का जो सोता मन में निरन्तर झरता रहना चाहिए, वह उनका सूख गया है। मैं इसका कारण जानता हूँ। खुद उनकी स्त्री ने ही उनका जीवन नर्क बना रखा है। अपनी पत्नी की ओर से जो रूखापन और स्नेहाभाव उन्हें मिला है उसने उन्हें नारी जाति की ओर से ही प्रायः विमुख कर रखा है। नारी के द्वारा किसी रूप में जीवन प्रगति पथ पर बढ़ सकता है, इस पर जैसे उन्हें विश्वास ही नहीं रह गया है।

पार्टी के अन्य कई कॉमरेड ऐसा ही सोचते हैं। पर, मैंने परिचय के प्रथम दिन से ही तुम में ज्योति की क्रान्ति की, ज्वाला की किरण देखी। तुम्हारा जीवन मुझे आदर्श लगा। अपने मन में जिस कल्पना को मैंने आश्रय दे रखा था, तुम उसकी प्रतिमा जान पड़ीं। मेरा स्नेह-वंचित मन अनायास ही तुम्हारी ओर खिंच गया। मैं तुमसे प्रेम का आश्वासन पाकर कहीं आकाश में फिरने लगा, पर तुम, तुमने..... आह फिर मुझे इसी धरती पर ला पटका। मुझे आँखों में उँगली डालकर बतला दिया कि यह मेरा भ्रम है। मैं तुम्हारा प्रेम पाने योग्य ही नहीं हूँ। तुम मुझ पर दया कर सकती हो पर प्रेम नहीं कर सकतीं! जीवन में यह बहुत बड़ा आघात लगा है तरु, यह घाव अब शायद कभी नहीं भरेगा। अब मैं हूँ, पार्टी है, काम है। बैल की तरह काम करूँगा पर उसमें मेरा हृदय नहीं होगा। चलता-फिरता शव हूँ और क्या!

रात भीगती जाती थी। निस्तब्ध अँधेरा। भीतर कमरे में दो तरुण हृदय धड़क रहे थे। केवल रामप्रसाद का करुणा से भीगा कण्ठस्वर बोल रहा था। तरुलता नतमुख चटाई पर बैठी बीड़ी के बन्डल से खेल रही थी। उसके मन में कौन-सा ज्वार उमड़ रहा था, वही जाने! स्नेह के अभाव से लालटेन भी धीरे-धीरे बुझ रही थी, धुआँ तो देने ही लगी थी। उसी अँधेरे में, विचलित, उद्वेलित कंठ का स्वर रामप्रसाद को सुन पड़ा—तो, आखिर तुम मुझ से चाहते क्या हो? मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?

शरीर की समस्त चेतना और रागात्मक वृत्तियाँ एकत्र होकर जैसे रामप्रसाद के कण्ठ में भीड़ मचाने लगीं। एकदम से वह उस प्रायान्धकार कमरे में उसी चटाई पर तरुलता से सट कर बैठ गया, बोला—क्या चाहता हूँ? चाहता हूँ कि तुम्हारे पास इसी तरह आजन्म बैठने का अधिकार प्राप्त हो जाय। तुम मेरी बनकर रहो, तुम्हारा पल पल मेरा हो। तुम्हें मैं अपनी कह सकूँ! बोलो, स्वीकार है?

भावावेश में रामप्रसाद ने तरुलता को अंक में भर लिया। उसने विरोध नहीं किया, चुपचाप गुड़िया-सी उसके वक्ष में दुबक गई। रामप्रसाद ने फिर पूछा—बोलो तरु, मेरी बात मानती हो ?

उसी तरह दुबके हुए तरुलता ने उत्तर दिया—क्या बोलूँ ? यह बहुत बड़ा त्याग होगा रामप्रसाद ! यह तरुलता के व्यक्तित्व की बलि होगी। जिस बात को लेकर माँ-बाप, भाई सबसे विरोध हुआ, जिसे मैंने जीवन का अकाट्य सत्य माना था, वह सब आज नष्ट हो रहा है। मुझे कुछ सूझ नहीं रहा है। तुम्हारी बातों ने आज मेरा निश्चय डिगा दिया है।

रामप्रसाद ने उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा—यह मेरे लिए शुभ हो रहा है।

और उसने तरुलता को और भी समीप खींच, आँखों में आँखें डाल, चूम लिया और कहा—बोलो तरु, मैं क्या समझूँ ! तुम मेरी बनकर रहोगी ?

तरुलता अपना ज्ञान खो चुकी थी। आई थी एक दिन चाय बनाकर पिलाने पर बनने जा रही थी सदा के लिए घरनी। यह आश्चर्यजनक परिवर्तन उसमें सहसा ही आ गया, वह समझ भी नहीं सकी। रामप्रसाद के 'पुरुष' ने तरुलता की 'स्त्री' को परास्त कर दिया था। उसका दंभ, कभी विवाह न करने की प्रतिज्ञा उसका ही उपहास कर रहे थे। काँपते कण्ठ से बोली—रहूँगी रामप्रसाद ! रहूँगी। अब कोई दूसरा उपाय नहीं है।

रामप्रसाद हर्ष से नाच-सा उठा, चिल्ला उठा—मेरी तरु, तरु मेरी !

उसी समय लालटेन भक्क से बुझ गई। तरुलता खड़ी हो गई, बोली—अब चलती हूँ। देर बहुत हो गई है।

रामप्रसाद को समय का मान हुआ। एक उन्माद में समय कितना

भाग गया, इसका अनुभव वह दोनों पागल नहीं कर सके। घबराकर बोला—हाँ तरु, आज बहुत देर हो गई। घर पर क्या जवाब दोगी ?

तरुलता ने शरारत से मुसकिराते हुए कमरे के बाहर आकर कहा—पहले तो कोई जवाब लेने के लिए जगता ही न होगा, फिर यदि कोई पूछे भी तो कह दूँगी, सुसराल से आ रही हूँ। क्यों ?

रामप्रसाद के अंगों में जैसे बिजली-सी दौड़ गई। धीरे-धीरे जाती हुई तरुलता की देहयष्टि को वह अंधेरे और उजेले के क्षीण सम्मिलन में देर तक देखता रहा।

दस

रामचरन घर की ओर चल तो रहा था पर उसके पाँव मन-मन भर के हो रहे थे। ऐसा जान पड़ता था जैसे सारी दुनिया की ज़िम्मेदारी उसी के सिर आ पड़ी है। लखनलाल ने कल उपद्रव को रोकने के विषय में उससे सलाह क्या ली, उसके सिर एक मुसीबत डाल दी। दम भर में ही वह नेतृत्व के ऊँचे आसन पर जा बैठा। मालिक जब उस पर इतना भरोसा करते हैं तभी तो उससे सलाह ली! सलाह क्या ली, उसी पर समूचा भार छोड़ दिया। अब वह इस भार को सम्हाले कैसे, यही प्रश्न है। अपने शरीर की सामर्थ्य से वह अनवगत नहीं। कहीं बेकार की जहमत में न पड़े! कहीं किसी ने ठोंक दिया तो वह तो वहीं ढेर हो जायगा। मालिक ने बुरा काम सौंपा। फिर, आख़िर मालिक मारपीट रोकना क्यों चाहते हैं! साहब सुसरे गाली दें मारपीट करें, सब चलने दिया जाय और मज़दूर भाई अगर उस अपमान का बदला लेना चाहें तो उन्हें रोक दो! यह कैसा नियाव है! मारपीट कोई अच्छी बात नहीं है! यह तो दोनों ओर से बन्द होना चाहिए। यह क्या कि एक तो मरकहे बैल की तरह हर-हमेशा लातें चलाए और दूसरा उसी लात को सुहलाता रहे। इससे तो और उनका हियाव बढ़ेगा।

जब वह घर पहुँचा उस समय रात के क़रीब साढ़े बारह बजे थे। आसपास के सभी क्वार्टरवाले सो रहे थे, केवल उसके क्वार्टर में रोशनी हो रही थी और रामबली का बाप द्वार पर बैठा ऊँघ रहा था। नज़दीक पहुँच कर उसने सुना, भीतर कोई पुरुष-कण्ठ बोल रहा है। यह माजार

उसकी समझ में नहीं आया। एक घर में चौबीसो घंटे साथ रहने से रामबली के बाप से तो राजे खुलकर बोलने लगी थी। उससे बोलना रामचरन को बुरा भी नहीं लगता था। पर रामबली का बाप तो बाहर बैठा ऊँघ रहा है। और किसी से राजे बोलती नहीं। तब यह कौन भीतर हो सकता है? रामचरन ने कान लगाकर सुना, यह तो माधो का स्वर है! वह इतनी रात को यहाँ भीतर कैसे? उसका खून खौल उठा। भले ही उसने ज़रूरत पड़ने पर माधो से कुछ रुपए लेकर काम चलाए पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसे रात-बिरात, समय-कुसमय राजे के पास जाकर बैठने का अधिकार मिल गया! यह अधिकार तो उसने कभी किसी को नहीं दिया। माधो ने क्या इसी मतलब से रुपए दिए थे? अब सहसा ही उसे याद आया, राजे ने पहले ही कहा था कि माधो न तो हित है न नात, वह क्यों रुपए खर्च कर रहा है! बिना मतलब के कोई यों ही रुपए नहीं खर्च करता। उस समय रामचरन को न जाने क्यों माधो पर पूरा भरोसा हो गया था, यहाँ तक कि इसी बात को लेकर राजे से उसका झगड़ा भी हो गया था। अब आज उसकी बात अच्छर-अच्छर सही उतर रही है!

उसने एकदम से भीतर घुस जाना सही नहीं समझा। रामबली के बाप को हिलाकर जगाया, बोला—यह भीतर कौन है?

आँखें मिलमिलाकर रामबली के बाप ने कहा—आ गए, भैया! चलो जान छूटी! बैठे-बैठे औंघा रहा था, साँसत में जान पड़ी थी।

रामचरन—कैसी साँसत?

रामबली के बाप ने एक बार सतर्कता से भीतर झाँक कर देखा, फिर कहा—माधोसिंह भीतर बैठे हुए हैं। तुम थे नहीं, इसी से अब तक जागता बैठा रहा।

रामचरन—तुमने भीतर जाने ही क्यों दिया?

रामबली का बाप—अब यह लो! हर तरह से मेरी ही मुसीबत

है ! किसकी बात सुनूँ, किसकी नहीं ? उससे कहा कि भैया, बाहर बैठो, रामचरन आता ही होगा तो ऐसा आँख तरेर कर देखा जैसे खा ही जायगा। बोला—तुम गैर समझते हो ? रामचरन का मुझ पर पूरा विश्वास है। तुम अभी चार दिन से आए हो, हमारा रामचरन का घरौआ है। मैं चुप रह गया। उधर, जब वह भीतर गया तब बहू ने भी कुछ नहीं कहा साइत। अब तुम भी आकर मुझे ही बिगड़ रहे हो। यह तो मैं पहले से ही जानता था। तभी तो डर रहा था कि कहीं कुछ अनरथ न हो जाय। मगर भैया, एक बात बतला देता हूँ। तुम यह मत समझना कि मैं सो रहा था, मैं बराबर ही भीतर कान लगाए था। जरा भी तलबिचल की भनक कान में पड़ती तो मैं उसका खून पी जाता। बारे कुछ हुआ नहीं, यही गनीमत थी ! भैया, इसी के पीछे जेहल भुगत आया हूँ ! मगर बहू ने क्यों बैठा लिया ?

रामबली का बाप राजे को बहू कर पुकारता था। रामचरन को राजे पर क्रोध आया। कहाँ तो मेरे सामने सती लक्ष्मी बनती है, कहाँ एक पराए मरद के साथ इतनी रात को बैठी ही-ही कर रही है। तिरिया-चरित्तर है और क्या ! नहीं तो माधो से क्यों घुलमिल कर बैठी बात कर रही है ? आज देखा, मौक़ा अच्छा है। मैं घर पर हूँ नहीं, जी की हविस निकाल ली जाय। अगर ऐसी बात नहीं थी तो क्यों नहीं उसने माधो को गर्दनियाँ देकर बाहर निकाल दिया ? शोर ही मचाती। जरूर दोनों में कुछ साठ-गाँठ है ! प्रभुत्व की भावना और उत्तेजना में उसने यह नहीं सोचा कि राजे जैसी परिस्थितियों में रहनेवाली स्त्रियों के लिए किसी को गर्दनियाँ देकर बाहर निकालना या शोर मचाना, दोनों ही कठिन हैं। वह स्वयं भय के कारण दुबक जायँगी पर मुँह से आवाज़ नहीं निकाल सकतीं ? पुरुष की भूखी-प्यासी दृष्टि का खुलकर सामना करने का साहस ऐसी स्त्रियों में नहीं होता। वह शिक्षा ही इन्हें नहीं मिली। अवश्य ही निम्न कही जाने-

वाली श्रेणी की स्त्रियाँ मध्यवर्गीय स्त्रियों की अपेक्षा अधिक साहसी होती हैं और पराए मर्दों के सामने निकलने का अभ्यास भी उनको होता है, पर इतने से ही पुरुष की पाशविकता का सामना कर पाने का साहस उनमें नहीं आ सकता।

रामबली के बाप से और कुछ न कहकर रामचरन ने धड़ से ओसारे का द्वार भीतर ठेल दिया। उसने जो देखा वह उसे आश्चर्य-चकित कर देने को पर्याप्त था। ओसारे का जो द्वार भीतर कोठरी में खुलता था वह अन्दर से बन्द था, दिया भी ओसारे में ही रखा था। माधो बन्द द्वार के पास खड़ा प्रणय-निवेदन कर रहा था पर भीतर से कोई उत्तर न पाकर उसे बड़ी झुँझलाहट हो रही थी। द्वार खुलने का शब्द सुनकर माधो ने घूमकर देखा—सामने रामचरन खड़ा है उसे काटो तो ख़ून नहीं! आखें फाड़े देखता रह गया। रामचरन ने सारी परिस्थिति समझ ली। यह सहसा ही भीतर घुस आया होगा और राजे भाग कर कमरे में हो रही होगी। दम भर में ही पतिता राजे देवी के पद पर जा बैठी और रामचरन का सारा क्रोध माधो पर केन्द्रित हो गया। क्रोध से काँपते हुए उसने पूछा—माधो, तुम यहाँ क्या कर रहे हो?

माधो मारे भय के हकलाने लगा मैं...मैं तो तुमसे मिलने आया था.....था! तुम मिले ही नहीं.....मैं तो तुम्हारा इन्तजार कर रहा था!

धरती पर पाँव पटक कर रामचरन बोला—मेरा इंतजार बाहर बैठ कर नहीं हो सकता था? तुम भीतर क्यों आए?

माधो ने परिस्थिति देखकर अपने को सम्हाला—तो बिगड़ते क्यों हो? लो, मैं जाता हूँ।

रामचरन ने रास्ता रोककर कहा—अब कहाँ जाओगे? अब तो हाथ-पाँव तुड़वाकर ही जाने पाओगे, लुच्चे कहीं के! तुझे सरम भी

नहीं आती ? अब मैं समझ रहा हूँ कि तुझे मुझसे इतनी हमदर्दी क्यों थी ? जब मैं घर में नहीं था तब तुम भीतर आए ही क्यों ? बाहर रामबली के बाप ने जब रोका तब तुमने कहा कि हमारा-तुम्हारा घरौआ है। घरौआ की ऐसी तैसी !

राजे ने भीतर से जब पति का स्वर सुना तो उसे कुछ ढाढ़स हुआ, धीरे से ज़रा-सा द्वार खोलकर बाहर झाँका। उसे देखते ही माधो ने कहना शुरू किया—तो मैं...तो मैं कुछ कर थोड़ा ही रहा था। मैं तो यों ही बैठा हुआ था। यह तो भीतर कमरे में थीं।

रामचरन—हाँ, मैं देख रहा हूँ कि यह भीतर कमरे में थी। पर इसके यह मतलब नहीं कि तुम भीतर आकर बैठो। मैं तो पूछ रहा हूँ कि तुम भीतर आए ही क्यों ?

माधो बिचारा धर्मसंकट में पड़ा चुप रहा।

इसी समय रामबली का बाप उठकर भीतर आ गया, मुँह बनाकर माधो की ओर देखकर बोला –क्यों माधो, रामचरन भैया से तुम्हारा घरौआ था न ! अब यह क्या सुनता हूँ ? वह तो कहो, न जाने क्या सोचकर मैंने तुम्हें छोड़ दिया, वरना तुम्हारे हाथ-पाँव सही सलामत न दिखाई पड़ते। गाँव के पटवारी मुंशी बिन्दानरायण को पीटकर चौदह साल जेल की हवा खाई, अब तुम्हें पीटकर चौदह साल की हवा और खा आता। अब तुम्हारा घरौआ कहाँ गया ?

माधो कुछ बोलने की स्थिति में नहीं था, अब भी चुप ही रहा।

रामचरन ने आगे कहा—देखो माधो, तुम जब अपने बाक़ी रुपए छोड़ने को तैयार हो गए तभी मेरे मन में खुटका हुआ था। उस दिन रात को तुम घर आए और रास्ते में दूध का दाम दिया तब सन्देह और भी दृढ़ हो गया। उसी बखत राजे ने मुझे चेताया था कि बिना मतलब के कोई किसी की मदद नहीं करता। तुम जो इतनी हमदर्दी दिखा रहे हो तो जरूर कुछ दाल में काला है। उसके

बाद तुम छठ्ठी-बरही का कुल सामान ले आए। मगर मेरी आँखों पर तब पट्टी बँधी हुई थी। अगर ऐसा न होता तो तभी समझ लिया होता कि तुम्हारी नीयत खराब है। जी में तो आता है कि अभी तुम्हारा गला घोंटकर मार डालूँ। ऐसे आदमी का तो मुँह देखना भी हराम है। कुत्ते की तरह दूसरों के घर की मेहरिया सूँघते फिरते हो, तुम्हारे घर भी कोई ऐसे ही झाँके तो? आखिर तुम्हारे घर भी तो बहू-बेटी हैं!

माधो ने कठिनाई से गला साफ़ करते हुए कहा—तुम तो नाहक़ गरम हो रहे हो रामचरन! अगर मैं……!

बात काटकर रामचरन बोला—अब चुप ही रहो माधो, बात मत बढ़ाओ। भला चाहो तो अभी मुँह काला करके यहाँ से चले जाओ। अगर ज़्यादा गुस्सा दिलाओगे तो मेरा हाथ छूट जायगा।

अगर और समय होता तो शायद माधो इस अपमान को न सह सकता पर इस समय उसकी स्थिति वैसी ही थी जैसी किसी चोर की सेंध लगाते समय पकड़ जाने पर होती है। एक ओर बात ज़्यादा बढ़ने पर रामचरन द्वारा पिट जाने का भय था, दूसरी ओर रामबली का बाप बाघ की तरह सिर पर सवार था। अगर यह दोनों मिलकर गुँथ गए तो उसकी हड्डी-पसली तक का पता न चलेगा। उसने चुप-चाप टल जाना ही श्रेयस्कर समझा।

उसके चले जाने के बाद भी रामचरन थोड़ी देर तक क्रोध से उबलता रहा। राजे की बात उसके मन में घूम रही थी। उसने तो पहले ही उसे चेताया था। अन्धा था वह जो पहले नहीं समझ सका। सच ही तो, अगर कोई मतलब नहीं था तो क्यों माधो ने उस दिन अपने उधार के पैसे छोड़ दिए? भले ही मैं दे नहीं सकता था पर वह तो सरे-बाज़ार मुझे बेइज्जत कर सकता था! धक्का-फ़ज़ीहत कर सकता था! क्यों उसने उस दिन दूध के दाम दिए? क्यों उतनी

रात को क्वार्टर देखने आया ? क्यों मेरे झूठ-मूठ कहने पर भी छठी-बरही का सारा सामान बाज़ार से ख़रीद लाने पर उतारू हो गया ? क्यों मुझ से इतनी हमदर्दी दिखाई ? अगर उसके मन में पाप नहीं था तो आज आकर बाहर क्यों नहीं बैठा ? सूने घर में, अकेली जवान औरत के पास इतनी रात को क्यों जाकर बैठा ? अगर कोई ऐसी-वैसी बात नहीं थी तो राजे उसे देखते ही कोठरिया में क्यों घुस गई ? और सबसे बढ़कर अब उसे यह टीसने लगा कि क्यों मैंने उसके हाथ-पाँव तोड़कर नहीं रख दिए ? उसका गला क्यों नहीं मरोड़ दिया ? मेरी गरीबी का नाजायज़ फ़ायदा उठाने आया था। मैं क्या जानता था कि कभी चार पैसे से मेरी मदद कर देने के कारण वह मुझ से इतना भारी दाम वसूल करना चाहता है ?

राजे पास आकर बैठ गई और सोए हुए बच्चे को रामचरन के आगे चटाई पर डाल दिया। बोली—रात बहुत हो गई है। खा-पी कर सो रहो। सबेरे काम पर भी तो जाना है !

बच्चे की नन्हीं-नन्हीं जाँघों पर हाथ फेरते हुए रामचरन ने पूछा—माधो तुमसे क्या कहता था ?

राजे—अब उन बातों को जाने दो। चलो, खाना खा लो।

रामचरन—नहीं। जरा सुनूँ तो कि क्या कहता था।

राजे— कहता क्या था ? मैं क्या सुनने के लिए बैठी हुई थी ?

रामचरन—तब भी, कुछ तो कहा होगा। कैसे घुस आया ?

राजे—मैं बैठी भैये को सुला रही थी। सिर उघड़ा था, तन पर भी कपड़ा ठीक-ठिकाने नहीं था। न जाने कैसे एकदम दबे पाँव भीतर चला आया। पहले तो मैं समझी, तुम होगे। मालिक के यहाँ से साइत जल्दी चले आए हो ! पर जब घड़ी भर तक कोई बोली नहीं सुनाई दी तो मैंने सिर घुमाकर देखा ! देखकर सन्न रह गई। वह ठीक मेरे पीछे खड़ा था, ऐसे घूर रहा था जैसे मुझे जीता ही

निगल जायगा। मैं बड़े अरदब में पड़ गई। न खड़ी हो सकती थी, न बैठी ही रह सकती थी। डर रही थी कि कहीं झपटकर पकड़ न ले। आखिर में, मैं उठ ही रही थी कि वह हाथ पकड़ने को झुका। मैंने एक धक्का दिया, वह मुँह के बल उसी चटाई पर गिर पड़ा। मैं किसी तरह भैये को उठाकर कोठरी में भागी। न जाने कहाँ से मुझ में उस बखत इतनी तागत आ गई। जब मैं कोठरी में भैये को जल्दी से खाट पर डालकर दरवज्जा बन्द करने जा रही थी तभी वह उठ-कर आया। मैंने भड़ाक से किवाड़ बन्दकर दिया। वह बाहर ही खड़ा बकने लगा—क्यों जलाती हो राजे रानी! देख, मैं तेरे लिए इतना खरच-बरचकर रहा हूँ। मेरे दिल पर छुरी चल रही है। मैं तेरे लिए मर रहा हूँ·····!

रामचरन तपाक से उठा—आज उस साले को सचमुच मार कर ही तब दम लूँगा। वह अपने को समझता क्या है?

राजे ने हाथ पकड़कर उसे फिर बैठा लिया। उसे आशंका हुई, कहीं यह आधी रात को उसके घर जाकर ऊधम न मचाएँ। खाम-खाह थाना-पुलुस हो! बोली—पागल हुए हो क्या? जब दूसरे के सामने हाथ फैलाया तब यह जोम कहाँ गया था? कहती थी कि उसका यह सब खरच-बरच करने में कुछ मतलब जरूर है, तब तो नहीं माने! अब चले हैं जवाँमरदी दिखाने! जाने दो। जो हो गया सो हो गया। मेरा ले ही क्या गया?

फिटकार खाकर रामचरन भलेमानुसों की तरह बैठ रहा। उसका निर्बल क्रोध फिर राजे पर जा पड़ा। यह क्यों मुझे रोकती है? इसको क्यों माधो के लिए इतना दरद है? कहा—मान लो, वह तुम्हारे तन पर हाथ लगा ही देता, तो!

राजे एकदम चण्डी-सी गरज उठी—हुँः, हाथ लगा देना ऐसा ही तो आसान है न! मुँह न फेंक देती उसका मैं? मेरे पास मेरा

कुँअर कन्हैया है। कौन मुझे छू सकता है? मेरा ऐसा मरद है! मेरे तन पर जो हाथ लगाने की हिम्मत करेगा उस पर अकास से बिजली गिर पड़ेगी। सत् का परताप है, हँसी-ठट्ठा नहीं है।

सतीत्व के तेज से गर्वित इन शब्दों से रामचरन कुछ आश्वस्त हुआ पर खाना-वाना समाप्त कर सोने जाकर भी पड़ा करवटें बदलता रहा। बड़ी रात तक उसे नींद नहीं आई। मालिक के यहाँ से जो कार्य पूरा करने का वचन देकर आया था वह इस समय भी उसे याद था। कल सबेरे क्या होगा? वह बिचारा गारा-चूना ढोनेवाला बिल्डिंग-डिपार्टमेण्ट का मज़दूर कैसे बिनता और तिरासलवालों को रोक सकेगा? अब उस काम से मुँह भी नहीं मोड़ सकता। मालिक के सामने बड़ी नामूसी होगी! अगर उनको दिया वचन पूरा करने जाता है तो क्या अजब है कि उसके हाथ-पाँव ही न तोड़ डाले जायँ! साँप छँछूदर जैसी गति उसकी हो गई है। लेकिन अब चाहे जो हो जाय, वह पीछे क़दम नहीं रखेगा। चाहे गाली खाय, मार खाय, जो हो! बाहर तो मालिक रहेंगे ही। अगर कुछ ऐसी-वैसी बात देखूँगा तो चट् उनसे जाकर कहूँगा। वह उपाय बतायेंगे।

राजे सो गई थी। बड़ी रात गए उसे प्यास लगी। धीरे से उठकर घड़े के पास गई ताकि रामचरन की नींद न उचट जाय। रामचरन जान गया था पर गुमसुम पड़ा रहा। लौटकर फिर सोने लगी तो रामचरन के शरीर में हलका कम्पन देखकर पूछा—अभी जाग रहे हो क्या?

रामचरन करवट घूम गया, कहा—हाँ, नींद नहीं आती।

राजे—गर्मी भी तो बहुत है।

राजे पंखी उठाकर झलने लगी। रामचरन को लगा, हाँ भैया, यहाँ मजे से घर में पड़ी हो न! तुम्हें क्या पता कि गर्मी के सिवाय और भी कुछ हो सकता है जिससे नींद न आए। उसने पंखी ले ली, बोला—रहने दो, सोओ।

राजे—सोओगे नहीं तो कैसे काम चलेगा भाई ! सबेरे काम पर जाओगे तो औंघाते रहोगे।

रामचरन—काम पर जाकर औंघाने की तुझे सूझी है, यहाँ हाथ-पाँव तुड़वाने का डर लगा है।

राजे घबरा गई—क्या मतलब है ? कैसा हाथ-पाँव तुड़वाना ?

रामचरन ने सब बतला दिया कि कल क्या होगा और मालिक ने उसे क्या काम सौंपा है। इस काम में कितना बड़ा खतरा है यह भी बढ़ा-चढ़ाकर उसने बतलाने में कोताही नहीं की। मार-पीट की आशंका से जहाँ एक ओर राजे चिंतित हुई वहाँ मालिक ने उसके पति को इतना बड़ा काम सौंपा, इससे मन-ही-मन उसे प्रसन्नता भी हुई। मालिक का ही काम उसने इसे समझा, और मालिक के काम में वह जान तक दे सकती है। अगर आज उन्होंने एक काम कह ही दिया तो यह मुँह चुराकर बैठें, यह वह नहीं पसन्द कर सकती थी। हाँ, चोट-चपेट न लगे, यह वह ज़रूर चाहती है। उसने कहा—मुझे खुशी इस बात की है कि मालिक ने तुम्हें इस काबिल समझा !

रामचरन- तुझे खुशी की पड़ी है यहाँ जान साँसत में है। अगर सब न माने और हाथ छोड़ दिया तो मैं बेकार हो जाऊँगा।

राजे—ऐसा क्या हाथ छोड़ेंगे ! तुम मुँह से बात करोगे, वह भी मुँह से बात करेंगे। कोई लड़ाई तो करनी नहीं है।

स्पष्ट था कि राजे इतना निःशंक रामचरन नहीं हो सकता था। इसी ऊहापोह में सबेरे का धुँधला प्रकाश आँगन में फैल गया और रामचरन को मिल के लिए तैय्यार होना पड़ा। वह गले में कुरता डालता जा रहा था और एक अज्ञात आशंका से छाती धड़कती जा रही थी। क्या जाने मिल में क्या हो जाय ! कोई मँजा हुआ मज़दूर होता, ऐसी परिस्थितियों में पहले पड़ चुका होता तो इतना विचलित कदापि न होता पर रामचरन के लिए यह स्थिति नई थी।

मिल के फाटक पर भारी भीड़ जमा थी। मज़दूर बहुत उत्तेजित दिखते थे। यद्यपि बाहर कोई उपद्रव करने का उनका इरादा नहीं था, फिर भी अन्दर के निश्चय की सूचना उनके मुखों पर झलक रही थी। फाटक से थोड़ी दूर पर लखनलाल, तरुलता और रामप्रसाद खड़े थे। सड़क की दूसरी पटरी पर कुछ दूर एक पेड़ के नीचे महादेव अपनी विधवा भौजाई के अपमान का बदला चुकाने का नाटक देखने के लिए खड़ा था। उसके मुख पर प्रतिहिंसा खेल रही थी। अभी सात बजकर कुछ मिनट हुए थे, मिल का फाटक सवा सात बजे खुलता था, पर मज़दूरों की एक जमात—विशेषतया बिनता और तिरासल के मज़दूरों की—पहले से ही आकर जम गई थी। बाहर के फाटक के पहरेवाले सिपाही भी हैरान थे, आज यह सब इतनी जल्दी कैसे आ गए, पर सही बात का पता किसी को नहीं था। खोम्चेवाले खुश थे कि बिक्री आज जल्दी शुरू हो गई। रामचरन ने जो आकर यह सब देखा तो उसके होश उड़ गए। उसने दीन-भाव से राजे की ओर देखा जैसे कह रहा हो—और मालिक की बड़ाई करो। अपना तो दूर खड़े हैं, मुझे इन हूशों से भिड़ने को भेज दिया है। राजे भी एक बार भावी विपत्ति की आशंका से काँप उठी किन्तु मालिक को वहाँ उपस्थित देख उसे ढाढ़स बँधा। वह तो भीतर चली गई, बच गया रामचरन। स्त्रियों को बाहर भीड़ में नहीं खड़ी होना पड़ता था।

मज़दूरों के आज के इस प्रदर्शन में कोई योग्य नेतृत्व नहीं था। सबों ने स्वयं ही इसका निर्णय किया था और स्वयं ही इसकी रूप-रेखा तैयार की थी। मज़दूरों के किसी प्रदर्शन के लिए जिस संयत चेष्टा और नियंत्रित कार्य-शैली की आवश्यकता होती है वह उनके पास कहाँ थी? एक भावावेश में वह सब इस मार-पीट के नतीजे पर पहुँचे थे और ग़लत या सही तरीक़े से उस काम को पूरा कर डालना चाहते थे। एक व्यक्तिगत प्रश्न समूह के हाथों पड़कर प्रदर्शन का

कारण बन गया था और व्यक्तिगत बदला लेकर वह समाप्त भी हो जायगा। रामचरन लोगों से मालिक की कही हुई बात दुहराने लगा। लखनलाल देख रहे थे कि सब उस बेचारे पर हँस रहे हैं। वह कभी दौड़कर इस मज़दूर के पास जाता कभी उसके पास, पर कोई-कोई उसकी बात सुनकर खिल खिलाकर हँसने लगते, कोई धक्का देकर दूर ठेल देता, कोई बात ही नहीं सुनना चाहता। दो-तीन बार तो वह गिर-गिर पड़ा, टेहुने में चोट भी लगी। पर मालिक को सामने खड़ा देखकर उसको उत्साह बँधता, उठता और फिर लोगों से आरज़ू-मिन्नतें करता। राजे बाहर होतो तो उसकी यह दशा देखकर ज़रूर उसकी आँखों में आँसू आ गए होते।

घंटी बजने ही वाली थी कि उत्तेजित कारीगरों ने दूर से राम कृष्ण को आते देखा। जो प्रतिहिंसा मिल के भीतर जाकर शान्त होनेवाली थी वह बाहर ही भड़क उठी। आपस में दृष्टि-विनिमय हुआ, कुछ लोगों में धीरे-धीरे सलाहें हुईं और एक क्रूर-भाव सबके मुखों पर खेलने लगा। महादेव ने सांकेतिक भाषा में सब को सावधान किया। रामकृष्ण इन सब तैय्यारियों से अनवगत था—वह निश्चिन्त चला आ रहा था। उसका फाटक पर पहुँचना था कि चारों ओर से उस पर लात-जूतों की बौछार होने लगी। उसे एक क्षण का भी अवसर न मिला कि वह सम्हल सके। मिल के पहरे के सिपाही दौड़े पर स्थिति उनके क़ाबू के बाहर थी। एक मज़दूर शायद पहले से तैयार होकर आया था, उसने एक करौली निकालकर रामकृष्ण को भोंकनी चाही कि रामचरन ने उसका हाथ पकड़ लिया। इस क्रिया में करौली रामचरन के हाथ के तलुए को चीरती हुई निकल गई। वह हाय मारकर वहीं गिर पड़ा। भीड़ में, बीच-बचाव करते समय तरुलता को भी चोटें आईं, लखनलाल को भी एक मज़दूर द्वारा चलाई हुई ईंट माथे पर लगी। क्षण भर में ही जब युद्ध-स्थल ख़ाली

हो गया और मज़दूर सीधे-सादे भलेमानुसों की तरह घंटी बजने पर भीतर चले गए, उस समय देखा गया कि फाटक पर एक ओर लखनलाल माथा पकड़कर बैठे हुए हैं, सिर से रक्त गिर रहा है, रामचरन अचेत पड़ा हुआ है, तरुलता अपनी भीतरी चोटों को लिए बैठी है और रामप्रसाद निर्निमेष दृष्टि से सूने रण-क्षेत्र में घूम रहा है। थोड़ी दूर की धरती खून से लाल हो गई थी। जब तक शान्ति और सुरक्षा के ठीकेदार लाल पगड़ीवाले पहुँचें-पहुँचें, रामकृष्ण भी कराहते-कराहते उठकर बैठ गया था और जिन्होंने उसे मारा था उनके वंशों की खैर मना रहा था। पुलिसवाले आए, ज़ाब्ते की कारर्रवाई हुई और वह अपना फ़र्ज़ अदाकर चले गए। पकड़ते किसे, सब तो भीतर चले गए थे। हाँ, उनकी कर्त्तव्य-बुद्धि में यह अवश्य आया कि लखनलाल, तरुलता और रामप्रसाद को ही थाने लेते चलें किन्तु पास-पड़ोस के लोगों ने इसमें सहानुभूति नहीं दिखाई। वह सब इन लोगों को बीच-बचाव करते देख चुके थे! रामकृष्ण को उठाकर मिल के अस्पताल में मरहम-पट्टी के लिए ले जाया गया। लखनलाल और तरुलता वहाँ जाकर पट्टियाँ बँधवाने को प्रस्तुत नहीं हुए और रामचरन को भी वहाँ नहीं ले गए। उसे बड़े अस्पताल पहुँचाया गया।

किन्तु, व्यवस्था की रक्षा इतने ही से नहीं हो सकती थी। कुछ ठोस बात होनी चाहिए। नौ बजते-बजते मिल के मैनेजर साहब आए। उन्हें पता लगा तो बहुत बिगड़े। अगर इन सालों को यों ही छोड़ दिया गया, कुछ सज़ा न मिली तो यह शेर हो जायँगे। इनका सिर कुचल देना चाहिए। उन्होंने स्थानीय थाने को टेलीफ़ोन करके एक नया दस्ता पुलिस का बुलाया, साथ में एक सब—इन्सपेक्टर! यह शान्ति-रक्षक दल अपने हथियारों से लैस, रुआब के साथ मिल के सभी डिपार्टमेंटों में घूमा, साथ में मैनेजर साहब भी थे। जिन-जिन

मज़दूरों का नाम, अपमान न सह सकने के कारण या दबंग स्वभाव के होने के कारण या मज़दूर-सभा के सदस्य होने या उसका काम करने के कारण मिल के ब्लैक-बुक में पहले से टंका था, वह सब मैनेजर साहब के इशारों पर पुलिस द्वारा पकड़े गए और बाहर रामकृष्ण के सामने लाए गए। उसने उनमें से कुछ को पहचाना कि हाँ, यह मार-पीट में शरीक थे। कुछ को उसने झूठमूठ ही बता दिया। पुलिसवालों ने भर-पेट उन्हें मारा और दंगा और मार-पीट करने का जुर्म लगाकर पकड़कर ले गए।

मज़दूरों पर आतंक छा गया। मिल में पूर्ववत् काम होने लगा। हाँ, यह अवश्य है कि जो मिस्त्री, हेड जॉबर या सुपरवायज़र अभी तक शेर बने घूमते थे वह भयभीत हो गए। यह सबकी समझ में आ गया कि पुलिस भले ही चार-छ-दस आदमियों को पकड़ ले जाय पर यह आग अब शान्त नहीं की जा सकती। मज़दूरों ने दिखला दिया कि वह जानवर नहीं हैं। उनसे भले आदमियों की तरह व्यवहार करो तो चाहे जो काम उनसे ले लो, कहो तो वह तुम्हारे घर जाकर झाड़ू-बुहारू भी कर आयें—और करते ही हैं—पर अकड़ दिखाकर, अफ़सरी के रोब से या तंग करके काम लेना चाहो तो वह नहीं झुकेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक तरह से यह मज़दूरों की भारी विजय थी और उनके विषय में यह भावना लोगों में भर जाना साधारण बात नहीं थी। इसका स्वागत लखनलाल भी करते किंतु यदि सुयोग्य नेतृत्व होता तो इस विजय की रूप-रेखा और ही होती। मानव-रक्त इतना सस्ता नहीं है जो इस साधारण से कार्य के लिए बहाया जाय। यह नहीं कि रक्त-पात से लखनलाल को डर लगता हो किंतु हर कार्य का समय होता है। एक व्यक्तिगत प्रश्न को लेकर आपस में मार-काट करना या व्यक्तिगत बदला लेने के लिए रक्तपात की शरण लेना वर्ग का धर्म नहीं है। न तो वर्ग-संघर्ष का यह रूप ही है। कारीगरों का

यह उद्धत प्रदर्शन वर्ग-संघर्ष का परिचय नहीं था। इस तरह के कार्यों में लखनलाल की सहानुभूति नहीं हो सकती थी।

राजे को रामचरन के घायल होने का समाचार मिला तो चीख मारकर गिर पड़ी। अन्य औरतों ने उठाया, मुँह पर पानी के छींटे दिए तब कहीं जाकर होश आया। आँख खोलते ही पहला प्रश्न उसने किया—वह कहाँ हैं ?

लोगों ने बताया कि रामचरन को बड़े अस्पताल ले जाया गया है। वह तुरंत वहाँ जाने को प्रस्तुत हुई। बड़ी कठिनाई से रोका गया और साहब से छुट्टी लिखाकर क्वार्टर पहुँचाया गया। तरुलता अपनी चोटों की चिंता न कर वहाँ पहले ही पहुँच गई थी। वह जानती थी कि राजे के लिए यह समाचार बड़ा कष्टकारक होगा ! स्वयं विवाहिता नहीं थी किंतु विवाहिता सती-स्त्रियों की मनोदशा जानती थी। तरुलता को देखते ही राजे ढाढ़ें मारकर रो पड़ी। यद्यपि रामचरन को कोई ऐसी सांघातिक चोट नहीं लगी थी जो इतने विपुल रोदन का कारण हो किंतु राजे को दुःख यही था कि वह उस चोट को देख नहीं सकी, रामचरन अचेत अवस्था में अस्पताल पहुँचाया गया। तरुलता ने उसे सम्हाला—क्या पागलपन कर रही है राजे ! रामचरन को हुआ क्या है ? ज़रा-सी चोट लगी है, एक-दो दिन में ठीक हो जायगी।

राजे ने फूटकर कहा—क्या करूँ, जी नहीं मानता देवीजी। वह कल कह रहे थे कि मिल में जाने क्या हो जाय। पर मालिक का हुकुम था, मैंने मना नहीं किया। मुझे उनके पास ले चलो देवी जी। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

तरुलता—अच्छा, तो शाम को चलना। मैं लिवा चलूँगी। कहा तो। अब यह रोना बन्द करो। रामचरन बहादुर है। अच्छा काम करते चोट खाई है। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।

तरुलता बैठी रही। राजे का रुदन-वेग कम हुआ पर बिसूरती

रही। उसी समय लखनलाल और रामप्रसाद आए। लखनलाल के माथे पर पट्टी बँधी हुई थी। बहुत-सा रक्त निकल जाने के कारण अत्यधिक कमज़ोरी मालूम हो रही थी पर अस्पताल में ही गरम दूध आदि दवा के साथ पीकर वह किसी तरह ताँगे पर यहाँ तक आने में समर्थ हो सके थे। आते ही टूटी चारपाई पर—जिस पर तरुलता बैठी हुई थी—ढह पड़े। उनके भी माथे में पट्टी बँधी देख राजे और भी विचलित हो पड़ी। उसने यद्यपि किसी पर प्रकट नहीं किया—कहने को बात भी नहीं थी—पर थोड़ी देर से उसके मन में एक स्वार्थी और नीच भाव खेल रहा था। वह सोच रही थी कि मालिक ख़ुद तो डर के मारे आगे नहीं गए, इनको भेज दिया! अब लखनलाल के माथे पर की पट्टी देखकर अपने ही मन में वह धिक्कार देने लगी। हाय, ऐसे देवता आदमी के लिए मैं ऐसा सोच रही थी! भगवान मुझे मेरे पाप का डण्ड देंगे!

लखनलाल ने ज़रा सुस्ताकर हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—भाई राजे, कमज़ोरी मालूम पड़ती है। थोड़ी गर्म-गर्म चाय पिलाओ। तरु, तुम्हें भी तो चोट आई है। हूशों ने तुम्हें भी दो-चार धौल जमा ही दिए।

अब राजे ने समझा कि देवी जी को भी चोट आई है। यह लोग आदमी हैं या देव-देवी! कहीं कोई मिस्त्री मार खाने पाला था, उसके लिए सब-के-सब बीच-बचाव करने गए। अगर वह मार खा ही जाता तो इन लोगों का क्या बिगड़ता? वह बिचारी यह नहीं सोच सकी कि यह एक मिस्त्री के मार खाने की बात नहीं है, प्रश्न है केवल इस अवसर पर किसी तरह का उपद्रव न होने देने का। लखनलाल के मुँह से चाय की फ़र्मायश उसे बहुत अच्छी लगी—मालिक को कहीं ज़रा भी संकोच उस ग़रीब से चाय माँगने में नहीं हुआ। मालिक की तरह के और कितने लोग हैं? ग़रीबों के साथ घुल-मिल जाने के लिए भी पाँच हाथ का कलेजा चाहिए!

चाय, चीनी और दूध आदि का प्रबंध रामप्रसाद को करना पड़ा। चीनी मिलने में कठिनाई देख राजे ने सब हाँडियाँ देखनी आरंभ कीं। अन्त में एक हाँडी में थोड़ी सी चीनी एक पुड़िया में रखी मिल गई—अहोभाग्य! उधर राजे चाय तैयार कर रही थी, इधर लखनलाल, तरुलता और रामप्रसाद में बातचीत शुरू हुई। तरुलता ने कहा—आप को तो काफ़ी चोट आ गई लखनलाल जी!

लखनलाल ने हँसकर कहा—अपनी कहो। वह चुन-चुनकर धौल जमाई हैं सबों ने कि पीठ ही जानती होगी। मेरी चोट तो दिखाई पड़ती है!

अनायास ही तरुलता का हाथ पीठ पर चला गया, सुहलाकर बोली—मुझे तो यों ही मामूली-सी चोट आई है। पर इन्हें देखिए, डर के मारे नज़दीक भी नहीं गए!

रामप्रसाद ने अपनी ओर यह संकेत देखकर लखनलाल से कहा—देखो कॉमरेड, यह फिर मुझे छेड़ने लगीं। जैसे दो-एक धौल खाकर बड़ी बहादुरी की है। ऐसी-ऐसी चोटें न जाने कितनी खा चुका हूँ।

तरुलता—हाँ जनाब, लात खाते-खाते तो आप की ज़िन्दगी बीती है, मान लिया। और कुछ?

रामप्रसाद खिसिया कर चुप हो रहा। राजे तरुलता को इस तरह निर्द्वन्द, मुक्त-भाव से पराए मर्दों से बात करते देखकर मन में सोच रही थी, धन्य हैं देवी जी। मेरा तो ऐसे मुँह न खुले। इनको जैसे लाज-सरम कुछ है ही नहीं। उसी पलँग पर बैठी हैं जिस पर मालिक पौढ़े हैं। इनका हियाव कैसे पड़ता है? राम-राम, मुँह खोलकर, हाथ खोलकर बैठी हुई पराए मर्दों से हँस-बोल रही हैं। धन्य है इनकी हिम्मत को!

लखनलाल—मैं तो यह सोचता हूँ रामप्रसाद, आज की यह

मार-पीट क्या अन्तिम है ? पुलिस दस-पाँच आदमियों को पकड़ ले गई, वहाँ थाने पर मार-पीट होगी, उन्हें दफ़ा ३०७ या ३०६ में चालान कर जेल भेज देंगे, इतने से ही यह विद्रोह की आग शान्त न होगी। इससे तो कटुता और बढ़ेगी। हम यों ही बदनाम हो रहे हैं, कहा यह जाने लगेगा कि हमने इन ग़रीबों को पकड़वा दिया है। आज तो यह एक व्यक्तिगत प्रश्न को लेकर भिड़ गए, अभी इनके सामने बड़े-बड़े प्रश्न हैं। भत्ते की कमी या बिलकुल बन्द होने की आशंका है, मिलों में छटनी ज़ोर-शोर से शुरू हो गई है। सबसे बढ़कर ग़ल्ले और वस्त्र का सकट है। अभी इनके लिए हमें बहुत कुछ करना है। अगर इनकी शक्ति इसी तरह छोटी-छोटी बातों को लेकर छिन्न भिन्न होती रही तो संगठन का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा। इनमें मिलकर हमारा इतने दिनों का प्रचार-कार्य बिल्कुल व्यर्थ होता जा रहा है। आज की इस घटना ने मुझे सचेत कर दिया है। मुझे लगता है कि हमें नए सिरे से स्वयं अपना संगठन करना होगा, शिक्षक की शिक्षा यदि शिष्य पर प्रभाव नहीं डालती, वह कुछ सीख नहीं पाता तो यह केवल उस शिष्य का ही दोष नहीं है। कहीं न कहीं उस शिक्षा में या शिक्षक में भी दोष है।

तरुलता—पर लखनलाल जी, यहाँ मेरा आप से मतभेद है। हमने कभी किसी को उलटा पाठ नहीं पढ़ाया। मज़दूरों को गुमराह कर सस्ती वाहवाही लूटने की चेष्टा हमने कभी नहीं की। हमने जब कही, श्रेणी-संघर्ष की ही बात कही। अगर मज़दूरों ने हमारी बात नहीं समझी या उसका उलटा अर्थ लगाया तो यह दोष हमारा नहीं बल्कि उनकी समझ का है। वास्तव में यह काम उन लोगों का है जो मज़दूरों को बरग़लाकर अपने उल्लू सीधे करते हैं।

लखनलाल—किसी का भी काम हो, हमें इस स्थिति से बाहर होना है। थोड़े से स्वार्थी लोग हमारे सारे प्रयत्नों पर पानी फेर दें

और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें, यह नहीं होने देना होगा। हमें मज़दूरों को अपनी बात समझानी होगी।

रामप्रसाद—लेकिन जो कुछ हम कर रहे हैं, उसके सिवाय और उपाय क्या है ?

लखनलाल—उपाय मैं बताऊँगा। एक बात कई दिनों से मेरे मन में घूम रही है और मैं तरुलता से कहना चाहता था। ज़रा यह चोट-वोट से फ़ुरसत पा लें तो कहूँ।

तरु के पेट में चूहे कूदने लगे। ऐसी कौन-सी बात है जो लखनलाल जी उससे कहना चाहते हैं। उसने पूछा—कौन-सी बात लखनलाल जी !

लखनलाल—यह लो, मैं जानता था कि इससे चुप न बैठते बनेगा ! अरे भाई, सुन लेना। जल्दी क्या है ?

इसी समय राजे लोटा और गिलास में चाय बनाकर ले आई। उसे अपने यहाँ बर्त्तनों की कमी पर संकोच हो रहा था। एक ही गिलास में तीन-तीन आदमी चाय कैसे पिएँगे ? उसने पहले लखनलाल को दिया। उन्होंने पूरी गिलास चाय ख़ाली कर दी और गिलास तरुलता की ओर बढ़ा दिया। तरुलता ने पानी से गिलास धो डाला और लोटे से और चाय लेकर पी डाली। यही क्रिया रामप्रसाद ने भी की। राजे आश्चर्य से मुँह फाड़े देखती रह गई। उसे रामप्रसाद के बर्त्ताव पर आश्चर्य हुआ—एक औरत की जूठी चाय यह कैसे पी गए। एक ही बात है, चाहे जूठे गिलास में पी, चाहे जूठी पी। छुआ-छूत, धरम-अधरम का विचार भी जैसे इन्हें नहीं रह गया है ! तरुलता जब गिलास रामप्रसाद को दे रही थी तब राजे ने धीरे-से उससे कहा भी—लाइए, इसे माँज दूँ।

तरुलता—रहने दो, माँजने की क्या ज़रूरत है ? धोकर पी लेंगे। चाय गरम है और गरम चीज़ में कोई बीमारी का डर नहीं होता।

राजे—बीमारी का डर न हो पर देवी जी, ऐसे अच्छा नहीं लगता। जूठा-मीठा……!

तरुलता हँसने लगी—जूठा-मीठा? जूठा इसीलिए तो बराया जाता है कि कोई ख़राबी न हो! यह सच है कि हमारे यहाँ जिस-तिस का जूठा खाना-पीना बराया जाता है और इसीलिए बर्त्तनों को माँजने-धोने का तरीक़ा निकाला गया है। पर इसमें अच्छा लगने-न लगने का सवाल नहीं है। यह ख़ाली सफ़ाई के लिए ज़रूरी है। तुम लोग उसे धर्म में गिनने लगीं। सफ़ाई बहुत ज़रूरी चीज़ है और न केवल बर्त्तनों की, बल्कि ख़ुद की और घर के सब चीज़ों की। मुँह में तथा ओठों पर तरह-तरह की बीमारियों के कीड़े लगे रहते हैं जो दिखाई नहीं पड़ते। मान लो, तुमने किसी ऐसे ही आदमी के जूठे बर्त्तन में कुछ खाया-पिया जिसे कोई बीमारी है। तब वह न दिखाई पड़नेवाले कीड़े तुम्हारे ओठों में भी लग जायँगे। इसीलिए, एहतियातन, सभी बर्त्तनों को मिट्टी से माँजने-धोने की रीति चली। इस समय इसका कोई डर नहीं था। चाय गरम थी और गरम चीज़ में कीड़े यों ही मर जाते हैं। तभी मैंने नहीं माँजने दी। रह गई अच्छी-बुरी लगने की बात, तो इन्हीं से पूछो, क्या इन्हें मेरा जूठा खाना पीना बुरा लगता है?

राजे रामप्रसाद से यह पूछ नहीं सकती थी, केवल मुसकिराकर घूँघट की ओट से देखकर रह गई। रामप्रसाद भी एक बार तरुलता की ओर, एक बार राजे की ओर देखकर हँसने लगा, बोला—यह मेरी होनेवाली बीवी हैं, राजे! तुम नहीं जानतीं क्या? इनसे पूछ देखो!

मुन्ने रो पड़ा। राजे उठकर उसे दूध पिलाने भीतर कोठरी में चली गई। सबके सामने कैसे पिलाती? रामप्रसाद के मन में एक बात बहुत देर से ऊहापोह मचा रही थी। विशेषकर तरुलता की इस समय

की चुहल ने उसे और भी उत्तेजित किया। इस समय अवसर देखकर उसने ऐसे स्वर में लखनलाल से कहा, जैसे कोई बहुत बड़ा क़िला फ़तह किया हो—कॉमरेड, आपने एक बात सुनी ? बिलकुल ताज़ी ख़बर है।

ऐसी कौन-सी ताज़ी ख़बर हो सकती है जो लखनलाल ने न सुनी हो ! वह भी चकराए, तरु भी चकराई। आज की भीड़-भाड़ में और दौड़-धूप में लखनलाल को सुबह से अब तक अख़बार देखने का अवकाश नहीं मिला था। उन्होंने पूछा—क्या ख़बर है भाई ? मैंने तो आज अख़बार देखा ही नहीं ! क्या वायसराय का कोई नया 'मूव' है ?

रामप्रसाद हँसा—अरे, वायसराय क्या 'मूव' देंगे ? और, यह ख़बर अख़बार में अभी छपी भी नहीं, अब छपेगी। अभी कल की ही तो बात है !

लखनलाल और तरुलता और भी चकित हुए। किस एजेन्सी से रामप्रसाद के पास एकदम ताज़ी ख़बर आ गई ! तरुलता सोचने लगी, कल रात उतनी देर तक तो यह मेरे साथ ही रहे। कोई बात होती तो मुझे भी मालूम होती ! कुछ समझ न पाने के कारण दोनों विस्मित-से देखते ही रह गए।

रामप्रसाद ने इस स्थिति का आनन्द उठाते हुए कहा—कल रात एक घटना हो गई। असंभव संभव हो गया। नमक क़ानून टूट गया।

तरुलता—तो, आख़िर हुआ क्या ?

इसका उत्तर तरु को न देकर रामप्रसाद ने लखनलाल से कहा—तरु ने मुझ से शादी करने का तय कर लिया है कॉमरेड !

एक ओर लखनलाल जहाँ आश्चर्य से मुँह फाड़े तरुलता की ओर देखते रह गए, दूसरी ओर तरुलता इस बात को ठीक इस तरह नहीं प्रकट होने देना चाहती थी। यह नहीं कि वह संकोच के कारण

धरती में गड़ने लगे किन्तु स्त्री-सुलभ लज्जा की लाली उसके कानों की लोरियों पर झलकने लगी। धीरे-धीरे रामप्रसाद ने कल रात की सारी कथा कह सुनाई और लखनलाल चुपचाप सुनते रहे। जब पूरी बात सुन लेने के बाद भी वह कुछ नहीं बोले तो तरुलता ने स्वयं पूछा—कहिए लखनलाल जी, मैं क्या करती? ऐसी दशा में कोई भी लड़की क्या करती? मैंने क्या कुछ बुरा किया?

अब लखनलाल ने धीरे-धीरे कहा—मैं जानता था, एक दिन यह होगा ही। तुमने जब होटल में उस दिन मुझसे विवाह कभी न करने की बात कही थी, तब मैंने उस बात पर पूरा विश्वास कर लिया हो, ऐसा नहीं था। मैं समझ गया था कि यह तुम्हारे लिए असम्भव है। ना, ना, मुझे उन पोंगापंथियों में न गिनो जो पुरोहितों द्वारा मंत्र पढ़वाकर, ढोल-ढक्का बजाकर, घरातियों और बरातियों की भीड़ लगाकर जो विवाह होता है उसी को विवाह मानते हैं। वह तो विवाह का एक रूप-मात्र है, और कुछ नहीं, यद्यपि सामाजिक इतिहास की दृष्टि से यह रूप भी नगण्य नहीं। मैं विवाह को नर-नारी सम्मिलन का एक नाम समझता हूँ। सृष्टि-क्रम अबाध रहे साथ ही सामाजिक सुरक्षा भी छिन्न-भिन्न न हो, इसका ध्यान रखते हुए जिस रूप में भी नर और नारी आपस में मिलें, मैं उसे विवाह का नाम देने को प्रस्तुत हूँ। हाँ, इसके लिए हमें सामाजिक सुरक्षा आदि शब्दों की व्याख्या किंचित् परिवर्त्तित करनी होगी। सम्पूर्ण आत्म-समर्पण और हृदय के संचित अर्घ्यदान के साथ जो भी मिलन होगा उसे विवाह या ऐसा ही कुछ नाम देना होगा और उस मिलन के प्रतिफल को वैध मानना ही होगा। इससे अन्यथा दूसरा उपाय नहीं है। एक युवक ने एक युवती को देखा या एक युवती ने किसी दूसरे युवक को देखा, दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हुए—और ज़रूर होंगे—तथा अवसर मिलने पर दोनों ने यौन संबंध भी स्थापित कर लिया। इसे मैं विवाह का नाम देने को तैयार

नहीं हूँ, यद्यपि उनके शरीर-धर्म की पुकार की दृष्टि से यह उचित भी हो सकता है। विवाह या ऐसा ही कोई सम्मिलन इससे कुछ ऊपर की चीज़ है। वह दो हृदयों की एकान्त-निष्ठा चाहता है, एकतानता और समानता चाहता है, एक दूसरे की सम्पूर्ण जानकारी, आपस के स्वभाव, चाल-चलन, तौर-तरीक़े आदि का पूरा परिचय चाहता है, एक दूसरे पर किंचित् अधिकार चाहता है। इतना सब कुछ होने के बाद, एक दीर्घ-काल के परिचय और स्नेह के आदान-प्रदान के कटुता-हीन अवकाश के बाद भी जो प्रेम स्थिर रहता है और उसके बल पर जो शारीरिक मिलन होता है, दोनों आपस में मिलकर एक घर बसाकर रहते हैं, उसे मैं विवाह का ही नाम देता हूँ। यह महत्व-हीन नहीं है, यह जीवन को गति देता है। तुम दोनों के दीर्घकाल-व्यापी प्रणय की बात मैं जानता हूँ। उसके स्थायित्व पर मुझे भरोसा है। तुम दोनों एक दूसरे के प्रति विश्वासी रह सकते हो, यह भी मैं मानता हूँ। इस तरह के सत्य संबंध में मंत्रों का महत्व ही कितना ? आशीर्वाद तो मैं दे नहीं सकता किन्तु यह कहूँगा कि तुम दोनों सुखी रहो। तरुलता, अभी मैंने कहा था कि तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। मेरा ऐसा ख़्याल है कि हमारे सारे प्रयत्न तब तक असफल होंगे जब तक स्त्रियाँ जागृत न होंगी। अभी इस ओर हमने विशेष कुछ नहीं किया है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि पूँजी का पिशाच केवल पुरुषों की बलि लेकर ही नहीं शान्त होता, नारी-जाति का शोषण करना इसे खूब आता है। कैपिटलिज़्म और फ़ासिज़्म ने सदा ही नारी के मातृत्व से खिलवाड़ किया है। घर की श्री घर की दासी की कोटि में उतर आई है, फ़ैक्टरियों में काम करनेवाली स्त्रियाँ, जिन पर दुर्भाग्य से कोई रक्षा का हाथ नहीं है, बिलकुल निरवलंब और आश्रय-हीन हैं। घर, सुरक्षा और मातृत्व की लुभावनी माया में भुलाकर वह इन्हें वेश्या-प्रथा की ओर ढकेलता है। तुम्हें यह न भूलना होगा कि हमारी लड़ाई तब तक नहीं

सफल हो सकती जब तक हम अपने साथ स्त्रियों को न लेंगे। इसके लिए समानता और स्वतंत्रता का नारा ही पर्याप्त नहीं है। हमें उनके अधिकारों के लिए युद्ध करना होगा। उन्हें मर्दों के बराबर ही वेतन, भत्ते और अन्य सुविधाएँ दिलानी होंगी, बल्कि उन्हें कुछ अधिक ही सुविधाएँ चाहिए। इसके लिए हमें स्त्रियों की अलग संस्थाएँ बनानी होंगी। उनको इसके लिए तैयार करना होगा कि वह पूँजीवाद के विरुद्ध श्रमिक-वर्ग के युद्ध में अपने सहकर्मी भाइयों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चल सकें। हमारे-तुम्हारे सामने यह कोई साधारण काम नहीं है। तुम स्त्री हो और नारी जागरण का यह महान् कार्य तुम्हीं से संभव है। विवाह करने के बाद भी तुम्हें केवल घर की रानी बनकर नहीं बैठना है। उसके लिए अन्य स्त्रियाँ हैं, तुम नहीं। तुम्हें जबसे जाना है, अपनी छोटी बहन कहकर माना है। जिस दिन तुम केवल रामप्रसाद की बनकर बैठ रहीं उस दिन मेरा स्नेह खो दोगी। तुम्हारी सेवाओं की बाहर अपेक्षा है, यह न भूलना।

उस दिन शाम को तरुलता राजे को अस्पताल ले गई। दूसरे दिन रामचरन वहाँ से वापस भी आ गया।

ग्यारह

ब्रिटिश चुनाव का नतीजा निकल गया। चर्चिल साहब को मुँहकी खानी पड़ी। उनके दाहिने हाथ मिस्टर अमेरी, जिनके कंधों पर बंगाल दुर्भिक्ष की पूरी ज़िम्मेदारी थी, बुरी तरह हारे और पार्लियामेण्ट के मेम्बर तक नहीं रह गए। धारा का बहाव किधर है, यह इस चुनाव ने स्पष्ट कर दिया। मज़दूर दल की इतनी ज़बर्दस्त जीत कभी नहीं हुई थी। समूचे भारत में उत्साह की लहर दौड़ गई। नए-नए अटकल लगाए जाने लगे, मन्सूबे बँधने लगे, बधाई के केवल-ग्रामों की भरमार हो गई। पद ग्रहण के पश्चात ही नए प्रधानमंत्री मिस्टर एटली त्रिनेता सम्मेलन में चले गए और भारत के विषय में कुछ निश्चित निर्णय नहीं कर गए। चुनाव के पहले के भाषणों के आधार पर ही भारतीय जनता लेबर गवर्नमेंट की भारत विषयक नीति के विषय में पहेलियाँ बूझती रही। इतना ज़रूर हुआ कि आशा सबको ही बँधी। गांधीजी ने अपनी कोई राय नहीं दी। शिमला-सम्मेलन की असफलता के बाद जो समाचारपत्र सूखे रहने लगे थे वह फिर हरे हुए। उन्हें दो-चार दिनों के लिए फिर भोजन मिला।

इसी बीच नई दिल्ली में गवर्नरों का सम्मेलन हुआ और सुनने में आया कि चीफ़ सेक्रेटरी लोगों का सम्मेलन होगा। इस सम्मेलन-शृंखला का अर्थ क्या है, यह कोई नहीं जानता। हाँ, यह अवश्य हुआ कि प्रान्त के स्वत्वाधिकारी गवर्नरों के सम्मेलन के बाद ही प्रान्त भर में कांग्रेस की ओर से मनाए जानेवाले स्वातंत्र्य-सप्ताह पर रोक लगा दी गई और ६ से १५ अगस्त तक मीटिंग, जुलूस तथा अन्य किसी भी प्रदर्शन के लिए ज़िलाधीश से तीन दिन पहले अनुमति ले लेना आवश्यक

कर दिया गया। वास्तविक आपत्ति सरकार को 'शहीद दिवस' से थी जिसदिन गत उन्नीस सौ बयालीस के अगस्त आन्दोलन में वीरगति पाए शहीदों के परिवारों को 'सनद' दी जानेवाली थी, जिसपर राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद के हस्तलिपि में लिखा था—"उन शहीदों की याद में, जिन्होंने हिन्दुस्तान के बाग़ को अपने ख़ून से सींचा।" सरकार को इसमें क्रान्ति की गंध आती थी।

उस दिन तरुलता और रामप्रसाद जब लखनलाल से मिले तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। तरुलता ने छूटते ही कहा—कॉमरेड, अब कुछ होकर रहेगा।

रामप्रसाद—मुझे तो उस ताँगे वाले की बात भूलती नहीं। पट्ठे ने कैसा सड़ाक से चाबुक उस कान्स्टेबुल को जमाया है कि तबीयत खुश हो गई। बोला—म्यां, हो किस फेर में? अब चर्चिल चाचा नहीं रहे, कॉमरेड एटली आगए हैं।

कहीं किसी तांगेवाले ने, उत्साह के आधिक्य में किसी कॉन्स्टेबुल को मार दिया था। यह ख़बर पत्रों में छप चुकी थी और लखनलाल देख चुके थे पर इस समय इस उपहासजनक बात पर अपनी मुसकिराहट बिखेरने के बजाय वह गुमसुम ही बने रहे। तरुलता समझ गई कि कोई गहरी बात है। उसने रामप्रसाद को संकेत से रोका और लखनलाल के पास आकर, उनकी कुर्सी से सटकर खड़ी होते हुए कहा—क्या बात है लखनलालजी?

मालकिन ने ओट से देखा कि वह लड़की इस तरह कुर्सी से सटकर खड़ी हुई है। उनका सर्वांग जल उठा। नेत्रों से ज्वाला निकलने लग।

तरु—बोलिए न, चुप कैसे हैं?

लखनलाल ने जैसे तन्द्रा से जाग कर कहा—तुम लोग जिस चीज़ से फूल रहे हो, मैं उसे बड़ी भारी परीक्षा समझता हूँ। राजनीतिक

विचार रखनेवाला ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो मज़दूर दल की इस जीत से प्रसन्न न हुआ हो किन्तु केवल यह प्रसन्नता ही हमारे कष्टों का शमन नहीं कर सकती। अभी तो यह 'कोइ नृप होहि हमहि का हानी' वाली बात ही लगती है। तुम लोग तो इधर आए ही नहीं, मैंने जब से लेबर गवर्नमेण्ट के पावर में आने की बात सुनी है तभी से एक बात सोच रहा हूँ। आज पत्रों में देखा कि पेथिक लारेंस भारत मंत्री हुए हैं। इन्डिया ऑफ़िस ख़त्म कर देनेवाली बात तो यों ख़त्म हो गई। अब·····

तरुलता ने बात काटी—लेकिन इस नियुक्ति के विषय में जो कारण दिए गए हैं वह भी तो सोचिए।

लखनलाल हँसे—सोच लिया है। डोमिनियन्स ऑफ़िस में मिला देने में अभी वैधानिक कठिनाइयाँ हैं। यही तो। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे ऐन लड़ाई के समय ब्रिटेन में तो चुनाव हो सकता है पर भारत में नहीं। तुम लोगों को आश्चर्य होगा कि मैं ऐसी बात कैसे कह रहा हूँ। मैं स्वयं आश्चर्य करता हूँ पर सही बात कहे बिना रहा नहीं जाता। मैं अब भी कहता हूँ कि लेबर गवर्नमेण्ट की वास्तविक परीक्षा का समय आ गया है। भारत की सहानुभूति उसे तभी प्राप्त हो सकती है जब भारत के लिए वह कुछ करे। अष्टी-चिमूर के फाँसी के क़ैदी नवयुवक उसे चुनौती दे रहे हैं। उनके प्राणों की रक्षा नयी सरकार का पहला कर्त्तव्य है।

अष्टी-चिमूर के वह नवयुवक! माँ के प्रेम का मूल्य जो अपने बलिदान से चुकाने जा रहे हैं। जिनके तरुण प्राण माँ की वेदी के फूल बनकर बिखर गए हैं। जिन्होंने अभी जीवन का कोई सुख नहीं जाना, वही जीवनहीन कर दिए जायँगे। उनके पिता पुत्रहीन हो जायँगे, माएं रो-रोकर जान दे देंगी, पत्नियाँ अनाथ हो जायँगी। उनका यौवन अधखिला ही मुरझा जायगा, उसी फूल की तरह जो खिलते ही डाल से तोड़ दिया गया हो, वृन्तच्युत कर दिया गया हो।

उन्होंने जो कुछ किया वह सही था या नहीं, यह प्रश्न नहीं है। यदि कुछ ग़लत किया तो उस समय समूचे देश ने वही ग़लती की थी। और वह ग़लती भी उनकी अपनी नहीं थी, ब्रिटिश सरकार की जल्द-बाज़ी में ग्रहण की हुई नीति ने उन्हें इसके लिए बाध्य किया था। सहसा ही दमन का चक्र न चल पड़ा होता तो देश भर मे उपद्रव न होते। समूचे देश की जनता ने उनके प्राणो की रक्षा के लिए अपील की पर न्याय का नाटक कुछ और ही चाहता था। उनकी फाँसी की सज़ा बहाल रही। अब केवल दया की भिक्षा का ही सहारा था। भारतीय जनता की स्वातंत्र्य-भावना के प्रतीक इन युवकों को फाँसी से बचाना ही होगा, इनके अल्हड़ प्राणों को प्रतिशोध की ज्वाला में होम देने से रोकना ही होगा, इन्हें मुक्त-वायु, मुक्त-प्रकाश में साँस लेने के लिए रहने देना होगा। अधिकारी चुप हैं और वह बिचारे मृत्युपथ-पथी जेल की अँधेरी कोठरी में अपने दिन गिन रहे हैं।

लखनलाल—देखना है कि ब्रिटेन की नयी सरकार इस ओर क्या करती है। यह उसकी सिंसियरिटी का बहुत बड़ा टेस्ट है भारत और ब्रिटेन के बीच दुर्भावना की जो गहरी खाई खुदी हुई है वह लेबर गवर्नमेण्ट के यत्न से बहुत कुछ भर सकती है। लॉर्ड पेथिक लारेंस के लिए यह सबसे पहला और बड़ा काम है।

रामप्रसाद—गांधीजी ने वायसराय को लिखा ही है। क्या उसका कुछ परिणाम न होगा ?

लखनलाल—किसी के लिखने-पढ़ने का कोई परिणाम नहीं होगा। जो कुछ होगा, सारे देश की सम्मिलित जन-शक्ति के प्रयत्नों से होगा। वह अभागे हम सबके हैं, उनके प्राणों की हम सबको अपेक्षा है। यदि वह फाँसी पर लटका दिए गए तो यह हमारे लिए बहुत बड़ा कलंक होगा।

सारे देश में, विशेषकर बम्बई और युक्तप्रान्त में स्वतंत्रता-सप्ताह

मनाने की धूम-धाम से तैयारियाँ हो रही थीं। नौ अगस्त से यह सप्ताह मनाया जानेवाला था। नौ अगस्त ! ठीक तीन साल पहले की कितनी स्मृतियाँ और विस्मृतियाँ इस तारीख़ के साथ लिपटी हैं। उषा की पहली किरणें अभी धरती पर आई भी नहीं थीं, कि हमारे देश के प्राण, हमारे भारतीय भाग्य के विधाता, हमारे सर्व-प्रिय नेता बम्बई में सोते से जगाकर, पुलिस की मोटरों और लॉरियों में भरकर किसी 'अज्ञात' स्थान के लिए रवाना कर दिए गए। उसके अगले दो दिनों के अन्दर ही समूचा भारतवर्ष एक विशाल कारागार में परिणत हो गया, सभी माँ के लाड़ले, दुलारे सपूत चुन-चुनकर जेलों में भर दिए गए। किसी को रुककर सोचने तक का अवकाश नहीं दिया गया— एक साथ ही दमन का चक्र चल पड़ा। स्त्री-पुरुष, युवक, वृद्ध, सभी आश्चर्य से देखते रह गए। किसी को इस कार्य का कारण नहीं मालूम ! न तो यही मालूम हो सका कि वर्किंग कमेटी या राष्ट्रपति या गांधीजी का आगे के लिए क्या आदेश है। कोई नेता नहीं, कोई पथ-प्रदर्शक नहीं, कोई निश्चित पथ नहीं। जनता में अपने प्यारे नेताओं की अचानक गिरफ़्तारी पर उत्तेजना फैली, किसी निश्चित आदेश के अभाव में वह पागल हो उठी और उचित-अनुचित सब कुछ करने लगी। रेल की पटरियाँ उखाड़ डाली गईं, स्टेशन जलाए गए, तार काटे गए, बम फेंके गए। अधिकारियों ने भी ग़लत नीति ग्रहण की, चारों ओर भयंकर दमन का राज्य छा गया। पुलिसवालों ने छूटकर लाठी के जौहर दिखाए, गोलियाँ चलीं, रक्तपात हुए, नए कारागार खुले। अराजकता का सर्वत्र बोलबाला था। कुछ दिन तो वास्तव में ऐसा लगा जैसे ब्रिटिश राज्य समाप्त हो गया हो। पर होना क्या था ? तोप-बन्दूक-लाठी का सामना निरस्त्र और अबोली जनता नहीं कर सकी। हताहतों के ढेर पर रण-चण्डी का उन्मत्त नृत्य देखने की सामर्थ्य लोगों में नहीं थी। रक्त की नदियाँ भारत की अहिंसक सेना

बहते नहीं सहन कर सकी। आतंक शिर पर चढ़कर बोलने लगा, और भावुकता-जन्य विद्रोह धीरे-धीरे समाप्त हो गया। कितने घर जले, कितनी सम्पत्ति लुटी, कितने मरे, इसका कोई निश्चित लेखा नहीं।

उसी नौ अगस्त की स्मृति में स्वतंत्रता सप्ताह मनाया जानेवाला था। अपने प्यारे सैनिकों की स्मृति में उनके परिवारवालों को भारत की एकमात्र राष्ट्रीय-संस्था कांग्रेस की ओर से जो सम्मान-सूचक सनद दी जानेवाली थी, हमारे प्रभुओं को उसमें क्रान्ति की गंध मिली और भारत-भर में किसी तरह के प्रदर्शनों पर रोक लगा दी गई। वैवल-योजना के असफल हो जाने के बावजूद देश में जो एक अच्छा वातावरण छा गया था, अधिकारियों के इस कृत्य से उस पर धक्का लगा। इतना ही नहीं, बिहार के महेन्द्र चौधरी को, समूचे देश की प्रार्थना और डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद की हृदय-द्रावक अपील के बावजूद, फाँसी पर लटका दिया गया। अष्टी-चिमूर के अभागे बन्दियों के साथ अन्ततोगत्वा क्या होगा, इसका अन्दाज़ देश को लग रहा था।

लखनलाल द्वारा प्रस्तावित नारी-संघ की नींव तरुलता के हाथों पड़ गई थी। आज-कल उसका अधिकांश समय इसी संघ के कार्यों में जाता था। और संघ का कार्य-क्रम क्या था? तरुलता हफ़्ते में तीन दिन मज़दूरों के क्वार्टरों में जाकर सभाएं करती, उन अभागी स्त्रियों को उनके अधिकार बताती, राजनीतिक जागरण की बातें सीधी-सरल भाषा में उनके सामने रखती। उनके पति, जो जुआरी, शराबी, चोर, अपढ़ और कुचरित्र थे, क्योंकि ग़रीब थे, आज-कल अपनी स्त्रियों से भय खाने लगे थे। अब बात-बात में मार पीट से काम नहीं निकलता था। शराब पीकर आते तो ऐसा डरते हुए जैसे घर में बाघ बैठा हो जो खा जायगा। अब, मिल के फाटक पर काबुली या महाजन द्वारा छीन लिए जाने पर भी जो कुछ पैसे गाँठ में बचते थे वह चुपके से खाकर घरवालियों को दे देना पड़ता था। काट-कपटकर ताड़ी-दारू के

लिए ज़्यादा नहीं बच पाता था। मज़दूरों के एक युग के जीवन में घरवालियों के सत्याग्रह से परिवर्तन होने लगा था और वह कभी-कभी झुंझला उठते थे। इन सब बातों की ज़िम्मेदारी वह तरुलता पर डालते, पर केवल उसकी अनुपस्थिति में ही। उसके मुँह पर न तो प्रशंसा ही कर सकते थे, न निन्दा, केवल उसकी ओर बकर-बकर देखते रहते।

अन्न और कपड़े की समस्या दिनों-दिन जटिल होती जा रही थी। अन्न तो किसी तरह थोड़ा-बहुत रद्दी या अच्छा मिल भी जाता था, कपड़े के लिए जानें जाती थीं। आए दिन पत्रों में वस्त्र-विभीषिका के समाचार आते। कहीं रूमाल जोड़-जोड़कर तन ढांका जा रहा है, कहीं वकील लोग बिना क़मीजों के कचहरी जा रहे हैं, कहीं स्त्री की फटी साड़ी पहनकर कोई दफ़्तर जा रहा है, कहीं अच्छी धोती के बिना कोई विद्यार्थिनी परीक्षा नहीं दे पाई, कहीं माँ-बेटी एक ही धोती बारी-बारी से पहन रही हैं, कहीं लाशों के लिए क़फ़न नहीं जुड़ता। बाप अपनी लड़कियों को नंगी देख रहा है, भाई-बहनों को, लड़का माँ को। अपने लाड़ले लालों की लाशें माँ-बाप पुरानी, फटी धोतियों में लपेटकर प्रवाह कर देते हैं। उस दिन तरुलता दोपहर को रामचरन के हाते में गई। स्त्रियों के क्लास लेने का उसका यही समय था। इस समय स्त्रियों को अवकाश रहा करता था। दोपहर के ढाई बजे होंगे। रोज़ की तरह बढ़कर तरुलता का स्वागत स्त्रियों ने नहीं किया, न तो वह कुछ पढ़ने-सीखने के ही 'मूड' में इस समय थीं। इसके विपरीत, उनके मुखों पर भय और आशंका खेल रहे थे। तरुलता को आश्चर्य हुआ, यह बात क्या है! वह रामचरन के क्वार्टर की ओर बढ़ ही रही थी कि रामबली के बाप से कुछ पूछे कि सहसा ही फ़ातिमा काकी लठिया टेकती आईं, बोलीं—रानी-बिटिया, बड़ा अनरथ हो गया। ऐसा होगा तो कैसे चलेगा? कलजुग आ गया है, और क्या!

तरुलता घबराई—क्या हुआ काकी ?

फ़ातिमा काकी—बेटी, मैं बूढ़ी हो गई पर ऐसा कभी नहीं देखा। देस में मेरे देखते-देखते न जाने कितनी आँधियाँ आईं और चली गईं पर ऐसा न तो देखा, न सुना। वही, पिछली बार जब बंगाले में लोग पटापट मरने लगे तब सुना और अब आँखों देख रही हूँ। पाप का घड़ा भर गया है बिटिया, तुम देख लेना, अब उसके फूटने में देर नहीं है। अब तो जो न हो जाय, थोड़ा है।

तरुलता अब भी कुछ नहीं समझी—तो बताओ न काकी, क्या हुआ है ? तुम तो पहेलियाँ बुझा रही हो।

फ़ातिमा काकी—पहेलियाँ बुझा रही हूँ ? लो सुनो इनकी बात हाँ भैया, तुम लोग चिक्कन बनी सायकल पर चढ़कर घूमती रहती हो, तुम्हें तो यह सब पहेली ही लगेंगी। वह बिचारी तो अपने जान से गई।

तरुलता—कौन मर गया ?

फ़ातिमा काकी—तो मैं इतनी देर से कह क्या रही हूँ ? जाकर देखो जिउराखन के क्वार्टर में, क्या हुआ है !

तरुलता भागी हुई जिउराखन के क्वार्टर की ओर चली। तार-तार हो गई धोती स्वयं पहने, एक हाथ कमर पर रखे, लाठी के सहारे खड़ी फ़ातिमा काकी बड़बड़ाती रहीं—राम-राम, ऐसा अन्धेर ! अब कोई अपनी पत बचाकर घर में भी नहीं बैठ सकता। मेरी इतनी सिन हो गई, एक पाँव कबर में लटका है फिर भी ऐसा कभी नहीं देखा।

जिउराखन के डेढ़ हाथ लम्बे-चौड़े क्वार्टर में स्त्रियों और पुरुषों की भीड़ लगी थी। बित्ते-भर का आँगन, फिर एक बरामदा और उसके बाद एक छोटी-सी कोठरी। बरामदे में खाना बनता था, धुएँ से दीवाल और छत काली हो गई थी। चूल्हे के ऊपर बने आले पर मिट्टी के तेल की ढिबरी और दियासलाई रखी थी। बरामदे में सिर से

पाँव तक ढकी एक लाश पड़ी हुई थी, जो जिउराखन की बहिन की थी। तरुलता को देखते ही लोग संभ्रम से इधर-उधर हट गए, यद्यपि लाश के प्रति कुतूहल किसी का कम नहीं हुआ। स्त्रियाँ एक स्त्री को सहानुभूति के लिए आई देखकर फिर एक बार ढाढ़ मारकर रो पड़ीं। बड़ी कठिनाई से सबको शान्त करके तरुलता ने सारी कथा जानी। जिउराखन को आज से दो महीने पहले रैशनिंग के किसी जुर्म में तीन महीने की सज़ा हो चुकी है। वह जेल में है। घर में केवल उसकी जवान बीवी और एक युवती बहन है। जिउराखन एक ठीकेदार के नीचे ठेला चलाया करता था। उसकी बहन ने उससे हज़ार बार कहा कि उसकी धोती बिलकुल तार-तार हो गई है, एक जोड़ा नई धोती लादे तो भौजी का और उसका काम कुछ दिनों के लिए चल जाय पर जिउराखन काट-कपटकर बचे हुए रुपयों से लाख सिर मारने पर भी एक जोड़ा धोती नहीं पा सका। पत्नी की दशा और भी खराब थी पर वह बिचारी कभी मुँह से कुछ कहती नहीं थी। जिउराखन घर में आता तो मुँह नीचा किए हुए, कहीं बहन की नग्नता पर उसकी दृष्टि न पड़ जाय! पत्नी को वह एक बार नंगी देख भी सकता था, कम-से-कम उसे इतना संकोच न होता पर युवती अविवाहिता बहन! पत्नी ने जिउराखन को समझा-बुझाकर अन्य स्त्रियों के साथ एक जगह गच पीटने का काम कर लिया। बड़े सुबह निकल जाती और संध्या समय बड़ी देर में लौटती। जिउराखन अपनी असमर्थता पर कट कर रह गया। शायद उसकी पत्नी यह नहीं जानती थी कि आज-कल ज़माना ऐसा है कि पास में रूपए रहने पर भी सामान नहीं मिल सकता। एक दिन जिउराखन काम से आया तो पत्नी घर नहीं लौटी थी। क्वार्टर का दरवाज़ा भिड़ा हुआ था, हाथ रखते ही खुल गया। अनायास ही जिउराखन ने जो देखा उसकी उसे आशा नहीं थी। गर्मी के कारण उसकी बहन बाहर आँगन में ही फटी चटाई पर पड़ी हुई थी। साड़ी

कठिनाई से घुटनों तक पहुँचती थी, वह भी बुरी तरह फटी हुई। ठीक सीने के ऊपर एक बहुत बड़ा छेद था जिसके कारण उसके दोनों गोरे, भरे और यौवन से मदमाते उरोजों की लज्जा छिपनी कठिन थी। जान पड़ता था, बहुत खींचतान करने पर भी, किसी ओर से कपड़ा वहाँ तक नहीं पहुँच सकता था। जिउराखन झट-से बाहर निकल आया। उसकी इच्छा हुई कि अभी आत्महत्या कर ले या अधिकारियों का जाकर गला दबोच डाले पर क्षण-भर सोचने के बाद उसे यह दोनों बातें मूर्खता-पूर्ण जान पड़ीं। इससे कुछ नहीं होगा। न तो इक्के दुक्के अधिकारी का दोष है, न एक दो घरों की यह हालत है।

उसके बाद ही जिउराखन किसी छोटे से क़ुसूर पर राशनिङ्ग इन्सपेक्टरों द्वारा फाँस दिया गया और उसे तीन महीनों की सज़ा हो गई। अब केवल उसकी पत्नी की कमाई का ही भरोसा था। बहन की घुटनों तक पहुँचती हुई तार-तार धोती अब उतनी जगह भी घेरना नहीं चाहती थी, धीरे-धीरे वह और ऊपर खिसकने लगी। भावज से यह नहीं देखा गया, उसने हार कर वस्त्र के नाम पर बची हुई अपने विवाह के अवसर की एक-मात्र चुनरी टीन के बक्स से बाहर निकाली। तय यह हुआ कि रात को ननद उसे पहने और दिन को भावज पहनकर काम पर जाय। थोड़े दिनों यह भी चला पर अब अकेली भावज की कमाई से दोनों वक्त भोजन चलना भी कठिन हो गया। इधर भावज को कुछ-कुछ गर्भ रहने की आशंका भी होने लगी। यह एक और बला गले पड़ी। ननद भौजाई ने तब आपस में, सारी लज्जा छोड़कर यह तय किया कि अब भौजाई के साथ-साथ ननद काम करने जायगी। दूसरे दिन पड़ोस से एक धोती माँगकर भावज ने पहनी और ननद को वही चुनरी पहना कर ठीकेदार के पास ले गई और सब तय कर आई। जिउराखन की बहन भी काम पर जाने लगी। कल रात उसने भावज से कहा कि मैं काम पर नहीं जाऊँगी।

बहुत खोद-विनोद करने पर उसने बताया कि दोपहर को छुट्टी के वक्त ठीकेदार का लड़का गच पर चला आया। और सब साथवाली नीचे खाने-पीने चली गई थीं। उसने कहना सुरू किया कि वह सब जानता है कि मेरे पास पहनने को कपड़े नहीं हैं। बाबूजी कहते थे। इसी से वह अम्मा की एक धोती चुराकर ले आया है। उसकी पहले ही दिन से मुझ पर नजर है। मैं उसकी बात मान लूँ तो वह मुझे रानी बनाकर रखेगा। जब मैंने शोर मचाने का डर दिखाया तो बोला कि ऐसे नहीं मानेगी तो जबरजस्ती ही सही। अभी लोगों के आने में देर है। उसने वही धोती जल्दी से खोलकर एक छोर मुँह से ठूँस दिया, और मुझे दोनों हाथों पर उठाकर गच के कोने में मुंड़ेरे की ओट में ले गया। मैं हाथ-पाँव पीटती रही पर उसने कुछ नहीं सुना। उसी जगह मेरे साथ कुकरम किया और दो ही मिनट में मुझे छोड़कर, नीचे उतर गया जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसका नसा उतर गया था, अब रुककर क्या करता!

वही ठीकेदार के लड़के की दी हुई धोती इस समय उस अभागी की लाश पर पड़ी थी। जिसे जीते जी उसने नहीं पहना, उसे मरने पर ओढ़ लिया। घर में और कपड़ा ही कौन था?

उपस्थित लोगों से तथा जिउराखन की बीवी से सारी कथा सुनकर तरुलता काँप उठी। हाय रे भारतवर्ष! गुलाम, दीन, पराजित भारतवर्ष! धैर्य्य और सहनशक्ति की भी सीमा होती है। तूने उस सीमा का भी अतिक्रम कर डाला है। अन्न और वस्त्र जैसी जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव में कीड़े मकोड़ों की तरह तुझे ही मरना शोभा देता है, क्योंकि तू गुलाम है। युद्ध में बिना तेरी इच्छा के तुझे झोंक दिया जा सकता है, क्योंकि तू गुलाम है। तेरी बिना सहमति लिए, तेरे निवासियों की सुविधा-असुविधा का बग़ैर ख्याल किए तेरे ऊपर कन्ट्रोल और रैशनिङ्ग के बंधन लागू कर दिए जा सकते हैं,

क्योंकि तू ग़ुलाम है। ईरान और ईराक़ तक तेरा अन्न भेज दिया जा सकता है, क्योंकि तू ग़ुलाम है। और इन सबके विरुद्ध बोलने का तुझे अधिकार नहीं, क्योंकि तू ग़ुलाम है। प्रान्तों में अन्न-वस्त्र की जो दुरवस्था है वह दूर होने की कोई आशा नहीं, कम-से-कम तब तक, जब तक "एडवाइज़रों" का शासन चल रहा है! कांग्रेस के मंत्री-गण जनता के प्रति उत्तरदायी थे, वह जनता का यह कष्ट कभी नहीं देख सकते थे। अधिकारियों का कहना है कि लड़ाई ख़त्म हो जाने पर अमेरिका और ब्रिटेन से बहुतायत से कपड़ा आएगा। लेकिन अमेरिका कब से कपड़ा भेजने लगा? भारतीय मिलों में क्या धोतियाँ और साड़ियाँ बननी बन्द हो गई हैं? सभी जानते हैं कि ऐसी बात नहीं है। तब यह सब कपड़ा कहाँ जाता है? एक ओर अमेरिकन और ब्रिटिश कपड़ों को भारत में खपाने का धुआँधार प्रयत्न हो रहा है, दूसरी ओर भारी संख्या में भारतीय मिलों का माल बाहर भेजा जा रहा है।

उसके मुँह से यह सब सुनकर वह काँप उठी। जिउराखन की बीवी ने आगे कहा—कल मैं काम पर नहीं जा सकी थी, वह अकेले गई थी। तभी यह सब हुआ। बड़ी रात गए मुझसे बोली कि भौजी, अब मेरा जीना हराम है। मुँह में कालिख पोतकर बेइज्जत होकर जिन्दा रही तो क्या? भैया जेहल से आकर सुनेंगे तो क्या कहेंगे? बेधरम होकर जिन्दा रहने से मर ही जाना अच्छा है। तब नहीं समझी थी देवीजी कि मेरी दुलारी ननद सच ही चल देगी। पर वह सब तय कर चुकी थी। आज सबेरे मुझसे बोली कि मेरा जी अच्छा नहीं है। तुम काम पर चली जाओ। मुझे कुछ सुबहा तो जरूर हुआ पर मैं चला गई। अभी थोड़ी देर हुई, खबर पाकर आई हूँ। अपनी लुगरी धोती से उसने रस्सी बनाई और उसी से गला कस कर जान दे दी।

तरुलता की आँखों में आँसू आ गए। कहाँ हैं सर विलियम इबट्सन, प्रान्तीय सरकार के सलाहकार, जो गर्व से घोषित करते हैं—

जनता वस्त्र-योजना से बहुत सन्तुष्ट है। इतनी सन्तुष्ट है कि प्राण दे देती है पर अपने अधिकारों के लिए विद्रोह नहीं करती! जो भूखा है, उसे अन्न चाहिए, योजना नहीं। जो नंगा है उसे तन ढँकने को वस्त्र चाहिए, लम्बी-चौड़ी बातें नहीं। निरन्न और निर्वस्त्र जनता काग़ज़ी घोड़ों और हवाई क़िलों से सन्तुष्ट नहीं हो सकती। अगर सन्तुष्ट होती तो यह हाहाकार, अबोली जनता का यह मौन हनन न होता। किन्तु सरकार जानती है कि जनता सन्तुष्ट है। तभी तो यह सरकार के मोटे-मोटे अधिकारी, लम्बी तनख़्वाहें फटकार रहे हैं, और दफ़्तरों में बैठकर क़ागज़ी योजनाएँ बनाते रहते हैं! सन्तोष का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है? जनता को भोजन पाने से कौन रोकता है? अपने नंगे तन ढाँकने को वस्त्र पाने से उसे कौन रोकता है? जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को उससे कौन छीन लेता है? क्या केवल लड़ाई के कारण ही यह तंगी और अभाव हैं? या यह हाहाकार अयोग्य अधिकारियों और मुनाफ़ाख़ोरों की स्वार्थवृत्ति के कारण है? भारत की जनता अपने महाप्रभुओं से और उनके कर्मचारियों से यह प्रश्न पूछ रही है। बंगाल और भारत के अन्य प्रान्तों के यह अभागे नर-नारी क़ानून नहीं तोड़ना चाहते। न तो वह किसी तरह का अनुचित प्रदर्शन करना चाहते हैं। वह केवल इस सीधे सादे प्रश्न का उत्तर चाहते हैं कि क्या वह भूखे मरें? नंगे रहें? उन्हें क्या जीने का अधिकार नहीं है? वह क्या आदमी नहीं हैं? आज लाख-लाख कंठों से यही पुकार उठ रही है कि या तो सरकार जनता की इन आवश्यकताओं को पूरी करे या अपनी ज़िम्मेदारियाँ हटा ले। यह काम गवर्नर और 'एडवाइज़रों' का नहीं है, वैवेल और उनके एक्ज़ीक्यूटिव काउन्सिलरों के बूते का यह रोग नहीं है। यह सब दुरवस्था हटेगी तब जब अधिकारी जनता के अपने होंगे।*

* अमृत बाज़ार पत्रिका के बुधवार १५ अगस्त ४५ के अंक के सम्पादकीय के आधार पर।—लेखक।

तरुलता ने किसी तरह जिउराखन की स्त्री को शान्त किया, यद्यपि उसकी आँखों में स्वय आँसू आ गए थे। उसका रुदन बड़ा हृदय-विदारक था। जिउराखन की अनुपस्थिति ने उसे और भी विचलित कर दिया था। रह-रहकर ननद की लाश पर गिरी पड़ती थी। अब प्रश्न उस लाश को हटाने का था। किसी तरह पुलिस की आँखों में धूल झोंककर भैरोघाट तक ले भी जायँ तो वहाँ जलाने के पहले बीमारी और डॉक्टर का नाम लिखवाना पड़ेगा। सबसे बड़ी बात, जलाने के लिए लकड़ियाँ चाहिएँ, घी चाहिए, अन्य चीज़ें चाहिएँ। इन सबके लिए पैसा चाहिए। जिउराखन ने एक पैसा घर में छोड़ा नहीं था, उसकी घरवाली और मृत्युपथ-पथी ननद की कमाई में कभी इतनी बरक्कत ही नहीं हुई कि मरने पर कफ़न तक को पैसे बचें। तरुलता ने फ़ौरन एक चिट लिखकर लखनलाल के पास आदमी दौड़ाया।

अर्थ-कष्ट लखनलाल को सदा ही रहता था। इससे बढ़कर परीशानी पत्नी के तानों से होती थी। कभी-कभी इन तानों से ऊबकर उन्हें अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध भी चलना पड़ता था। कुछ दिनों पहले उन्होंने एक सस्ती प्रेम-कहानी लिखकर एक पत्र में भेजी थी, जिसके बीस रूपए पारिश्रमिक कल ही उन्हें मनीआर्डर से मिले थे। तीन रूपए तो कल ही उन्होंने श्रीमतीजी को दे दिए जिसके सब्ज़ी, तेल और घी आ गए, सत्रह रूपए उनके पास थे। तरुलता का पुज़ पाकर उन्होंने वही सत्रह रूपए लिए और उस आदमी के साथ भागे हुए जिउराखन के क्वार्टर पहुँचे। तब तक शाम हो गई थी। अन्य मज़दूर मिलों से वापस आ गए थे। उसी ठीकेदार के लड़के की दी हुई धोती में लाश लपेटी गई और मज़दूरों की भारी भीड़ के साथ भैरोघाट ले जाई गई। तरुलता ने आगे बढ़कर मृत्यु का कारण कॉलेरा बता दिया और यह भी बता दिया कि इतनी जल्दी मृत्यु हुई कि किसी डॉक्टर को दिखलाने का अवकाश नहीं रहा। लखन लाल के

लाए हुए सत्रह रूपयों से लकड़ी आदि खरीदी गईं और जिउराखन की बहन उस पार चली गई।

रात हुए काफ़ी देर हो गई थी। सब लोग लौटकर लखनलाल के घर पर जमा हुए। तरुलता काफ़ी थक गई थी, आराम-कुर्सी पर लेटती हुई बोली—और अब ?

लखनलाल बहुत देर से कुछ सोच रहे थे। तरुलता का प्रश्न सुनकर बोले—और अब ? अब हमें कुछ करना होगा। यह एक जिउराखन के घर का ही प्रश्न नहीं है। समूचे देश में वस्त्र का यह हाहाकार फैला हुआ है। भारत की मानवता आज नंगी फिर रही है। स्त्रियों को तन की लाज बचाना कठिन हो गया है। हमें इसके लिए आन्दोलन करना होगा। भारी संख्या में हमें इसके लिए आदमी तैयार करने होंगे जो अधिकारियों के पास जायेंगे, उनके सामने अपनी माँगे रखेंगे। अगर इससे कुछ हुआ तो ठीक है अन्यथा हमें अपने अधिकारों के लिए लड़ना होगा। सरकार को झुकाना होगा कि वह हमारे लिए प्रबंध करें। इस तरह हमारी माएँ, बहनें, बेटिएँ निर्वस्त्र नहीं घूम सकतीं। इस तरह उन्हें मरने नहीं दिया जा सकता।

बड़ी रात तक वस्त्र संकट दूर करने के लिए योजनाएँ बनती रहीं। अन्त में तय यह हुआ कि आगामी रविवार को एक भारी जुलूस मज़दूरों का ज़िला-मजिस्ट्रेट के बंगले पर जाकर उनसे मिले और अपनी माँगें उनके सामने रखे। यदि वह कुछ करने में असमर्थ हों तो दूसरे उपाय काम में लाए जायँ।

लगभग १॥ बजे तरुलता और रामप्रसाद लखनलाल के यहाँ से चले। रामप्रसाद तरुलता को सहारा दिए हुए था, वह बहुत थकी हुई थी। रामप्रसाद ने सहसा ही कहा—तरु, अब तो जल्दी करनी चाहिए !

तरुलता—किस बात में ?

रामप्रसाद—वही, विवाह के लिए !

तरुलता—अरे, वह हो जायगा। जल्दी काहे की है ?

रामप्रसाद—जल्दी है तरु, मैं अब ऐसे नहीं रह सकता।

तरुलता—क्यों ?

रामप्रसाद—अब मुझे तुम्हारा अभाव बहुत अखरता है। आशा न होती तो कुछ न होता। एक बार तुम्ने आशा देकर मेरा मन और भी चंचल कर दिया है। घर में जाता हूँ तो तुम्हें देखना चाहता हूँ, सोने-जागते, उठते-बैठते तुम्हारा ध्यान बना रहता है।

तरुलता—यह रोग तो बुरा है।

रामप्रसाद—बुरा हो या जो हो, अब तो यह रोग पाल ही लिया है। क्या तुम्हें ऐसा कुछ नहीं होता ?

तरुलता—मैं पागल नहीं हूँ। जीवन की अन्य आवश्यकताओं की भाँति प्रेम भी एक आवश्यकता है, विशेष कुछ नहीं। और किसी आवश्यकता के लिए पागल होना आज तक मैंने सीखा ही नहीं। किन्तु एक बात है। शरीर की भूख मेरे मन में नहीं जागती, यह मैं नहीं कह सकती। मुझे भी कभी कभी कुछ अभाव खलता है। मैं भी समझती हूँ, हमारा विवाह हो जाना ही अच्छा है। मेरी ओर से कोई रुकावट नहीं है, तुम जिस दिन चाहो, कचहरी चले चलो।

× × ×

द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया। जापान ने भी, जर्मनी की भाँति, हथियार डाल दिए। सारे संसार में हर्ष की लहर फैल गई। स्कूल, कॉलेज, दफ़्तर, फ़ैक्टरियाँ, मिलें, सभी दो दिन के लिए बन्द हुईं। पाँच साल के भयंकर रक्तपात के बाद संसार ने मुक्ति की साँस ली। मज़दूरों ने भी सवैतनिक छुट्टी पाई। इसी समय यह भी समाचार आया कि अष्टी-चिमूर के अभागे बन्दियों की फाँसी की सज़ा वैवेल ने रद्दकर दी और आजीवन कारावास में परिणत कर दिया। वैवेल के

इस कार्य पर किन पारिस्थितियों का प्रभाव पड़ा, यह कहना कठिन है, किन्तु भारत को उन्होंने अपना ऋणी बना लिया।

दो दिन की छुट्टी के बाद आज जब रामचरन सुबह मिल चलने लगा तो राजे ने कहा—सुनते हो, मुन्ने को हलका-हलका बुखार है। जुखाम भी है।

रामचरन घबराया बोला—कब से है ?

राजे—दो तीन दिनों से है। तुमसे कहा नहीं कि तुम घबरा जाओगे।

रामचरन—और अब जैसे कहकर बड़ा आराम दे दिया है न !

उसने चट् से मुन्ने के शरीर पर हाथ रखकर देखा, उसे ज़ोर का बुखार था। नाक बह रही थी। राजे ने कहा—काकी ने न जाने कौन-सी दवा बनाकर दी थी, वही पिलाया पर कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। तभी आज तुमसे कहा। मिल के डाक्टर से कोई दवा लेते आना।

एक ख़ाली शीशी लेकर रामचरन चला गया। दिन-भर वह काम तो करता रहा पर दिल घर पर लगा था। ज्यों-त्यों कर शाम हुई और वह दवा लिए घर आया। राजे मुन्ने को गोद में लिए बैठी थी और चेहरे पर हवाइयाँ फिर रही थीं। वह बहुत घबरा गई थी। पहले बच्चे की मृत्यु की बात उसे याद आ रही थी। कहीं इसकी भी वही दशा न हो। इतने दिनों बाद भगवान ने गोद भरी है, कहीं सूनी न कर दें। मन ही मन दुनिया भर की मनौतियाँ मना रही थी। फ़ातिमा काकी पास ही बैठी हुई थीं। रामचरन को देखकर राजे की जान में जान आई। लपककर बोली—दवा ले आए ?

रामचरन—हाँ, ले आया पर डॉक्टर कहता है कि एक बार उसे दिखाना होगा। कल तो इतवार है, सोमवार को मिल लेती चलना तो डॉक्टर को दिखा दूँगा।

दवा पिलाई गई और बच्चे को कुछ राहत मिली। वह तुरन्त ही

सो गया। उसकी नन्हीं नन्हीं आँखों पर मौत की काली छाया देख पाने की सामर्थ्य राजे और रामचरन, दोनों में नहीं थी। फ़ातिमा काकी की अनुभवी आँखों ने स्थिति की गम्भीरता पढ़ ली थी पर वह यह बात कह कैसे सकती थीं? वह सर हिलाते चली गईं। बड़ी रात गए, खा-पी चुकने पर रामचरन बोला—राजे, कल कलट्टर साहब के बँगले हम लोग जायँगे।

राजे—कलट्टर साहब के बंगले? वहाँ क्या काम है?

मिल में मार-पीटवाली उस घटना के बाद से रामचरन अपने को छोटा-मोटा नेता समझने लगा था। बीच-बचाव करते समय मार खा जाने से उसके साथ लोगों की सहानुभूति हो गई थी और अपने संकीर्ण दायरे में वह मुखिया समझा जाने लगा था। हाते के जिन मज़दूरों ने उसे उस भम्भड़ में चिरौरी-बिनती करते देखा था उन्होंने उसकी स्तुति बढ़ा-चढ़ाकर फैलाई। सबसे बढ़कर रामबली के बाप ने उसका यशोगान किया। अपने हाते में तथा मिल के छोटे से दायरे में अपनी इतनी मान-प्रतिष्ठा देखकर उसका फूल उठना स्वाभाविक था। राजे का प्रश्न सुनकर उसने उसकी ओर ऐसा देखा जैसे तुम यह सब क्या जानो। यह तुम्हारे समझने की बात भी नहीं है। बोला—मालिक ने कहा है, कल कलट्टर साहब के यहाँ सब लोग चलकर कपड़े-गल्ले के लिए कहो। अगर वह न सुनें तो सब लोग कपड़े की दूकानें लूट लो।

राजे काँप उठी, कहा—मालिक ऐसा कभी नहीं कह सकते। लूट-पाट करोगे तो दगा फ़साद होगा कि नहीं। पुलिस आएगी, लाठी चलेगी, गोली चलेगी।

रामचरन और भी तन गया—तो हम क्या लाठी-गोली से डरते हैं? पूछो भला, ग़ल्ला हमारा, कपड़ा हमारा, हम भूखे रहें, मर जायँ, और माल मारे कोई और? जिउराखन की बहन बिचारी एक धोती के

लिए तरसकर मर गई, तब कलट्टर साहब कहाँ बैठे थे ? जब धोती मिली तो पहननेवाला ही नहीं रहा।

राजे को ठीकेदार के लड़के की बात याद आ गई, मुँह बिचकाकर बोली—ऐसी धोती देनेवालों के मुँह में आग लगे। मुझे तो भला कोई ऐसे आकर दे दे !

रामचरन—हाँ-हाँ, बड़ी झाँसी की रानी न है तू ! बात यह नहीं है। मालिक कहते थे, आज घर-घर यही हो रहा है। थोड़े से अमीरों को छोड़कर, आज सभी लोग ऐसे ही ग़ल्ले और कपड़े की तंगी से परीसान हैं। और फिर, अब तो लड़ाई भी खतम हो गई है। अब सब कन्टरोल क्यों नहीं उठा लिए जाते ?

राजे—तो कलट्टर साहब इसमें क्या कर लेंगे ?

रामचरन—क्यों नहीं करेंगे ? खाली लम्बी रकम ही लेने को हैं ? रियाया का इन्तजाम कौन करेगा ?

राजे—मुझे तो डर लग रहा है। एक दफ़े हंगामा हुआ तो अस्पताल लादकर गए। कहीं फिर कुछ हुआ तो क्या होगा ?

रामचरन—तू तो पागल है। हम लोग कोई मारपीट करने जा रहे हैं ? देखें तो, कलट्टर साहब कहते क्या हैं ? कुछ तो जवाब देंगे ही। फिर देखा जायगा।

फ़ातिमा काकी एक बार और आकर बच्चे की हालत पूछ गईं। सबको बिदाकर, किवाड़ उठंगा कर रामचरन सोने ही जा रहा था कि रामबली भागता हुआ आया, बोला—बाबू को हैजा हो गया है। जल्दी चलो।

मिल में नौकरी न मिल पाने के कारण, उस दिन मार-पीटवाली घटना के बाद, रामबली का बाप लखनलाल के यहाँ रहने लगा था। लखनलाल ने रामचरन पर अधिक भार डालना सही नहीं समझा। चूँकि यहाँ भी वह दिन भर मुन्ने को खिलाता रहता था और घर में

बिना वेतन का एक नौकर मिल गया था, मालकिन ने ज़्यादा एतराज़ नहीं किया। केवल खाना देना पड़ता था। रामबली के बाप के लिए सब एक बराबर था, जैसे वहाँ तैसे यहाँ। आज उसे जाने कैसे हैज़ा हो गया। लखनलाल ने रामचरन को बुलवा लिया। मालकिन तो पास भी नहीं फटकीं, लखनलाल वहाँ मौजूद थे।

राजे को रामबली के बाप से स्नेह हो गया था। बोली—मैं भी चलूँ ? जरा देख लूँ। मरती बेरिया साइत देखना चाहें।

रामचरन, राजे और रामबली भागते हुए लखनलाल के यहाँ आए। लड़का बीमार था पर राजे गोद में उसे चिपकाए हुए थी। पहुँचे तब प्राण निकलने में थोड़ी ही देर थी। रामबली का बाप अचेत पड़ा हुआ था, कमरे भर में दुर्गन्ध भरी हुयी। एक डॉक्टर को लाने रामप्रसाद गया हुआ था। रामबली के बाप ने साहस कर आँख खोली, राजे को देखा, कष्ट से धीरे-धीरे बोला—बहू, अब न बचूँगा।

राजे ने बीमार बच्चा उसकी ओर बढ़ा दिया। इसके पहले कि वह उसे छू सके, एक बार ज़ोर की क़ै हुई और रामबली के बाप के प्राण निकल गए। रामबली पछाड़ खाकर गिर पड़ा। उसके जीवन का अंतिम अवलंब भी जाता रहा। माँ पहले ही चल बसी थी। बाप भी मरे समान ही थे किन्तु उसे मिल गए थे। अब वह भी जाते रहे। रामबली एक बार फिर अनाथ हो गया। इस बार सदा के लिए अनाथ हो गया। राजे के नेत्रों में आँसू उमड़ आए पर उसने किसी तरह अपने को रोका। न जाने कहाँ का कोई एक जेल का क़ैदी छूटकर उसके घर आकर थोड़े दिनों रहा। ममता का ऐसा बंधन बाँध गया कि इस समय वह बंधन टूटने पर कलेजा मुँह को आ रहा है। तब, जिसका वह सब कुछ था, उसके दिल पर क्या बीतती होगी ? बाप सबके सब समय नहीं रहते, पर छोटी वय में बाप का खोना क्या होता है, यह वही समझ सकता है, जो खोता है।

श्मशान ले जाना था। जल्दी से कुछ हाते के मज़दूर बुलवाए गए और कफ़न आदि के कपड़े और अर्थी का सामान आदि लाने का भार सौंपा गया। रात को लाश जा नहीं सकती थी। जिउराखन की बहन की श्मशान यात्रा का सारा प्रबंध लखनलाल के रूपयों से हुआ था पर इस समय उनके पास कुछ नहीं था। तरुलता के यहाँ आदमी दौड़ाया गया और वह रुपया लेकर आई। सबेरे कलक्टर के यहाँ जाना था, इसलिए लाश ले जाकर फूँकने का भार कुछ मज़दूरों को दे दिया गया। मुखाग्नि आदि देने के लिए और कपाल-क्रिया के लिए रामबली साथ जायगा।

जब रात को रामचरन चलने लगा तो लखनलाल ने धीरे से राजे से कहा—राजे, आई है तो मालकिन से मिल ले।

राजे ने इस दृष्टि से उनकी ओर देखा जैसे कह रही हो—यह आप कह क्या रहे हैं? कौन मुँह लेकर उनके पास जाऊँ? रामचरन उसका संकोच समझ गए। बोले—कोई बात नहीं। मेरे घर में फिर आई हो तो तुम्हारा कर्त्तव्य है कि उनसे मिल लो। बोलेंगी तो बोल लेना नहीं तो चुपचाप चली आना।

रामचरन—ठीक तो कहते हैं मालिक। जा न!

घर का कोना-कोना तो राजे का देखा हुआ था! वह जानती थी कि मालकिन इस समय कहाँ होंगी! बच्चे को लिए हुए अन्दर गई। मालकिन चारपाई पर पड़ी-पड़ी मन-ही-मन कुढ़ रही थीं। घर न हुआ, धरमसाला हो गया। न जाने कहाँ-कहाँ के ऐरे गैरे पचकल्यानी यहाँ आकर मर जाते हैं। मरने के लिए यही जगह मिली। और इनको क्या कहूँ। जब से आई तब से कोई सुख तो नहीं मिला, हमेसा कुढ़ते ही जनम बीता। जिन्दगी तलख कर दी। मेरे लिए गाँठ में पैसा नहीं है, दुनिया भर के अवारे-छिनारों के लिए न जाने कहाँ से लुटाने के लिए रुपया आ जाता है। उस डॉक्टर से शादी लग रही थी, वह

वकील था, पर न जाने क्या देखकर बाबूजी इन पर लट्टू हो गए ! अपने तो सरग गए, मुझे ज़िन्दगी भर के लिए नरक में डाल गए। मैं मरती भी नहीं कि इनसे पिण्ड छूटे !

राजे चुपचाप आकर पाँव के पास बैठ गई। पाँव पर हाथ रखकर प्रणाम किया। मालकिन तुरन्त उठकर बैठ गई, चौंककर कहा—कौन ? राजे !

राजे चुपचाप बैठी रही।

मालकिन ने क्षण भर न जाने क्या सोचा, फिर बोलीं—और यह तेरा बच्चा है क्या ?

राजे ने बच्चे को मालकिन की ओर बढ़ा दिया।

मालकिन ने बिजली का बटन दबाया, प्रकाश में देखकर बोलीं—कब हुआ ? तूने तो खबर भी नहीं दी।

राजे को साहस हुआ—खबर क्या देती ? कौन मुँह लेकर आपको खबर देती ?

मालकिन न जाने क्यों इस समय सदय हो उठीं। शायद इस उदारता का कारण राजे का गोद की सुन्ना रहा हो। बच्चे ही मालकिन के मर्मस्थल थे। हँसकर बोलीं—दुर पागल, वह बात क्या मैं हमेसा याद रक्खूँगी ? जो हो गया सो हो गया। गुस्से में तो आदमी जानवर हो जाता है। तुझे मुझ पर बिस्वास नहीं हुआ, क्यों ?

सब कुछ हुआ पर मालकिन ने बच्चा गोद में नहीं लिया। इसे वह अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझती थीं ! लखनलाल आड़ से सब देख सुन रहे थे। उन्होंने समझा, अब बादल छँट गए, ऊमस समाप्त हो गई। सामने पहुँचकर बोले—अरे, तुम्हें कुछ देना भी तो चाहिए। पहले-पहले बच्चा देखा है।

मालकिन को नीचे से ऊपर तक आग लग गई। वह क्यों आए ? अब फिर यह कलमुँही आई तो यह चारो ओर कावा काटने लगे।

मरदों की जाने क्या लत होती है ! मैं चाहे कुछ दूँ या न दूँ, इनसे मतलब ? बिगड़कर बोलीं—तुमको किसने बुलाया था ? बड़े आए खैरख्वाह बनके ! तुम जाओ बाहर, जाकर देस की दसा सुधारो, सबको मसान-घाट पहुँचाओ । कह दिया कि तुम्हारी बोली मुझे जहर लगती है ।

लखनलाल बिचारे सिटपिटा कर बाहर चले आए ।

लखनलाल के प्रति इस फिटकार के बाद राजे का फिर वहाँ बैठी रहना असंभव हो गया । वह लखनलाल पर देव-दुर्लभ भक्ति करती थी । उन्हें कोई इस तरह डाँट सकता है ! ऐसा करनेवाला बिरला ही हृदयहीन होगा । उसका वश चले तो वह उनके लिए अपने प्राण भी सहर्ष दे दे । पतिरूप में उन्हे पाकर किसी भी स्त्री को अपने को धन्य मानना चाहिए । फिर जिसके पास वह पतिरूप में चौबीसों घंटे बँधे हैं, वह कैसे उनकी इतनी उपेक्षा कर सकती है ! उसने कहा—तो अब चलती हूँ मालकिन, बड़ी अबेर हो गई है ।

मालकिन को कुछ याद आया, उठीं और राजे को रुकने को कहकर कमरे में गईं । कुछ मिनट बाद एक नया फ्रॉक, एक जाँघिया और चार रुपए लाकर राजे को देती हुई बोलीं—यह मेरी ओर से बच्चे के लिए है ।

राजे ने हाथ बढ़ाकर ले लिया और पाँव छूकर बाहर चली आई ।

दूसरे दिन मज़दूरों का एक भारी जुलूस तड़के ही डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के बँगले की ओर रवाना हुआ । सभी मिलों के मज़दूर उसमें शामिल थे, सब मिलाकर तीन-चार हज़ार मज़दूर रहे होंगे । आगे-आगे लखनलाल, तरुलता, रामप्रसाद, रामचरन आदि थे । सब लोग नारे लगाते जा रहे थे—हमें गुल्ला चाहिए, हमें कपड़ा चाहिए । हम भूखे नहीं रह सकते, हम नंगे नहीं रह सकते । जुलूस में राह चलते

लोग भी शामिल होते जा रहे थे। पुलिस अधिकारियों को कुछ पता नहीं था, रास्ते में पुलिसवाले देख-देखकर हैरान होते, यह जुलूस निकालने का हुकुम मिला है या नहीं। हम क्या करें। जुलूस बढ़ता ही जा रहा था। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को टेलीफ़ोन किया गया, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को टेलीफ़ोन किया गया और अन्त में हुक्म आया कि जुलूस ग़ैर कानूनी है, रोक दो। फ़ौरन् ही पुलिस के फ़र्माबरदार नौकर लाठियाँ लेकर बढ़े और कानपुर मिल के सामने पहुँचते-पहुँचते पुलिस के जवान सामने डट गए। अब जुलूस आगे नहीं बढ़ सकता। मोटर पर डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस भी मौक़े पर पहुँचे। लखनलाल ने आगे बढ़कर कलक्टर से कहा—हम तो आपके बँगले ही जा रहे थे। अच्छा हुआ आप यहीं आ गए। हमारा इरादा क़ानून तोड़ने का नहीं है, न तो हम गवर्नमेण्ट को अनुचित रूप से परीशान ही करना चाहते हैं। हम केवल यही चाहते हैं कि हमें अपने पेट भरने के लिए अच्छा भोजन मिले, तन ढँकने को वस्त्र मिले। भूखे-नंगे रहकर जीना मनुष्यता का अपमान है। सरकारी वस्त्र-वितरण व्यवस्था बिलकुल ग़लत और सार हीन है। एक-एक तार वस्त्र के लिए लोगों की जानें जा रही हैं, शरीर के सौदे हो रहे हैं। यह सब बन्द होना चाहिए। अगर सरकार कुछ नहीं कर सकती तो उसे हट जाना चाहिए। शासन का भार जनता के मंत्रियों को दिया जाय। वह हमारा ख्याल करेंगे, हम यों कीड़ों-मकोड़ों की तरह ज़िन्दा रहने को बाध्य न किए जाएँगे।

मजिस्ट्रेट का रटा-रटाया, घिसा उत्तर था—इस तरह जुलूस लेकर चलना क़ानून के विरुद्ध है। बिना आज्ञा जुलूस निकालना जुर्म है। वस्त्र-वितरण प्रान्तीय सरकार की योजना के अनुसार हो रहा है, हम इसमें कुछ नहीं कर सकते। तुम लोग फ़ौरन् हट जाओ।

तरुलता ने आगे बढ़कर कहा—हम ऐसे नहीं हट सकते। हम

यह जानते हैं कि आप नौकर हैं। आप प्रान्तीय-सरकार के ग़ुलाम हैं। पर जब ज़िला के सर्वेसर्वा बनकर बैठे हैं और उसके लिए लम्बी तनख्वाह ले रहे हैं तो ज़िले की जनता का कष्ट दूर करना आपका कर्त्तव्य है।

मैजिस्ट्रेट—अपनी ड्यूटी मैं तुम लोगों से ज़्यादा समझता हूँ। तुम लोग फ़ौरन् हट जाओ। मैं दस मिनट का समय देता हूँ।

लखनलाल ने घूमकर उत्तेजित भीड़ से कहा—भाइयो, अधिकारी तुम लोगों की बातें भी सुनने को तैयार नहीं हैं। उनमें तुम्हारा कष्ट दूर करने की सामर्थ्य नहीं है। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग अपने अधिकार समझो और उसके लिए निरंतर आवाज़ें बुलन्द करते रहो।

दस मिनट के अन्दर ही जल्दी-जल्दी लखनलाल, तरुलता और रामप्रसाद मज़दूरों के सामने गिने-चुने वाक्यों में भाषण दे गए। रामचरन ने अपनी भाषा में, अपनी बुद्धि के अनुसार मज़दूरों को ख़ूब उत्तेजित किया। तरुलता रह-रहकर उसका हाथ पकड़कर पीछे खींचती क्योंकि वह बहुत उत्तेजक बातें कर रहा था और किसी तरह की उत्तेजना फैलाना इन लोगों का उद्देश्य नहीं था। पुलिसवान के आते ही लखनलाल, तरुलता और रामप्रसाद, रामचरन और दो-एक अन्य मज़दूर पकड़कर उसमें भर दिए गए और वान चली गई। उत्तेजित मज़दूर और भी उत्तेजित हुए। जोश में कुछ ने ईंटे फेंक दिए। उत्तर में पुलिस का हलका लाठी-चार्ज हुआ जिसमें कई आहत हुए। धीरे-धीरे मैदान साफ़ हो गया। आहतों को अस्पताल भेजा गया।

राजे को जब यह समाचार मिला तो वह हाथ मारकर रह गई। एक बार बीमार बच्चे की ओर देखा और फिर फफककर रो पड़ी।

बारह

राजे का जीवन सहसा ही संबलहीन हो गया। रामचरन जेल भेज दिया गया, रामबली का बाप मर गया, बच्चा बुरी तरह बीमार पड़ा था। दवा के लिए पैसे नहीं देखभाल करनेवाला कोई नहीं, नौकरी राजे को पहले ही छूट गई थी, अतलाशित रूप से वह मँझधार में छोड़ दी गई। और उसको भी तब यही दशा हुई जो पति के न रहने पर अन्य स्त्रियों की होती है। केवल फ़ातिमा काकी का ही भरोसा था। लेकिन वह बिचारी कहाँ तक और क्या सहायता कर सकती थीं? राजे ने निश्चय किया कि वह एक बार फिर मिल में जाकर नौकरी के लिए चेष्टाएँ करे। शायद मिल ही जाय। लेकिन बच्चे की समस्या थी। वह नौकरी पर जायगी तो इसे कौन देखेगा? उसने फ़ातिमा काकी से सलाह की? उन्होंने आश्वासन दिया कि दिन भर वह किसी तरह सम्हाल लेंगी।

एक दिन बड़ी सुबह बच्चे को काकी के हवाले कर राजे मिल पहुँची। तब तक भीतर जाने की घंटी नहीं बजी थी, मज़दूर बाहर फाटक पर ही इन्तज़ार कर रहे थे। वह स्त्रियों की टोली में जाकर खड़ी हुई। काफ़ी परिवर्तन हो गया था। उसके साथ काम करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ बदल गई थीं, दो-तीन ही पुरानी परिचित थीं। एक ने राजे को देखकर पूछा—अरी, तू फिर आ गई? काम करेगी क्या?

राजे—हाँ, करना तो चाहती हूँ, अगर मिल जाय!

स्त्री—तुझे न मिलेगा तो और किसको काम मिलेगा? मेट से कह न!

राजे—यही सोचकर तो आई हूँ बहन! मेट दिखलाई पड़े तो कहूँ

स्त्री ने मुस्किराकर कहा—मेट तो घर गया है। छुट्टी लिए है चार दिन की। तू उसके घर चली जा। वह वहीं से सब ठीक कर देगा।

मरता क्या न करता ? राजे मेट की उस दिन की दृष्टि भूली नहीं थी, जब वह रामचरन के साथ काम के लिए मिल आई थी। आज अकेले उसके घर जाना पड़ेगा। क्या हो क्या न हो। पर अपना पेट भरने और बीमार बच्चे के ख्याल ने उसे बाध्य किया। पूछा—कहाँ है उसका घर ?

उस स्त्री ने एक अर्थपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा और मेट के घर का पता बता दिया।

राजे पता लगाते-लगाते हीरालाल के घर पहुँची। दरवाज़ा बन्द था। थोड़ी देर वह संकोच में खड़ी रही, द्वार खुलवाए या न खुलवाए। किन्तु, उसने सोचा कि इस तरह बाहर खड़ी देखकर आसपास के लोग न जाने क्या सोचेंगे। उसने हलके हाथों द्वार पर थपकी दी। तुरन्त ही हीरालाल ने आकर दरवाज़ा खोला देखा। सामने राजे खड़ी थी। यद्यपि राजे का उसके यहाँ आना कल्पना के परे की बात थी, फिर भी उसके मुख पर पैशाचिक हँसी खेल गई। उसने अपने को सम्हाला, कहा—क्या है, भाई, बाहर क्यों खड़ी हो ? भीतर आ जाओ।

यद्यपि राजे बाहर नहीं खड़ी रहना चाहती थी—पास-पड़ोस के मर्दों की तथा राह चलते लोगों की उत्सुक दृष्टि से उसे भय लग रहा था—पर भीतर जाने में भी उसे एक अज्ञात प्रकार का भय तथा संकोच हो रहा था। हीरालाल के निमंत्रण पर उसकी छाती धड़क उठी। उसने आँख उठाकर उसकी ओर देखा, हीरालाल की दृष्टि वैसी ही उसे जान पड़ी जैसी बाघ की अपने शिकार के प्रति होती है। जो साहस उसे यहाँ तक लाया था वह धीरे-धीरे साथ छोड़ने लगा। हीरालाल घुटा हुआ अनुभवी मर्द था। वह समझ गया कि यह इस समय गर्ज़ की मारी आई है। ऊपर से उपेक्षा का भाव दिखलाते हुए

बोला—मेरे पास इफ़रात का वक्त नहीं है। जो कहना हो, भीतर आकर कहो। मैं नहाने जा रहा था, देर हो रही है।

हीरालाल दरवाज़ा खुला छोड़कर भीतर चला गया। राजे ने क्षणभर कुछ सोचा फिर भीतर क़दम बढ़ा दिए। एक बार जब आगई है तब बिना कुछ तय किए जाना उचित नहीं होगा। आखिर हीरालाल आदमी ही है, खा नहीं जायगा। राजे के भीतर आते ही हीरालाल ने अन्दर से पुकार कर कहा—दरवाज़े की सिटकिनी लगा दो। खुला रहना ठीक नहीं है।

परिस्थितियों की मारी राजे ने यह भी किया, यद्यपि अब उसका समूचा शरीर काँप रहा था। स्थितिका थोड़ा-बहुत ज्ञान उसे होने लगा था किन्तु पेट के प्रश्न ने उसे बाध्य किया कि वह सब ओर से आँखें बन्द करले।

राजे ने भीतर पहुँचकर देखा, घर में और कोई नहीं है। सन्नाटा है। ओसारे में एक पीढ़ा बिछाकर हीरालाल बैठा है, नहाने के पहले बदन में तेल लगा रहा है। नंगे बदन, धोती घुटनों के ऊपर खिसकाए वह तेल लगा रहा था। राजे चुपचाप आकर सामने खड़ी हो गई। हीरालाल की अर्द्धनग्नता देखकर उसे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। हीरालाल ने ही कहा—बैठ जाओ। कहो, क्या कहना है?

राजे ने खड़ी-खड़ी कहा—मैं फिर काम करना चाहती हूँ। आपने सुना होगा कि 'वह' जेहल चले गए हैं, तीन महीने की सख्त कैद हुई है। मिल गई तो लोगों ने आप से घर पर मिलने को कहा।

हीरालाल ने दुष्टता से मुसकिरा कर कहा—अच्छा किया, तुम चली आईं। काम मिल जायगा पर मुझे काम देने के बदले में क्या मिलेगा?

हीरालाल ने सुन लिया था कि रामचरन जेल चला गया है। तभी उसने ऐसा प्रश्न किया। राजे ने भी सुन रखा था कि हीरालाल जसका काम लगाता है उससे दो-चार रुपए लेता है। उसने इस

प्रश्न का यही अर्थ लगाया। बोली—आपका तो सभी है। जो कहिएगा, दे दूँगी।

हीरालाल—देखो, बात से मुकरना नहीं। बैठो, मैं अभी नहाकर आता हूँ।

राजे बैठी रही। अब हीरालाल नहा-धोकर, सजधज कर निकला। बाल सँवारे हुए थे, धुली धोती, बनियायन पहने था। एक कमरे में घुसकर बोला—आओ यहाँ।

राजे घबराई, कमरे में क्यों बुला रहा है! उसकी छाती ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगी और पाँव नहीं ही उठे। लगा कि वह वहीं चिपक जायगी।

थोड़ी देर बाद हीरालाल ने फिर आवाज़ दी—आओ न यहाँ! काम ऐसी आसानी से नहीं मिलता। जब पहले ही कहना नहीं मानोगी तो बाद में काम क्या करोगी?

राजे फिर भी नहीं समझी कि उसका वास्तविक आशय क्या है। वह इसी डर से मरी जा रही थी कि अकेले कमरे में बुला रहा है, क्या जाने क्या हो। वह डरते-डरते उठकर भीतर गई। देखा तो वह हीरालाल का सोने का कमरा था। दीवालों पर अखबारों से तथा मासिक-पत्रों से फाड़ी हुई नंगी औरतों की तसवीरें लगी थीं। एक चारपाई बिछी थी, जिस पर एक दरी पड़ी थी और एक तुड़ी-मुड़ी तकिया रखी थी। कोने में सुराही और गिलास था और दूसरे कोने में एक तीन टाँग की कुर्सी दीवाल से लगाकर रखी थी। हीरालाल चारपाई पर पड़ा था, राजे के भीतर पहुँचते ही उसने जल्दी से उठकर द्वार बन्द कर दिया और भीतर से ताला लगा दिया।

राजे सब कुछ समझ गई। उसकी स्त्री-बुद्धि ने उसे समझा दिया कि आगे क्या होगा। कोई उपाय नहीं था। उसने चिल्लाकर कहा—खोल दो दरवाज़ा, मुझे जाने दो। मुझे काम नहीं करना है।

हीरालाल ने कमरे के अन्धकार में उसे बाहों में भर लिया और

अपनी छाती से चिपटाता हुआ बोला—क्यों पागलपन कर रही हो ? चिल्लाने से कुछ नहीं होगा, कोई नहीं सुन सकता। मेरी बात मान जाओ। तुम्हें काम भी दूँगा और तनख्वाह भी सबसे ज़्यादा दिलवाऊँगा।

राजे लगातार उसकी छाती पर हाथ पीटती रही और छूटने की चेष्टा करती रही। कई बार उसने दाँत भी काट लिए। पर हीरालाल पर भूत सवार था। एक तो पुरुष, दूसरे इस समय उसमें पैशाचिक बल आ गया था। उसने दोनों हाथों से राजे को उठा लिया और चारपाई पर ले जाकर पटक दिया।

लगभग पन्द्रह-बीस मिनट बाद राजे हीरालाल के घर से बाहर निकली। इस बीच उस पर क्या बीती, क्या-क्या हुआ, उससे कोई पूछे तो वह नहीं बता सकती। वह जैसे इस संसार में नहीं थी। उसकी सबसे बड़ी निधि लुट गई थी, उसके पति की जो थाती थी वह छिन गई थी। अब वह किसी की पत्नी नहीं, किसी की माँ नहीं, केवल एक अस्मत लुटी हुई औरत है, जिसका सही हाल जानकर दुनियाँ उस पर थूकना भी नहीं चाहेगी। सूम के सोने की भाँति जिस धन को वह अब तक सुरक्षित रखे थी, उसका जो शरीर पति को छोड़ और किसी की साया तक बरदाश्त करता रहा, जिस सुहाग पर उसे गर्व रहा, वही आज अपने नहीं रहे। रामचरन को यह सब कुछ नहीं मालूम होगा, वह चाहे तो उसके सामने, दुनिया के सामने वैसी ही सतवन्ती बनी रह सकती है पर उसका क्या यही धरम है कि पति को धोखा दे ? और उनसे यह सब कहने के पहले वह मर जाना पसन्द करेगी। बच्चे को किस मुँह से वह गोद में लेगी ? वह बिचारा क्या जानेगा कि उसकी माँ पापिनी है ? नहीं नहीं, अब वह किसी को मुँह नहीं दिखा सकती !

लड़खड़ाते हुए, नशे की हालत में जैसे हो, वह घर पहुँची।

फातिमा ने देखते ही पूछा—क्या हुआ बहू, काम मिल गया ?

सफ़ेद, फ़क चेहरे से, दृष्टिहीन-सी आँखों से उसकी ओर देखते हुए राजे ने उत्तर दिया—हाँ, मिल गया। अब भी न मिलेगा ?

बच्चे को उसने गोद में ले लिया। इतनी ज़ोर से छाती से दबाया कि वह नन्हा-सा जीव चीख पड़ा। बड़ी देर तक उसकी ओर एकटक देखती रही, देखती रही, जैसे खा जायगी। आँखों से आँसू टपकने लगे। उसका रोम-रोम कह रहा था—मेरे लाल, मैं जा रही हूँ। अब तुझे गोद में लेने का मेरा मुँह नहीं रहा। मुझे माफ़ करना ! पाप की कमाई खाकर मैं तुझे दूध नहीं पिला सकती !

काकी ने पूछा—अरी, रोती क्यों है ?

राजे ने आँसू पोंछ लिए, कहा—नहीं काकी, रोऊँगी क्यों ? तुम ज़रा इसको अपने क्वार्टर ले जाओ। मैं जल्दी से कुछ बना लूँ।

फातिमा काकी मुन्ने को लेकर चलीं तो राजे ने एक बार फिर लेकर, कसकर, चूम लिया। वह माँ थी। फिर, कुछ सोचकर जल्दी ही काकी की गोद में डाल दिया और मुँह फेर लिया।

क़रीब घंटे भर बाद लोगों ने देखा, रामचरन के क्वार्टर से ज्वाला की लपटें ऊपर उठ रही हैं। सारा क्वार्टर धू-धूकर जल रहा है। भारी भीड़ जमा हो गई। एक स्वर से सब पूछने लगे—राजे, राजे कहाँ गई ? राजे कहाँ है ?

फातिमा काकी चीख रही थीं—बहू, मुन्ना रो रहा है, इसे पिला दो। बहू, ओ बहू !

आग बुझने पर लोगों ने देखा—जली हुई लकड़ियों और कपड़ों के ढेर के नीचे एक अधजली स्त्री की लाश दबी है। सारा शरीर विकृत हो गया है।

वह राजे थी।